भूमिका ।

इस पुस्तक के दूसरे भाग के अन्त में यह सूचना दी गई थी, कि "अभी विविध विषयों के सम्बन्ध में पूजनीय भगवान् के और भी बहुत से मूल्यवान और तेजस्वी लेख और उपदेश बाक़ी हैं, कि जिन को हम इस पुस्तक के तीसरे भाग में देने की आशा रखते हैं।" हर्ष का विषय है, कि हम अपनी इस आशा के अनुसार इस पुस्तक के इस भाग में उन लेखों और उपदेशों के देने के योग्य हुए हैं।

भगवान् देवात्मा के जो लेख आदि इस पुस्तक में दिए गए हैं, वह "जीवन पथ" और "सेवक" के जिन पिछले परचों में से लिए गए हैं, उनके उन पर मास और सम्वत आदि दिए गए हैं। परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने विविध समयों पर इन लेखों में अपने विचारों को मनुष्य जीवन के जितने विभिन्न प्रकार के अंगों में प्रगट किया है, यदि उनका विचार पूर्वक अध्ययन किया जावे, और उनके अनुसार जीवन को चलाने का संग्राम हो, तो एक २ अधिकारी आत्मा उन से इतना कल्याण लाभ कर सकता है, कि जिस की कोई सीमा नहीं हो सकती।

हमारी यह हृदय गत कामना है, कि जैसे इस पुस्तक के पहले दो भाग क्या हमारे सामाजिक जनों और क्या अन्य अधिकारी आत्माओं के लिए हितकर और कल्याण दायक हुए हैं, वैसे हि भगवान् के अत्यन्त मूल्यवान और तेजस्वी लेखों का यह भाग भी उनकी भलाई का हेतु हो सके, ताकि जिस अभिप्राय को लेकर यह पुस्तक तैयार की गई है, वह अभिप्राय पूरा हो सके।

लाहौर	संग्रह कर्ता
१० दिसम्बर १९३९ ई०	रत्न चन्द जौहर
	मंत्री भगवान् देवात्मा ट्रस्ट।

सूची पत्र।

विषय पृष्ट

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ट

देव समाज के संस्थापक

परम पूजनीय

भगवान् देवात्मा

के विशेष विशेष

लेख और उपदेश

तीसरा भाग।

विविध संस्थाओं आदि के खोलते समय उपदेश।

१.—देव समाज हाई स्कूल मोगा के नए मकान के खोलने के अनुष्ठान के अवसर पर उपदेश।

[जीवन पथ, श्रावण सं० १६५८ वि०]

चैत्र शुदि द्वादशी सम्वत् १६५८ वि० अर्थात ३१ मार्च सन् १६०१ ई० को भगवान् देवात्मा ने देव समाज हाई स्कूल मोगा के नए और सुन्दर गृह को अपने पवित्र हाथों से खोला। पूजनीय भगवान् ने स्कूल

खोलने से पहले एक अत्यन्त मनोहर और तेजस्वी व्याख्यान दिया, कि जिस में उन्हों ने उस विद्या प्रचार प्रणाली की विशेषता और उत्तमता को प्रगट किया, कि जिस के अनुसार देव समाज का विद्या प्रचार सम्बन्धी कार्य्य हो रहा है। उन्हों ने फ़रमाया, कि आत्मा में धर्म्म जीवन तथा धर्म्म भावों को विकास करने के बिना जो मान्सिक शिक्षा दी जाती है, वह मनुष्य की कुछ मान्सिक शक्तियों को तो उन्नत कर देती है, और ऐसी शिक्षा पाने वाले को एक वा दूसरे प्रकार की चाकरी अथवा व्यवसाय के द्वारा कुछ धन आदि लाभ करने के योग्य भी बना देती है, परन्तु धर्म्म विहीन रहकर ऐसे जनों की जैसी कुछ नैतिक और आध्यात्मिक नीच अवस्था रहती है, वह उन लोगों से छिपी हुई नहीं है, कि जो साधारण स्कूलों के विद्यार्थियों और साधारण पढ़े लिखों की आन्तरिक अवस्था से अवगत हैं। यहां तक कि हमारी गवर्नमेंट और हमारे देश के और कितने हि चिन्ताशील पुरुष भी ऐसी धर्म्म विहीन विद्या के कई प्रकार के शोचनीय फलों को अनुभव कर रहे हैं, और वर्तमान विद्या प्रचार प्रणाली के संशोधन के लिए अनेक उपाय सोच रहे हैं। परन्तु भगवान् देवात्मा ने एक अति उत्तम उदाहरण देकर बतलाया, कि जैसे सैंकड़ों और हज़ारों अनपढ़ और मूढ़ एकत्र होकर और विद्या २

पुकार कर और कोई स्कूल बनाकर उस में मेज़ बेंचें आदि रखकर और अपने में से किसी अनपढ़ गंवार को प्रिन्सिपल और किसी को प्रोफेसर आदि की संज्ञा भी दे दें, तो जैसे वहां से कोई जन विद्या लाभ नहीं कर सकेगा और कोई पढ़ा लिखा नहीं निकल सकेगा; वैसे ही आप धर्म्म जीवन लाभ करने और आप धर्म्म भावों में उन्नत होने के बिना कोई जन केवल "धर्म्म" "धर्म्म" पुकार कर और कुछ धर्म्म की बातें ज़बानी सीखकर अथवा और पुस्तकों से कोई पुस्तक संग्रह करके किसी को धार्म्मिक नहीं बना सकता। यदि केवल पुस्तकों में एक वा दूसरी अच्छी कहानी वा प्रस्ताव लिख देने से वा किसी धर्म्म ग्रन्थ में से कोई श्लोक वा स्तुति आदि कण्ठ करा देने से धर्म्म जीवन आ जाया करता, तो अब तक वह लाखों और करोड़ों मनुष्यों में आ गया होता; क्योंकि क्या हमारे देश में और क्या कई और देशों में ऐसी पुस्तकों की कमी नहीं है। परन्तु देखते क्या हैं? कि यह सब कुछ होने पर भी मनुष्य की चारों ओर अत्यन्त नीच अवस्था है, और बड़े २ पढ़े लिखे अनेक बार ऐसे दुष्कर्म्म करते और नीच जीवन व्यतीत करते देखे जाते हैं, कि जिन्हें देख २ कर शरीर रोमांचित हो जाता है। देव समाज सम्बन्धी पाठशालाओं विशेषतः देव समाज हाई स्कूल मोगा में विद्या दान सम्बन्धी प्रायः सारा

कार्य्य कितने ऐसे जनों के हाथ में रखने का यत्न किया गया है, कि जिन के भीतर सद् संगत के द्वारा न्यूनाधिक रूप में धर्म्म भाव प्रस्फुटित हो चुके हैं और जो अपने जीवनों से विद्यार्थियों पर शुद्ध नैतिक जीवन के प्रभाव डाल सकते हैं। अथवा इस से बढ़कर विविध साधनों के द्वारा उन में धर्म्म भाव संचार कर सकते हैं। यही कारण है, कि जो विद्यार्थी देव समाज हाई स्कूल मोगा में आकर विद्या लाभ कर रहे हैं, उन में से कितनों की हि नैतिक अवस्था में बहुत हर्ष--जनक परिवर्तन देखा जाता है। यहां तक कि एक डिपुटी साहब ने, कि जो परसों हि हम से पहली बार मिले थे, कहा कि उन्हों ने जब एक दिन अपने आप चुप चाप इस पाठशाला और उसके विद्यार्थी आश्रम (बोर्डिंग) में जाकर विद्यार्थियों की अवस्था को विविध कार्य्य करते हुए देखा, तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों यह एक टुकड़ा सारी दुनिया से अलग है, कि जो कलियुग की सीमा से बाहर है, इस के अनन्तर जब पूजनीय भगवान ने प्रबन्ध कर्तृसभा के सभासदों, अध्यापकों और विद्यालय के निर्म्माण करने वाले सेवक वा श्रद्धालु स्त्रियों के परिश्रम और विद्यार्थियों के हित के लिए यत्नों और स्वयं विद्यार्थियों में से कितनों के सद्गुणों और परस्पर सेवा और शुश्रूषा आदि के विषय में वर्णन किया तो उसे

सुन २ कर बहुत हि आश्चर्य्य और इस पाठशाला को बहुत हि धन्य २ कहने का भाव उत्पन्न होता था। और भीतर से ऐसे भाव उठते थे. कि धन्य है यह पाठशाला और धन्य हैं उसके संस्थापक और वह लोग कि जो उसकी कार्य्यवाही और उन्नति में एक वा दूसरे प्रकार का शुभकर भाग ले रहे हैं। और ऐसी कामना उत्पन्न होती थी कि यह कार्य्य अधिक से अधिक उन्नत और प्रशस्त हो सके; और अनेक बालक बालिकाओं के शुभ का हेतु हो सके।

देव समाज बालिका विद्यालय फ़ीरोज़पुर के खोलने के पवित्र अनुष्ठान के अवसर पर उपदेश।

[जीवन पथ, मार्गशिर सं० १६५८ वि०]

परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने अपने पवित्र हाथों से फ़ीरोज़पुर में देव समाज बालिका विद्यालय के खोलने का शुभ अनुष्ठान सम्पन्न किया। पहले उच्च और मधुर स्वर के साथ निम्न लिखित गीत गाया गया:—

भारत तेरा हो उद्धार।

लाभ करें तेरे नर नारी, सत् शिक्षा और सद् आचार।
बाल्य अवस्था से हि उन में, धर्म्म का जीवन हो संचार।
नगर २ शुभ कार्य्य होवें, घर २ होवें सद् व्यवहार।

इस गीत के गाए जाने के समय बहुत उच्च प्रभाव

पढ़ रहे थे, और हृदय अधिक उच्च प्रभाव पाने के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। श्रीमान् गुरमुख सिंह जी ने एक पत्र का पाठ किया जिस में इस विद्यालय के संक्षिप्त इतिहास और उसके उद्देश्यों का वर्णन करके पूजनीय भगवान् से प्रार्थना की, कि वह उसे खोलने का शुभ अनुष्ठान अपने पवित्र हाथों से सम्पन्न करें।

इस पत्र के पाठ के अनन्तर भगवान् देवात्मा ने खड़े होकर एक अति मनोहर, तेजस्वी और हृदयों के हिलाने वाला व्याख्यान दिया, कि जो प्रायः एक घण्टे तक रहा।

इस व्याख्यान में भगवान् देवात्मा ने सब से पहले अंग्रेज़ी राज्य के लिए हृदय गत कृतज्ञता का प्रकाश किया, कि जिस में हमारे देश वासियों को विद्या लाभ करने का अवसर प्राप्त हुआ है, उन्हों ने कहा कि मैं इस विद्या प्रचार को अंग्रेज़ी राज्य के सब से बड़े उपकारों में से गिनता हूं। यद्यपि पहले भी हमारे देश में कुछ न कुछ विद्या प्रचार सम्बन्धी कार्य्य होता था; परन्तु तब न कोई विधि पूर्वक विद्या प्रणाली वर्तमान थी, और न कोई मानसिक शक्तियों के यथार्थ विकास और उस में वैज्ञानिक जिज्ञासा का भाव संचार करने के उपाय वर्तमान थे। उन्हों ने कहा कि हर्ष का विषय है, कि अब न केवल सरकार हमें विद्या दान देने का कार्य्य कर

रही है; किन्तु हमारे अपने जातीय जनों में भी विद्या अनुराग बढ़ता जाता है, और अब वह आप अपने ख़र्च से न केवल बालकों को विद्या पढ़ाने के लिए स्कूल खोलते हैं, किन्तु कन्याओं की शिक्षा के लिए भी पाठशालाएं खोल रहे हैं। यह सब कुछ बहुत प्रशंसनीय है। परन्तु जीवन की शुभ गति के लिए जब तक आवश्यक शिक्षा का कहीं प्रबन्ध न हो, तब तक मनुष्य केवल बुद्धि और समझ की उन्नति से नाना प्रकार की नीच गतियों और दुराचारों से उद्धार नहीं पाता। याद रखना चाहिए कि बुद्धि शक्ति केवल हृदय के अधीन होकर काम करती है। यदि हृदय के भाव शुद्ध और पवित्र हों, तो बुद्धि शक्ति उन्हीं भावों के चरितार्थ करने में सहाय होती है। और यदि हृदय नीच और दुष्ट भावों से भरा हुआ हो, तो बुद्धि भी उन्हीं भावों के अधीन होकर नीच और पाप मूलक कार्य्यों में सहाय करती है। एक विचार शील सुलेखक ने कहा है, कि "It is the heart that rules the life" अर्थात् मनुष्य अपने हृदय के अधीन होकर चलता है। और यही कारण है, कि अनेक विद्वान और पढ़े लिखे तक साधारण अपराध तो एक तरफ़ अनेक बार बड़े २ भयानक पापों और दुराचारों में लिप्त पाए जाते हैं। केवल विद्या के द्वारा मनुष्य के आचरण उसी प्रकार ठीक नहीं हो सकते, जिस प्रकार मूर्ख लोग तर

माल खाकर और व्यायाम करके विद्वान नहीं बन सकते। इससे यह भी स्पष्ट रूप से प्रगट होता है, कि अपने देश की विद्या प्रणाली के इस अभाव को कुछ अच्छी पुस्तकें और श्लोक आदि लिखकर और उन्हें वर्तमान स्कूलों में पढ़ाकर अथवा कण्ठ कराके भी निवारण नहीं कर सकते। एक घूस (रिश्वत) लेने वाला राज्य कर्म्म-चारी भली भांत जानता है, कि उसका ऐसा करना राज्य नियमों (सरकारी कानून) के विरुद्ध है, और अभियोग होने पर उसे कई साल कारागार में रहने की सज़ा मिल सकती है। और अपने सामने वह कई जनों को ऐसी सज़ा पाते हुए भी देखता है, तो भी वह धन की वासना के वश होकर अपनी अपहरण क्रिया से नहीं रुकता। इसीलिए भगवान देवात्मा ने बहुत वेग से कहा:, क्या करेंगी तुम्हारी पुस्तकें ? और क्या करेंगे तुम्हारे श्लोक ? हां, वह पुस्तकों के वचन और श्लोक आदि चाहे किसी मनुष्य के रचे हुए हों, और चाहे वह किसी कल्पित "बादशाहों के बादशाह" की ओर से बताए जाते हों, उस समय तक कोई फल उत्पन्न नहीं कर सकते, जब तक कि मनुष्य का हृदय नीच गति मूलक प्रवृतियों, भावों और उत्तेजनाओं के वशीभूत हो रहा हो। इस नीच अधिकार से कोई जन बिना उच्च शक्ति के कार्य्य के नहीं निकल सकता। और यह शक्ति

बिना शक्तिवान और शक्तिदाता के प्राप्त नहीं हो सकते। जब तक विद्यार्थियों को ऐसे शिक्षकों और रक्षकों के अधिकार में न रक्खा जावे, कि जो आप किसी ऐसे शक्ति स्रोत से जुड़कर परिवर्तित हो चुके हों, और उसी शक्ति को अधिक वा न्यून मात्रा में अपने विद्यार्थियों में संचार कर सकते हों, तब तक हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आवश्यक संशोधन नहीं हो सकता।

दूसरा बड़ा अभाव जो हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भगवान् देवात्मा ने प्रगट किया वह यह कि वह शिक्षा जातीय शिक्षा नहीं है। और उसके द्वारा सच्चा जातीय भाव उत्पन्न नहीं होता। हमारे यहां ऐसे विद्वान वर्तमान हैं, कि जिन में से कुछ ने तो युरोप को देखा है, और बहुतों ने आज तक नहीं देखा, पर वह अपने देश की किसी वस्तु को पसन्द नहीं करते और यूरोप की हर एक बात श्रेष्ठ और उत्तम जानते हैं। कैसी शोचनीय अवस्था! कौन है कि जो कह सके कि हमारी जाति में सीता और सावित्री जैसी पति श्रद्धा स्त्रियां, लक्ष्मण जैसे भाई, राम जैसे पुत्र उच्च जन न थे? शोक कि हमारी जाति में ऐसी उच्च स्त्रियां और ऐसे उच्च पुरुष उत्पन्न करने के लिए यथोचित उपाय अवलम्बन नहीं किए जाते। और यदि किसी कुसंस्कार के वश होकर हमारे हिन्दु जनों में जातीयता का ध्यान आता भी है,

तं वह ऐसा उलटा रूप ग्रहण करता है, कि फिर उन्हें उस में कोई दोष हि दिखाई नहीं देता। और उसके महा विनाशकारी रोग भी अच्छे गुण हि प्रतीत होते हैं। तब आवश्यकता है, कि हमारी शिक्षा प्रणाली को ऐसी रीति से प्रस्तुत किया जावे कि जिस से विद्यार्थियों के भीतर सच्चा जातीय भाव उत्पन्न हो कि जिस से जहां एक ओर वह अपनी जाति में जो कुछ उच्च और श्रेष्ट है, उसकी ओर आकृष्ट हो सकें, वहां दूसरी ओर अन्य जातियों में जो कुछ नीच और अशुभ है, उस से बच सकें। अपने देश की विद्या प्रणाली के इन्हीं अति शोचनीय अभावों को दूर करने और स्वदेशीय सन्तान के भीतर बाल्य काल से हि सत चरित्र संगठित और धर्म्म भाव जाग्रत और उन्नत करने के लिए, और उन में सच्ची जातीयता का भाव उत्पन्न करने के लिए देव समाज सम्बन्धी विद्यालय खोले गए हैं। प्रायः दो वर्ष हुए, कि इसी पवित्र उद्देश्य को लेकर मोगे में एक पाठशाला खोली गई थी। और उस से इस थोड़े से काल में बहुत हि प्रशंसनीय शुभ फल उत्पन्न हुए हैं। जहां इतने दिनों में बिद्यार्थियों की संख्या भी पांच गुणा से अधिक बढ़ गई है, वहां कितने हि बिद्यार्थियों में ऐसा नैतिक और आध्यात्मिक परिवर्तन आ गया है, कि जिसे देख २ कर उनके माता पिता आदि अति प्रसन्न और

धन्य २ हुए हैं, और दूर २ से अनेक माता पिता अपनी सन्तान् को वहां पर भेज रहे हैं। पहले इस विद्यालय में बालकों के भिन्न कन्याओं को भी पढ़ाया जाता था, परन्तु अब समय आ गया है, कि उसी उच्च उद्देश्य और कन्याओं की विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता को सन्मुख रखकर उन के लिए एक पृथक विद्यालय खोला जावे और हर्ष का विषय है, कि उसके लिए यहां पर आवश्यक प्रबन्ध हो जाने पर यह विद्यालय खोला गया है। ऐसा हो, कि यह विद्यालय कि जिस का नाम देव समाज बालिका विद्यालय रक्खा गया है, वह उच्च और वांछनीय फल प्रसव करे, कि जिन के उत्पन्न करने के लिए हम सब उत्सुक हो रहे हैं। भगवान् देवात्मा ने अपने व्याख्यान में और भी कितने हि भाव प्रकाश किए, कि जिन में से राम और सीता का दाम्पत्य सम्बन्ध का वर्णन तो बहुत हि हृदयों को हिलाने वाला था। और उस समय विशेष करके मानो सारा स्थान अति पवित्र ध्वनि से गूंज रहा था, और वारम्वार ऐसी कामना हृदय से उत्पन्न होती थी, कि ऐसा हो कि पूजनीय भगवान् की शुभ इच्छाए इस बालिका विद्यालय के द्वारा पूर्ण हो सकें और सचमुच सीता, सावित्री, और गार्गी आदि जैसी आदर्श और जातीय भूषण स्त्रियां वहां से उत्पन्न हों।

———

देव समाज हाई स्कूल मोगा में एक प्रदर्शिनी के खोलने के अनुष्ठान के अवसर पर उपदेश ।

(जीवन पथ, पौष सं० १६५८ वि०)

(यह प्रदर्शिनी भगवान् देवात्मा के शुभ जन्म दिन के उपलक्ष में २७ दिसम्बर सं० १९०१ ई० को खोली गई थी ।)

पहले प्रदर्शिनी समिती के मंत्री ने प्रदर्शिनी के संक्षिप्त इतिहास और लक्ष्य का थोड़े से शब्दों में वर्णन किया, और भगवान् देवात्मा से प्रार्थना की कि वह अपने पवित्र हाथों से उसके खोलने का शुभ अनुष्ठान सम्पन्न करें । इस पर पूजनीय भगवान् ने प्रायः एक घंटे तक एक अद्भुत और अति शिक्षाप्रद व्याख्यान दिया । जिस में उन्हों ने प्रगट किया, कि लक्ष्मी अथवा धन का वाणिज्य अर्थात् व्योपार के साथ कैसा घनिष्ट सम्बन्ध है । हमारे पूर्व पुरुषागणों ने अधिक करके केवल भूमि के ऊपर जो उत्पत्ति होती वा हो सकती है, उसकी और हि अपना ध्यान रक्खा है, और एक दाने से कई दाने उत्पन्न करने के काम, अथवा कृषिकार्य्य में हि प्रवृत रहे हैं । इसीलिए उनका प्राचीन नाम भी आर्य्य अर्थात् कृषि कार्य्य करने वाले था । परन्तु पृथिवी के नीचे अर्थात् खनियों में जो और बहुत सा धन छिपा पड़ा है, उसके लाभ करने की ओर जैसा चाहिए उन

का ध्यान नहीं गया। इसी वर्णन के अन्तरगत उन्हों ने सभ्यता की भिन्न २ सीढ़ियों का बहुत हि उत्तम रीति से वर्णन किया। अर्थात् क्योंकर मनुष्य के भीतर जीवन रक्षा की प्रबल इच्छा पाई जाती है, और उसकी नाना शक्तियां उसे एक २ कार्य्य करने और फिर उस में औरों की अपेक्षा उन्नति लाभ करने के लिए हिलाती रही हैं। क्योंकर एक बोध के अनन्तर दूसरा बोध उत्पन्न होता गया और इस प्रकार धीरे२ मनुष्य सभ्यता की सीढ़ी में ऊपर से ऊपर चढ़ता गया। यह सारा वर्णन बहुत हि वैज्ञानिक सत्यों से भरा हुआ और मनुष्य के विकास सम्बन्धी तत्वों के इतिहास को प्रगट करने वाला था। इसके अनन्तर उन्हों ने प्रगट किया, कि मनुष्य को अपने नाना कार्य्यों के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है। और बहुत से कार्य्य सिद्ध करने के योग्य होने के लिए भली भांत धन उपार्जन करने और उसके लिए उत्तम से उत्तम विधियां निकालने की आवश्यकता है। परन्तु यदि यही धन किसी उच्च कार्य्य के लिए काम न लाया जावे और केवल नीच प्रवृतियों के चरितार्थ करने के लिए हि हो, तो निसन्देह इसके समान मनुष्य के लिए विनाशकारी भी और कोई वस्तु नहीं है। इसलिए पूजनीय भगवान् ने फ़रमाया, कि जहां हम यह चाहते हैं, कि धर्म्म कार्य्यों में उत्तम रूप से

सहाय अथवा दान करने के निमित्त देव समाज के सेवकों के भीतर अधिक धनोपार्जन और आर्थिकोन्नति की इच्छा उत्पन्न और वर्द्धित हो—और इसी उद्देश्य को लेकर हम "देव समाज अर्थोन्नति सहायक प्रदर्शिनी" स्थापन करते और खोलते हैं—वहां यदि देव समाज के सभासदों की कभी ऐसी दशा हो जावे, कि वह धन उपार्जन केवल इसलिए करने लगें, कि वह उस के द्वारा स्वार्थ-परायण होकर अपनी नीच वासनाएं चरितार्थ करें; और उनका धन उन्हें केवल नीच से नीच बनाने में सहाय हो, तो हम चाहेंगे कि शीघ्र ऐसा समय आए, कि ऐसी समाज न रहे ! और ऐसे जन धनी होने के स्थान में कङ्गाल और निर्धन हो जावें ! और आप नीच होकर औरों को नीच न बना सकें ! इस प्रकार सभ्यता की नाना श्रेणियों और धन के उचित और अनुचित व्यवहारों आदि के विषय में बहुत मनोहर वर्णन के अनन्तर भगवान् देवात्मा ने प्रदर्शिनी के खोले जाने की आज्ञा दी । उन्हों ने हर्ष के साथ बताया, कि इस प्रदर्शिनी में कि जो मानो अभी केवल एक नव-शिशु की न्याई है, देव समाज से सम्बन्ध रखने वाले बीस स्थानों के ८८ जनों ने ११८ वस्तुएं विविध प्रकार की प्रदर्शन की हैं, कि सो निम्न लिखित विभागों में विभक्त हो सकती हैं :—

(१) वैज्ञानिक यन्त्र।
(२) कृषि सम्बन्धी वस्तुएं आदि।
(३) कशीदे।
(४) जाली वा सिलाई का काम।
(५) स्वदेशीय औषधियां।
(६) छवियां और चित्र।
(७) लकड़ी का काम।
(८) सुन्दर लिखाई।
(९) मिठाइयां।
(१०) पकवान।
(११) प्राकृत वस्तुओं का अनुकरण।
(१२) अन्य वस्तुएं।

अन्त में उन्हों ने इस कामना के साथ अपने अत्यन्त शिक्षा दायक उपदेश को समाप्त किया, कि हमारे देश की दरिद्रता और निर्धनता दूर हो, और हमारे जातीय जन धनी और सुखी होकर उच्च और हितकर कार्य्यों को कर सकें।

---

५३ वें जन्म महोत्सव के शुभ अवसर पर देव समाज प्रदर्शिनी खोलते समय उपदेश।

(जीवन पथ, पौष सं० १९६० वि०)

प्रदर्शिनी खोलते समय पूजनीय भगवान् ने खड़े होकर पहले इस प्रदर्शिनी की सन्तोष जनक उन्नति के

लिए अपनी प्रसन्नता का प्रकाश किया और फ़रमाया, कि उनको विगत उन्नति को देखकर ऐसी आशा होती है, कि वह आगामी वर्षों में भी उन्नति लाभ करेंगी। फिर उन्हों ने ऐसी प्रदर्शिनियों के लाभों का वर्णन किया और बताया, कि सब से प्रथम तो नाना सुन्दर पदार्थों से उत्तम विधि के साथ सजा हुआ कोई स्थान भी बहुत हर्ष दायक प्रभाव डालता है, और चित को अपनी ओर आकृष्ट करता है। दूसरे ऐसी प्रदर्शिनियों में अच्छी २ वस्तुओं को देखकर और लोगों में भी वैसी हि वस्तुएं बनाने की इच्छा पैदा होती है, और इस प्रकार शिल्प की उन्नति और वृद्धि होती है। तीसरे प्रदर्शन कर्ताओं में प्रतियोगिता के कारण औरों की अपेक्षा उत्तम वस्तु प्रस्तुत करने का भाव और उत्साह बढ़ता है, और यह प्रतियोगिता (healthy competition) सब प्रकार की उन्नति की जान है चौथे ऐसी प्रदर्शिनियों के द्वारा अपनी उत्तम वस्तु का विज्ञापन होता है, अर्थात् साधारण लोगों में एक २ उत्तम वस्तु ज्ञात हो जाती है, जिस से प्रदर्शक को आर्थिक लाभ हो सकता है, और इस प्रकार वाणिजय की उन्नति में ऐसी प्रदर्शिनियां विशेष सहायता करती हैं।

अन्त में भगवान् देवात्मा ने हमारे देश की उस मिथ्या और विनाशकारी शिक्षा का वर्णन किया, कि

जिस ने हमारे देश वासियों का नाश कर दिया है, और उन्हें यह सिखाया है, कि "होगा वही जो राम रच राखा" इस मिथ्या शिक्षा को अपने भीतर स्थान देकर हमारे देश वासी यह समझते रहते हैं, कि "साथों तां कुज नहीं हुन्दा, जो भागां विच होवेगा, सो आपेई हो जावेगा।" पूजनीय भगवान् ने बड़े वेग से कहा, कि मनुष्य का काम मनुष्य से हि होता है, और 'आपेई कुज नहीं हुन्दा' अपने और अपनी समाज और अपने देश के भले के लिए यथा साध्य जो कुछ तुम चाहोगे वह होगा। जो मनुष्य कुछ चाहता नहीं, वह कुछ करता भी नहीं, और कुछ पाता भी नहीं। इसलिए तुम अपनी उन्नति चाहो, अपना शुभ चाहो, और खूब ज़ोर से चाहो, और निश्चय करो, कि तुम्हारी उन्नति और तुम्हारा शुभ बहुत कुछ तुम्हारे अपने हाथ में है। इस लिए तुम क़िसमत का ख़याल छोड़कर उसके लिए आप पूर्ण रूप से यत्न करो, आप उसके लिए सच्चा पुरुषार्थ करो, और अपने और देश वासियों के भीतर भी यही भाव संचार करने की चेष्टा करो। ऐसा हो, कि तुम्हारे भीतर इस तत्व का ज्ञान अधिक से अधिक सार और उज्वल रूप में प्रकाशित हो और तुम्हारा प्रति वर्ष अधिक से अधिक कल्याण साधन हो।

१८वें देवोत्सव पर प्रदर्शनी खोलते समय उपदेश।

(जीवन पथ, फाल्गुण सं० १९६१ वि०)

पहले "बिना अर्थ की उन्नति के, दुखिया देश हमारा है" वाला गीत गाया गया। उसके अनन्तर प्रदर्शिनी के सम्बन्ध में मंत्री जी ने रिपोर्ट का पाठ किया, कि जिस में उन्हों ने बताया कि आज से पांच वर्ष पहले सब से पहली बार सात-आठ जनों की ओर से एक कोड़ी से नीचे वस्तुएं प्रदर्शन की गई थीं, और अब की बार २०० जनों नें ३०० वस्तुएं प्रदर्शन की हैं। उन्हों ने यह भी बताया, कि यह प्रदर्शनी केवल यही नहीं कि वस्तुओं और उनके प्रदर्शन कर्ताओं की संख्या के विचार से पहली सब प्रदर्शिनियों से बढ़कर है, किन्तु बहुत सी वस्तुएं कई प्रकार की कारीगरी के विचार से भी बहुत उन्नत अवस्था में हैं। रिपोर्ट का पाठ करके मन्त्री जी ने कई एक नई और अच्छी वस्तुओं, यथा आक की रुई का सूत, और उसकी छाल के रस्से, पौतों की ज़ंजीर, सोंठ का सत, नारियल के बटन, लकड़ी के चौकटे, और बहुत से कसीदे और कुरसियां आदि दिखाकर उनकी विशेषताओं का वर्णन किया। परम पूजनीय भगवान् देवात्मा इन वस्तुओं को देखकर अपनी बहुत बड़ी प्रसन्नता का प्रकाश करते रहे। प्रदर्शनी के मन्त्री जी की तकरीर के अनन्तर कई एक

जनों ने कृषि कार्य्य के सम्बन्ध में अपनी ओर से कुछ तजवीज़ें बताईं और फिर भगवान् देवात्मा ने पुरुषों को और श्रीमती पूजनीयां जी ने स्त्रियों को अपने हाथ से प्रशंसा पत्र वितरण किए, जिन में से १६ पहली श्रेणी के और ५० दूसरी श्रेणी के प्रशंसा पत्र थे।

अन्त में भगवान् देवात्मा ने एक ज़ोरदार तक़रीर की, कि जिस में उन्हों ने

(१) इस प्रदर्शिनी के सम्बन्ध में अपनी प्रसन्नता का प्रकाश किया।

(२) आगामी वर्ष में इसे और भी उन्नत करने की प्रेरणा की।

(३) इस प्रदर्शिनी को क्रम २ से समाज के लिए सचमुच अर्थोन्नति सहायक प्रदर्शिनी प्रमाणित करने की आवश्यकता को प्रगट किया।

इस बयान में उन्हों ने फ़रमाया, कि हमारे देश वासियों को एक ओर धरती के नीचे खनिज पदार्थ सम्बन्धी यथा सोना, चान्दी, लोहा, कोयला, तेल आदि की किसम से जो बहुत बड़ा ख़ज़ाना मौजूद है, उसे निकालने की आवश्यकता है, दूसरी ओर धरती से ऊपर उद्भिद् जगत् सम्बन्धी नाना प्रकार के फलों और उनके तेल और अतरों, फलदार वृक्षों, सूत देने वाले नाना प्रकार के पौदों और कृषि कार्य्य सम्बन्धी विविध

प्रकार के उत्तम उपायों के द्वारा अपनी आर्थिक अवस्था को उन्नत करने की आवश्यकता है। और देशों के रहने वाले इन दोनों उपायों से अपनी आर्थिक अवस्था को जितना उन्नत कर चुके हैं, शोक कि अभी हमारे देश वासी उस में बहुत पीछे पड़े हुए हैं। कृपि कार्य्य की उन्नति और कृषि कार्य्य सम्बन्धी अधिक से अधिक खोज़ों के प्रदर्शन करने की ओर भगवान् देवात्मा ने अपने सेवकों को विशेष ध्यान देने की प्रेरणा की। यह व्याख्यान सेवकों के हृदयों को बहुत उभारने वाला और अत्यन्त शिक्षा प्रद था।

देव समाज धर्म्म विकासालय के खुलने का शुभ अनुष्ठान।

[जीवन पथ, भाद्रपद सं० १९६२ वि०]

ज्येष्ठ १९६२ वि० के जीवन पथ में प्रकाशित किया गया था, कि देव धर्म्म की वैज्ञानिक शिक्षा के लिए एक " देव समाज ट्रेनिंग स्कूल " अर्थात् " देव समाज धर्म्म विकासालय " के खोले जाने की तजवीज़ है। बहुत हर्ष की बात है, कि श्रावण शुदि पूर्णिमा सं० १९६२ वि० अर्थात् १५ अगस्त सन् १९०५ ई० को स्वास्तित्व व्रत के शुभ अवसर पर देव समाज स्थापक परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने स्वयं इसके खोलने

का शुभ अनुष्ठान सम्पन्न किया।

भगवान् देवात्मा ने मनुष्य को अपने अस्तित्व के के विषय में अति आवश्यक ज्ञान लाभ करने और उस की रक्षा और उसके विकास साधन के सम्बन्ध में एक अति कल्याणकारी और उच्च तेज से भरा हुआ उपदेश दिया। इस उपदेश के अन्तिम भाग में पूजनीय भगवान् ने इस तत्व को विशेष रूप से प्रकाशित किया, कि मनुष्य के अपने अस्तित्व की विनाश से रक्षा और उस का विकास साधन तब ही सम्भव है, कि जब वह अपने भीतर नीच गति विनाशक बोध और उच्च गति विकासक अनुराग शक्तियां लाभ करके औरों की विनाश से रक्षा और उनके विकास में अपने जीवन की शक्तियों को ख़र्च करे। उपदेश श्रोता गणों के हृदयों को बहुत हि हिलाने वाला था, और उसके द्वारा उनके भीतर अपने अस्तित्व की रक्षा और उसके विकास करने और औरों की रक्षा और उनके विकास में अपने जीवन की शक्तियों को ख़र्च करने का भाव लहरें मार रहा था। इस उपदेश के अन्त में भगवान् देवात्मा ने इस विकासालय के खोले जाने की घोषणा की। इस सम्बन्ध में भगवान् देवात्मा का अपने सेवकों के लिए निम्न लिखित वर्णन ख़ासकर हृदयों को स्पर्श करने वाला था :—

"तुम्हारा अस्तित्व स्वप्न नहीं, किन्तु सत्य है। इस

के विगड़ने और बनने अर्थात् विनाश और विकास सम्बन्धी नियम भी अटल हैं। विनाशकारी और विकास-कारी गतियां भी सत्य हैं। विनाशकारी गतियों के अधीन रहकर जैसे तुम अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकते; वैसे हि किसी अपने जैसे और अस्तित्व की रक्षा भी नहीं कर सकते। विनाशकारी गतियों से निकलने और विकास लाभ करने के लिए तुम्हें अपने अस्तित्व के विषय में उन दुर्लभ सत्यों की ज्योति और विविध शक्तियों के लाभ करने की आवश्यकता है, कि जो देव धर्म्म प्रवर्तक के देव जीवन में आविर्भूत हुई हैं। हित अहित के सच्चे विवेक के विना अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आकांक्षा नहीं हो सकती। ऐसा हो, कि यह विवेक और आकांक्षा तुम्हारे भीतर जाग्रत वा उन्नत हो। इस उच्च आकांक्षा को लेकर तुम विकासालय में प्रवेश करो। तुम्हारा विकासालय में इस प्रकार प्रवेश करना तुम्हारे और देव समाज के लिए शुभकर हो। आज का दिन देव समाज के इतिहास में एक अति स्मरणीय और विशेष दिन हो।"

इसके अनन्तर कई सेवकों ने इस विकासालय में विकासार्थी बनकर अपने जीवन को सुफल करने के लिए बहुत व्याकुलता से आशीर्वाद प्रार्थनाएं कीं। फिर स्वास्तित्व व्रत सम्बन्धी गीत गाया गया, इस शुभ समय

में उपस्थित जनों पर बहुत हि उच्च और हितकर प्रभाव पड़ रहे थे। इस समय भगवान् देवात्मा की देव ज्योति में वह भविष्यत काल भी कई साधकों के सन्मुख आ रहा था, जब कि शत २ और सहस्र २ नर नारी इस विकासालय में शिक्षा पाकर देव धर्म्म की वैज्ञानिक और जीवन दायक शिक्षा को देश देशान्तरों में फैलाएंगे और इस प्रकार पृथिवी के सच्चे उद्धार और कल्याण के हेतु बनेंगे।

देव समाज साधन मन्दिर रावलपिंडी के खोलने का शुभ अनुष्ठान।

[जीवन पथ, वैशाख सं० १९६३ वि०]

यद्यपि भगवान् देवात्मा की शारीरिक स्वास्थ्य बहुत खराब थी, तो भी उन्हों ने अपनी प्रबल इच्छा और हित शक्ति से परिचालित होकर १६एप्रिल सन् १९०६ ई० की प्रातः काल को रावलपिंडी के देव समाज साधन मन्दिर के खोलने का शुभ अनुष्ठान सम्पन्न किया।

पहले "देव समाज समाज हमारी" वाला अति हितकर गीत खूब उत्साह के साथ गाया गया, जिस के गाए जाने के बाद श्रीमान् पण्डित दीनानाथ वाली जी ने उस क्षेत्र के सेवकों, सेविकाओं और श्रद्धालुओं की ओर से एक अभिनन्दनपत्र का पाठ किया। इस अभि-

नन्दनपत्र में भगवान् के इस शुभ अवसर पर तशरीफ़ लाने के लिए धन्यवाद का प्रकाश करने के भिन्न जहां पर देव समाज के काम का संक्षिप्त इतिहास और साधन मन्दिर के लिए ज़मीन और रुपए के हासिल करने का वर्णन था, और अन्त में उनकी सेवा में यह बेनती की गई, कि वह इस साधन मन्दिर को अपनी महोच्च समाज के काम के लिए ग्रहण करके उसे अपने मुबारिक हाथों से खोलें, और उस पर अपना आशीर्वाद प्रदान करें।

इस अभिनन्दनपत्र के पाठ के अनन्तर भगवान् देवात्मा ने खड़े होकर उपस्थित जनों के सन्मुख (जिन में देव समाज के सेवकों और श्रद्धालुओं के भिन्न शहर के बहुत से तालीमयाफ्ता वकील और बैरिस्टर और क्लर्क और अन्य लोग शामिल थे) एक बहुत तेजस्वी और हृदयों को हिला देने वाला उपदेश दिया, कि जिस में उन्हों ने प्रगट किया, कि इस पृथिवी के करोड़ों मनुष्य परिवर्तन चक्र के द्वारा परिवर्तित होकर जिस अवस्था में पहुंचे हैं, उसके बिचार से वह कैसे अपूर्ण और इसी लिए अपने और अपने अन्य नाना सम्बन्धियों और अस्तित्वों के लिए कैसे महा हानिकारक और दुखदाई बन रहे हैं!! बाहर का थोड़ा सा मामूली "अमन" रखने के लिए भी एक २ देश में कितनी बड़ी गवर्नमेन्ट रखने और लाखों करोड़ों रुपयों के खर्च करने और टैक्स

लगाने की आवश्यकता होती है । ग्राम २ और नगर २ में करोड़ों घरों के भीतर विविध सम्बन्धों में महा शोचनीय लीला जारी है—पति अपनी पत्नियों से, और पत्नियां अपने पतियों से, मां बाप सन्तान् से और कितनी हि सन्तान् अपने मां बाप से, भाई बहिन एक दूसरे से, नौकर मालकों से और मालिक नौकरों से, और कितने पशु आदि मनुष्यों से तरह २ के क्लेश भोग रहे हैं, और इन में से कितने हि तंग होकर आत्म-घात तक कर रहे हैं !! ऐसे घोर पाप क्यों हो रहे हैं ? क्या इसलिए, कि लोग किसी देवी, वा देवता, या ईश्वर, वा तीर्थ, वा धर्म्म पुस्तक को नहीं मानते ? अथवा अपने आप को किसी इस वा उस धर्म्म सम्प्रदाय का मेम्बर नहीं कहते ? धर्म्म मतों और धर्म्म सम्प्रदायों की कमी है ? नहीं ऐसा नहीं । परन्तु एक ओर जहां वह सब कल्पना-मूलक हैं, और इसीलिए उलटा कई पहलुओं में बहुत हानिकारक हैं, वहां ऐसे जनों को उच्च जीवन सम्बन्धी जिन धर्म्म शक्तियों के द्वारा परिवर्तित करके उनके कल्पना-मूलक मिथ्या विश्वासों के दूर और उन्हें सत्य ज्ञान प्रदायिनी ज्योति से ज्योतिर्मान करने और मोह और पापों आदि से मुक्त करके उन में उच्च भाव संचार करने और उच्च गति परायण जीवन देने के लिए जिस सच्चे धर्म्म अथवा जीवन दाता की आव-

श्यकता है, उसकी ज्योति और शक्ति के लाभ से वह वंचित हैं। पूर्णाङ्ग धर्म्म जीवन के आविर्भाव से यह ज्योति और शक्ति निकल २ कर सैकड़ों आत्माओं को मिथ्या विश्वासों, कुसंस्कारों, अज्ञान और पापों आदि से निकालकर जो महा विस्मय-जनक परिवर्तन ला रही है, उसके देखने और जानने की कोशिश करो। ऐसे परिवर्तित लोगों की जो समाज बनी है, और जिस का नाम देव समाज है, उस को पहचानो। इस अद्वितीय ज्योति और शक्ति के किसी अंश मात्र को प्राप्त होकर देव समाज के कितने हि लोग जो २ काम कर रहे हैं, और ऐसे काम से हमारे देश वासियों का जो २ महा हित साधन हो रहा है, उसे भी जानो। यह मन्दिर इसी अद्वितीय आविर्भाव की जीवन-दायिनी ज्योति और शक्ति को इस नगर के अधिकारी जनों तक पहुंचाने के लिए तैयार किया गया है। इसी महा हितकर और सत्य शिक्षा और ऐसे हि हितकर कार्य्यों को लेकर देव समाज की विशेषता है इसी अभिप्राय और इसी विशेषता को लक्ष्य रखकर आज यह मन्दिर खोला जाता है। ऐसा हो, कि इस मन्दिर के खोलने से यह निराला और महा हितकर अभिप्राय यहां के सेवकों के आत्माओं और उन के द्वारा और आत्माओं आदि में पूरा हो।

इस उपदेश को सुनकर श्रोता गणों ने बहुत उच्च प्रभाव लाभ किए। इसके अनन्तर पूजनीय भगवान् ने मन्दिर के ताले को अपने पवित्र हाथों से खोला। उस समय उसकी खुशी में बाजा बजने लगा, और इस शुभ दृश्य का फ़ोटो लिया गया। फिर भगवान् देवात्मा ने साधन मन्दिर में प्रवेश करके उस में अपनी छवि, जीवन सङ्गीत, महा वाक्य और विजय पताका को स्थापन किया। इस के पीछे जब वह फिर सभा में विराजमान हुए, तो श्रीमान् दीनानाथ बाली जी ने हृदय के गहरे भावों से भरकर उन से आशीर्वाद प्रार्थना की; कि जिस में उन्हों ने भगवान् देवात्मा के यहां तशरीफ़ लाने, और तकलीफ़ की हालत में भी इस रसम के अदा करने और सब को उच्च दान देने के लिए कृतज्ञता का प्रकाश किया, और शुभ की प्राप्ति और इस साधन मन्दिर की सफलता के लिए उन से सहाय प्रार्थना की। इसके बाद भगवान् देवात्मा ने सब को शुभ आशीर्वाद दान दिया, और मंगल कामना के अनन्तर साढ़े नौ बजे यह कल्याणकारी सभा समाप्त की। सब उपस्थित जनों को इसकी खुशी में पताशे बांटे गए।

देव समाज हाई स्कूल लाहौर के खुलने पर आशीर्वाद और उपदेश।

[कि जो दो एप्रिल सन् १९१७ ई० को देवालय में एक विशेष सभा में दिया गया]

(सेवक, वैशाख सं० १९७४ वि०)

आशीर्वाद।

" मनुष्य के अस्तित्व में आत्मा हि सार है। आत्मा के द्वारा हि शरीर है। विना आत्मा के शरीर नहीं और इसलिए विना आत्मा के मनुष्य का अस्तित्व भी नहीं। मनुष्य के अस्तित्व में सार चीज़, मुख्य चीज़ यही उस का आत्मा है। यह आत्मा जितना उच्च हो, अर्थात् उसके भीतर नीच गतियों से निकलने और अपने चारों ओर के नाना जगतों के सम्बन्ध में अपनी नीच गतियों के विषय में बोध प्राप्त होकर उन्हें त्याग करने और उन जगतों के नाना अस्तित्वों के सम्बन्ध में सेवा-कारी बनने की अधिक शक्ति हो, उतना हि वह आत्मा श्रेष्ट होता है, उतना हि वह आत्मा बलिष्ट वा बलवान होता है, उतना हि वह आत्मा सौभाग्यवान होता है, उतना हि वह आत्मा जीवन बल रखता है, उतना हि वह आत्मा इस विश्व की कल में एक अच्छा हितकर अंग होता है। इस पृथिवी में देवात्मा का प्रकाश इसी प्रकार के आत्माओं के उत्पन्न करने के लिए है। जहां

तक उस के द्वारा अब तक किसी अंश में ऐसे आत्मा उत्पन्न हुए हैं, वहां तक हमारे देश से आत्म-अज्ञान, वा अन्धकार, मोह, पाप और नीच गतियों का नाश हुआ है, और उस में एक वा दूसरे प्रकार का शुभ आया है, और यह देश पहले से कुछ बेहतर हो गया है।

अब जिस देश में तुम पैदा हुए हो, जिस देश की वायु में तुम श्वास लेते हो, जिस देश की ज़मीन पर तुम चलते फिरते और रहते सहते हो, जिस देश का उपजाया हुआ तुम अनाज खाते हो, जिस देश की ज़मीन का तुम जल पीते हो, जिस देश में तुम्हारे मित्र तुम्हारे और सम्बन्धी उत्पन्न हुए और पले हैं, उस देश से यह सब उपकार पाकर यदि तुम उसके लिए कुछ सेवाकारी न बनो, वा न बन सको, तो तुम अपने देश के सम्बन्ध में अपने अस्तित्व को न केवल निष्फल किन्तु इस से भी बढ़कर अपनी नीच क्रियाओं के कारण कृतघ्न प्रमाणित करते हो, और उसकी बहुत बुरी सन्तान् साबित होते हो। ऐसा हो, कि यह सत्य तुम्हारे सन्मुख प्रकाशित हो और तुम अपने आत्मा के कल्याण के लिए इस सत्य को विशेष रूप से उपलब्ध कर सको, कि जिस देश में तुम ने जन्म लिया है, वह बहुत अधोगति की अवस्था में पहुंचा हुआ है, और उसकी यह अधोगति

इसलिए हुई हैं, कि उस में जीवन बल दायक सच्ची और उच्च शक्तियों का कार्य्य नहीं हुआ; वरन उसके विपरीत कई प्रकार की महा हानिकारक शिक्षा और उसके आधार पर कई प्रकार के महा हानिकारक साधनों के प्रचार से उलटा जीवन बल घटता गया है; कि जिसे खोकर हि हमारे देश वासी इस अधोगति की महा शोचनीय दशा को पहुंचे हैं। अब जिस देश के वासी अधोगति की अवस्था में हों, उन में फिर उच्च गति दायक बल संचार करके उसे जीवन्त करना क्या कोई साधारण काम है? कदापि नहीं। और यही वह अद्वितीय काम है, कि जिस के पूरा करने के लिए देवात्मा का प्रकाश हुआ है. नेचर ने देवात्मा को इसलिए इस देश में उत्पन्न किया है, कि उस में उसकी सब से बढ़-कर ज़रूरत थी। देवात्मा के आविर्भाव से न केवल इस देश का किन्तु इस पृथिवी के अन्य देशों का भी वह कल्याण होगा, जो इससे पहले नहीं हुआ था। ऐसा हो, कि देवात्मा ने अपने इस देश के निवासियों में नया प्राण संचार करके उनका विविध प्रकार से हित साधन करने के लिए अपने जीवन व्रत के अनुसार जो अद्वितीय संग्राम किया है, और जिस संग्राम में तुम में भी अपनी २ योग्यता के अनुसार कुछ न कुछ भाग लिया है, उसी के अनुसार अब भी तुम लोग इस कल्याणकारी काम

के पूरा करने में भली भांत अपना बल लगा सको, और ऐसा करके जिस देश में तुम ने जन्म लिया है, उसके श्रेष्ट बनाने में अपनी ऐसी शक्तियों को सफल कर सको, और उसके लिए भली भांत सेवाकारी बन सको।

उपदेश।

पूजनीय भगवान् ने फ़रमाया, कि लाहौर पंजाब की राजधानी है, और देव समाज का भी प्रधान कार्य्यालय है। देव समाज स्थापन भी यहीं पर हि हुई थी। किसी सुसभ्य गवर्नमेंट की राजधानी होने से किसी भी शहर में जो दो विशेषताएं आ जाती हैं, अर्थात् रुपए और विद्या के विचार में वह शहर अपने देश वा सूबे के अन्य शहरों से बढ़ जाता है, वह दोनों विशेषताएं लाहौर में भी पाई जाती हैं। अर्थात् पंजाब के दूसरे शहरों की तुलना में लाहौर में साधारण तौर से दौलत भी अधिक है, और विद्या भी अधिक है। जिस क़दर विद्वान यहां मौजूद हैं, और विद्या के लाभ करने और विविध अंगों में लाभ करने के जिस क़दर सामान यहां वर्तमान हैं, उस क़दर पंजाब के और किसी शहर में पाए नहीं जाते। परन्तु ऐसी जगह में जहां देव समाज का जन्म हुआ हो, धन और विद्या से परे किसी और वस्तु की भी नितान्त आवश्यकता है। इस आवश्यकता को सच्चे अर्थों में न तो धनवान लोग अनुभव करते हैं,

और न विद्वान लोग; और न वह उसका केवल अपनी तरफ़ से कोई प्रबन्ध हि कर सकते हैं। हम बतलाते हैं, कि केवल धन और विद्या के आने से और आत्मिक उच्च परिवर्तन के न आने से दुनिया में बहुत तबाही आ रही है। युरोप के वर्तमान युद्ध के महा भयानक और शरीर के रौंगटे खड़े कर देने वाले हालात इस सत्य को भली भांत पोषण करते हैं। जरमनी में धन और विद्या की कमी नहीं है; परन्तु उन ने आत्मिक जीवन के उच्च आदर्श, उस की हक़ीक़त और बेहतरी से अज्ञानी रहकर साढ़े तीन वर्ष से जिस २ प्रकार की निहायत ख़ौफ़नाक तबाही पैदा कर रक्खी है, उसका दृष्टान्त दुनिया की तारीख़ में कहीं नहीं मिलता। तब भारत वर्ष को सब से बढ़कर रूहानी बेहतरी और उस में लगातार बेहतरी की आवश्यकता है। यह उद्देश्य लड़कों और लड़कियों की ज़िन्दगियों में कि जिन्हों ने कल को क़ौम का मेम्बर बनना है, पूरा करने के लिए देव समाज की ओर से इस से पहले कई स्कूल खोले जा चुके हैं, कि जो इस उद्देश्य के विचार से अपनी बहुत बड़ी विशेषता रखते हैं। यहां तक कि हमारे बहुत से विरोधी भी उसे स्वीकार करते हैं, और इसलिए उन में से कई एक अपने बच्चों को हमारे स्कूलों में भेजते हैं, ताकि उन की बुरी आदतें सुधर सकें, और वह भले

लड़के बन सकें। इसी उद्देश्य के पूरा करने के लिए यहां पर जिस स्कूल के खोलने की तजवीज़ हुई है, (और बहुत खुशी की बात है, कि इस तजवीज़ को देव समाज के लोगों ने बहुत पसन्द किया है, और उसके लिए कइयों ने क्या रुपया और क्या और तरह से सहायता करने की प्रतिज्ञाएं भी की हैं) इस स्कूल में भी उपरोक्त विशेषता दिखाने की आवश्यकता है। इसलिए उस स्कूल में जो लोग काम करेंगे, वह इस अंग में अपनी बहुत बड़ी ज़िम्मेवारी अनुभव करें। वह स्कूल में केवल अच्छी दिमाग़ी तालीम देने के लिए हि नहीं हैं, किन्तु बच्चों की ज़िन्दगियों को सुधारने का बहुत बड़ा बोझा उनके सिर पर है। और यह सख़्त ज़िम्मेवारी उनकी भी है, कि जो इस स्कूल की प्रबन्धकारिणी सभा के सभासद् हैं। यद्यपि काम बहुत कठिन है, परन्तु कठिन काम का कर दिखाना इन्सान का हि काम है। उसके लिए आशा है, कि वह अपने तन, मन और धन की पूरी तरह से कुर्बानी करेंगे, और जिस क़दर अधिक से अधिक भलाई वह अपनी ताक़तों के द्वारा ला सकते हैं, उसके लाने में कमी न करेंगे।

अन्त में भगवान् देवात्मा ने निहायत ज़बरदस्त और दिलों को हिला देने वाले निम्न लिखित शब्दों में अपील की :—

"देवात्मा चाहता है, देव समाज चाहती है, तुम्हारा देश चाहता है, जिस के तुम ऋणी हो, कि तुम दूसरों की भलाई में अपने तन, मन और धन को अर्पण करो, अधिक से अधिक अर्पण करो, और देव समाज की जो विशेषता इसी प्रकार के त्याग के द्वारा अब तक किसी दर्जे में क़ायम हुई है, तुम उसे अपने नाना प्रकार के त्याग और सेवा के द्वारा और अधिक बढ़ाते जाओ। जो लोग इस स्कूल के सम्बन्ध में काम करेंगे, उनके भिन्न जो सेवक और श्रद्धालु यहां वर्तमान हैं, वा समाज के जो लोग यहां वर्तमान नहीं हैं, उन सब का यह कर्त्तव्य है, कि वह यह अनुभव करें, कि यह देव समाज का हाई स्कूल है। और वह जब कि देव समाज से सम्बन्ध रखते हैं, तब यह उनका अपना स्कूल है। देव समाज का अंग होकर उसके लिए सेवा-कारी बनना उनका लाज़मी फ़रज़ है। हमारी यह आकांक्षा है, कि हमारा यह शुभ उद्देश्य, तुम्हारा यह शुभ उद्देश्य, इस देश की बेहतरीन भलाई का यह उद्देश्य हमारे और तुम्हारे और देव समाज के और सेवकों के द्वारा पूरा हो।"

मोगा हाई स्कूल में उपदेश ।

(सेवक, श्रावण सं० १९७४ वि०)

१७ एप्रिल १९१३ ई० को प्रातःकाल साढ़े सात बजे आत्मिक जगत् के सूर्य्य भगवान् देवात्मा ने मोगा हाई स्कूल के हाल में एक अत्यन्त शक्तिशाली और विशेष कल्याणकारी उपदेश दिया । एक गीत के बाद पूजनीय भगवान् ने खड़े होकर पहले कुछ देर मंगल कामना की, जिस के पीछे देव प्रभावों से परिपूर्ण अपना उपदेश दिया । इस उपदेश के शुरू होने के साथ हि ऐसा अनुभव हो रहा था, कि भगवा देवात्मा इस समय देव ज्योति और देव तेज के सूर्य्य उदय होकर हमारे आत्माओं को उसी तरह रौशन कर रहे हैं, जिस प्रकार भौतिक जगत् का सूर्य्य उदय होकर हमारे जिस्मों को अपनी ज्योति से ज्योतिर्मान करता है । उस समय भगवान् देवात्मा की देव वाणी के द्वारा उच्च नज़ारों और उच्च लहरों का आश्चर्य्य जनक मंडल पैदा हो रहा था, और भगवान् देवात्मा का चेहरा खसूसियत से सुन्दर और आकर्षणीय दिखाई दे रहा था । पूजनीय भगवान् ने अपने उपदेश के पहले हिस्से में यह फ़रमाया, कि मैं इस समय जिस स्कूल के हाल में खड़ा हुआ हूं, वह स्कूल आज से प्रायः १८ वर्ष पहले क़ायम हुआ था । जिस समय यह स्कूल खोला गया था, उस समय इस स्कूल में एक उस्ताद और

१७ लड़के थे। अब क़रीबन १८ साल के बाद हम क्या देखते हैं, कि इस स्कूल ने नाना अंगों में आश्चर्य्य जनक उन्नति की है। अब बजाय १७ लड़कों के ४६५ लड़के और बजाय एक उस्ताद के १६ उस्ताद हैं। उस समय स्कूल का अपना कोई मकान नहीं था, और वह केवल किराए के एक छोटे से कच्चे मकान में खोला गया था। अब स्कूल के विद्यार्थियों की पढ़ाई के लिए अपनी बहुत शानदार पक्की इमारत खड़ी है। इस इमारत के सिवाय बोर्डिंग के कई बड़े २ मकान अलग बन चुके हैं। इस स्कूल के लिए ज़मीन के देने, धन के इकट्ठा करने; इमारत के लिए मसाला लाने और उसे बनवाने और पढ़ाने के काम में अध्यापक की हैसियत में वा उसके विविध प्रकार के प्रबन्ध आदि के काम में जिन २ जनों ने जिस २ प्रकार का त्याग स्वीकार किया है, ऐसे सब लोगों की सेवाएं वास्तव में तारीफ़ के लायक़ हैं। ख़ास कर हमारे मोगा के सरदार जमीयत सिंह जी और उनके सुयोग्य पुत्र सरदार सरमुख सिंह जी बी. ए. अपनी सेवाओं के विचार से विशेष तारीफ़ के मुस्तहक़ हैं।

फिर भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया, कि विद्या की उन्नति की ज़रूरत को और भी कितने हि लोग समझते हैं, और इस बिषय में प्रशंसनीय काम कर रहे हैं; परन्तु

इस स्कूल में लड़कों को बुरी आदतों से उद्धार करने और उन में अच्छी आदतों वा अच्छे भावों के पैदा करने का जो विशेष और मुबारिक काम हो रहा है, उस के विचार से क्या यह स्कूल और क्या हमारी समाज के और स्कूल अपनी बहुत बड़ी विशेषता रखते हैं। फिर स्कूल की उन्नति और स्कूल की विशेपता का संक्षिप्त वर्णन करने के अनन्तर पूजनीय भगवान् ने जो कुछ और फ़रमाया उसका सार यह है:—

मनुष्य ने अपनी उत्पत्ति के बाद शुरू २ में जिस बात की महिमा को अनुभव किया है, वह उसकी शारीरिक ताक़त है। इस ताक़त के विचार से मनुष्यों में जो मनुष्य औरों की अपेक्षा बढ़ चढ़कर शारीरिक ताक़त रखता वा बहादुर होता था, लड़ाइयां लड़ता और उन में जय लाभ करता, और अपने जत्थे के लोगों की रक्षा करता था, वह उनका रहबर होता था और वह उन से विशेष सन्मान और इज़्ज़त पाता था; ऐसे हि शूरवीरों वा सरदारों में से कितने हि जन मरने के बाद अपने पैरवों के उपास्य देवता बने।

फिर जब इन्सान खेती करने और पशु पालने के लायक़ हुआ और दौलत और माल की ताक़त को पहचानने के लायक़ हुआ, तब धन वा दौलत के सिवाय उसके साथ २ अपने साथियों में सन्मान और प्रशंसा का

आकांक्षी भी बना। फिर जिन्हों ने तिजारत को तरक्क़ी दी और ज़मीन पर कबज़ा और अपने हमजिन्सों पर अख़्त्यारात को बढ़ाकर हकूमत वा राज्य को हासिल किया, उन्हों ने दौलत और अख़्त्यारात और हकूमत की अभिलाषा को और भी उन्नत किया। उसके बाद विद्या का ज़माना आया और इन्सान को मालूम हुआ, कि रुपए की ताक़त से भी बढ़ चढ़कर एक और ताक़त है, कि जो इन्सान विद्या अर्थात् अपनी मान्सिक शक्तियों को उन्नत करके हासिल करता है। पिछले दो सौ साल के अन्दर युरोप और एमेरिका की क़ौमों ने इस पहलु में और सब की निसबत ख़सूसियत से तरक्क़ी की है; परन्तु अब वह ज़माना आ रहा है, जब कि क्या शारीरिक ताक़त, क्या दौलत और माल और हकूमत और क्या विद्या की ताक़तों के मुक़ाबिल में इन्सान को दिल की ताक़तों का बोध होता जाता है, और वह इस हक़ीक़त को पहचानता जाता है, कि इन्सान को तो उसकी यही दिल की ताक़तें चलाती हैं, और वही इस से प्रति दिन और हर घड़ी नाना प्रकार का काम कराती हैं। और यह ताक़तें जैसे अदना क़िस्म की हैं, वैसे हि आला क़िस्म की भी हैं। उसके दिल की जो ताक़तें उसे एक दूसरे से अनुचित अन्मेल रखने की बजाय हितकर मेल की तरफ़ ले जाती हैं, अर्थात् किसी उचित और भले

उद्देश्य के अनुभव करने और उसकी तरफ़ कशिश करने और इस परस्पर की कशिश की बिना पर आपस में जुड़ने और जत्था वा जमाअत और उस से भी बढ़कर क़ौम की शक्ल क़बूल करने के लायक़ बनाती हैं, किसी ऐसे जत्थे वा समाज के सम्बन्ध में बन्धकर उचित और आवश्यक आज्ञा पालन करने के क़ाबिल बनाती हैं, अपनी जाति वा अपने देश के उचित प्यार के भिन्न मनुष्य मात्र के नफ़ा और नुक़सान के देखने और उन के सच्चे और उचित फ़ायदे के देखने के योग्य बनाती हैं, एक दूसरे के लिए हमदर्दी पैदा करती हैं, स्वार्थ से निकाल कर परस्पर भलाई की बिना पर सेवा करने के लिए तैयार करती हैं, पाप और बुराई के दायरे को घटाती और भलाई के दायरे को बढ़ाती हैं, कमज़ोरों की मदद करने के लिए उमंगें पैदा करती हैं, परस्पर के सम्बन्धों में दयानतदारी और प्रतिज्ञा पालन और वफ़ादारी को पैदा करती हैं, सच्चे इनसाफ़ और सच्ची नेकी की दाद देने के क़ाबिल बनाती हैं, उसे हठ धर्म्मी से निकालती और उसके परस्पर के सम्बन्ध में उसके दिल को उदार बनाती हैं, साधारण लाभ में उसकी अपनी तकलीफ़ों, उसके भीतर के ईर्षा आदि नीच भावों के दफ़ा करने में मददगार बनती हैं, वही ताक़तें दिल की आला ताक़तें हैं, और वही ताक़तें आला कैरेक्टर

आकांक्षी भी बना। फिर जिन्हों ने तिजारत को तरक्की दी और ज़मीन पर कबज़ा और अपने हमजिन्सों पर अख़्त्यारात को बढ़ाकर हकूमत वा राज्य को हासिल किया, उन्हों ने दौलत और अख़्त्यारात और हकूमत की अभिलाषा को और भी उन्नत किया। उसके बाद विद्या का ज़माना आया और इन्सान को मालूम हुआ, कि रुपए की ताक़त से भी बढ़ चढ़कर एक और ताक़त है, कि जो इन्सान विद्या अर्थात् अपनी मान्सिक शक्तियों को उन्नत करके हासिल करता है। पिछले दो सौ साल के अन्दर युरोप और एमेरिका की क़ौमों ने इस पहलु में और सब की निसबत ख़ुसूसियत से तरक्क़ी की है; परन्तु अब वह ज़माना आ रहा है, जब कि क्या शारीरिक ताक़त, क्या दौलत और माल और हकूमत और क्या विद्या की ताक़तों के मुक़ाबिले में इन्सान को दिल की ताक़तों का बोध होता जाता है, और वह इस हक़ीक़त को पहचानता जाता है, कि इन्सान को तो उसकी यही दिल की ताक़तें चलाती हैं, और वही इस से प्रति दिन और हर घड़ी नाना प्रकार का काम कराती हैं। और यह ताक़तें जैसे अदना क़िस्म की हैं, वैसे हि आला क़िस्म की भी हैं। उसके दिल की जो ताक़तें उसे एक दूसरे से अनुचित अन्मेल रखने की बजाय हितकर मेल की तरफ़ ले जाती हैं, अर्थात् किसी उचित और भले

उद्देश्य के अनुभव करने और उसकी तरफ़ कशिश करने और इस परस्पर की कशिश की विना पर आपस में जुड़ने और जत्था वा जमाग्रत और उस से भी बढ़कर क़ौम की शक्ल क़बूल करने के लायक़ बनाती हैं, किसी ऐसे जत्थे वा समाज के सम्बन्ध में बन्धकर उचित और आवश्यक आज्ञा पालन करने के क़ाबिल बनाती हैं, अपनी जाति वा अपने देश के उचित प्यार के भिन्न मनुष्य मात्र के नफ़ा और नुक़सान के देखने और उन के सच्चे और उचित फ़ायदे के देखने के योग्य बनाती हैं, एक दूसरे के लिए हमदर्दी पैदा करती हैं, स्वार्थ से निकाल कर परस्पर भलाई की बिना पर सेवा करने के लिए तैयार करती हैं, पाप और बुराई के दायरे को घटाती और भलाई के दायरे को बढ़ाती हैं, कमज़ोरों की मदद करने के लिए उमंगें पैदा करती हैं, परस्पर के सम्बन्धों में दयानतदारी और प्रतिज्ञा पालन और वफ़ादारी को पैदा करती हैं, सच्चे इनसाफ़ और सच्ची नेकी की दाद देने के क़ाबिल बनाती हैं, उसे हठ धर्मी से निकालती और उसके परस्पर के सम्बन्ध में उसके दिल को उदार बनाती हैं, साधारण लाभ में उसकी अपनी तकलीफ़ों, उसके भीतर के ईर्षा आदि नीच भावों के दफ़ा करने में मददगार बनती हैं, वही ताक़तें दिल की आला ताक़तें हैं, और वही ताक़तें आला कैरेक्टर

की निशानियां होती हैं, और यह आला कैरेक्टर जिस देश के लोगों में जिस क़दर अधिक विकसित हो, उसी दर्जे वह देश और देशों की अपेक्षा कि जिस के रहने वालों में औसतन उसकी कमी हो बढ़ चढ़कर ताक़त रखता है, चाहे उन देशों के लोगों ने धन और विद्या में अपेक्षाकृत कैसी हि अधिक उन्नति क्यों न की हो। सं० १९०५ ई० की रूस और जापान की लड़ाई में जापान ने अपने से कई पहलुओं में बहुत बढ़िया देश अर्थात् रूस के मुक़ाबिले में क्यों जय लाभ की ? इस लिए कि रूस के बाशिंदों के मुक़ाबिले में उसके बाशिंदे निसबतन बेहतर कैरेक्टर के आदमी थे। भारत वर्ष जैसे निहायत बड़े और विशाल देश पर इङ्गलैंड जैसे छोटे से देश के लोगों की क्यों हकूमत है ? इसलिए कि भारतवर्ष के औसत आदमी की निसबत इङ्गलैंड का औसत आदमी बहुत बेहतर कैरेक्टर रखता है। हिन्दुस्तानी मानसिक उन्नति के विचार से युरोपियन लोगों से हरगिज़ २ कम नहीं हैं; बल्कि बाज़ सूरतों में बेहतर हैं, परन्तु कैरेक्टर की ताक़तों के लिहाज़ से औसतन ज़रूर घटिया हैं। और जब तक वह कैरेक्टर पैदा करने वाली दिल की ताक़तों की हक़ीक़त को न समझेंगे और खुद उन्हीं के देश में नेचर के इन्तज़ाम से जिस देवात्मा का विशेष आविर्भाव हुआ है, और

उसकी जिन देव शक्तियों के द्वारा क्या देव समाज में और क्या देव समाज के द्वारा इस देश के लोगों के दिलों में उच्च परिवर्तन पैदा और आला कैरेक्टर के विकसित करने का जो अद्वितीय काम हो रहा है, उस की महान महिमा के देखने और पहचानने के लायक़ न होंगे, और उसके लिए अपने तन, मन और धन को अर्पण करके दिनों दिन उसके निराले और अद्वितीय उच्च कार्य्य की मदद करने के लिए जिस प्रकार के भावों की ज़रूरत है, उन में विकास पाकर उसके मददगार न बनेंगे, तब तक केवल विद्या और धन और स्वराज्य की पुकार मचाकर वह कोई उच्च और बलवान जाति न बन सकेंगे। जरमनी ने जिस दर्जे धन और विद्या में उन्नति की है, उसे कौन नहीं जानता; परन्तु आख़िर-कार उसके दिल की नीच रुचियों ने अपने से ग़ैर देशों के लोगों पर जिस २ प्रकार के मनसूबे बांधे और उन्हें क़ाबू करके कुल दुनिया पर हकूमत की प्रबल इच्छा ने उसे जिस २ प्रकार के अत्याचार और महा पाप-मूलक कामों के लिए तैयार किया, वह भी कोई छुपी हुई बात नहीं है। और इस सब का फल? फल साफ़ है। आख़िरकार जो लोग उसकी अपेक्षा बेहतर कैरेक्टर रखते हैं, वही उस पर ग़ालब आवेंगे और हम सब भी यही चाहते हैं, कि जो इनसाफ़ और भलाई के

तरफ़दार होकर इस लासानी जंग में हिस्सा ले रहे हैं, वही जय लाभ करें, और वही जय लाभ करेंगे; क्योंकि नेचर के नियम के अनुसार वही उसके अधिकारी हैं। जो लोग यह ख़याल करते हैं, अंग्रेज़ों की यह हकूमत उनकी बाहर की किसी ताक़त के कारण से है, वह सख़्त ग़लती पर हैं। उनकी हकूमत का असल भेद उनके दिलों के भीतर कई उच्च गुणों का हमारी अपेक्षा बढ़ चढ़कर वर्तमान होना है। इस में शक नहीं, हमारे देश के कसरत से बाशिंदे अंग्रेजों की बाहर की पोशाक, रहन, सहन और चुरट और शराब आदि के व्यवहार की नक़ल करते देखे जाते हैं, लेकिन अंग्रेज़ों के भीतर सफ़ाई, तरतीब, समय की पाबन्दी, फ़रज़ के प्यार, क़ौम और मुलक के लिए प्यार, वफ़ादारी, बाध्यता और इंतज़ामिया ताक़त आदि २ की क़िस्म से जो २ उच्च गुण जिस दर्जे में वर्तमान हैं, वह उसी दर्जे हमारे देश वासियों में कहां हैं? इसका यह मतलब नहीं, कि सब अंग्रेज़ हमारी अपेक्षा श्रेष्ट हैं, और इसका यह भी मतलब नहीं, कि जैसे हमारे हां विविध प्रकार के अपराध होते हैं और उनके रोकने के लिए पुलिस, फ़ौज, अदालतें मौजूद हैं, वैसे अंग्रेज़ों के हां अपराध नहीं होते और उनके हां पुलिस, फ़ौज, अदालतें मौजूद नहीं, बल्कि उनकी महिमा इस बात में है, कि अंग्रेज़ी

क़ौम का औसत आदमी हमारे हां के औसत आदमी की अपेक्षा हृदय की कई उच्च शक्तियों के विचार से बहुत बढ़िया दर्जा रखता है। और जब तक उनकी यह बड़ाई क़ायम रहेगी, तब तक उनका हमारे ऊपर हकूमत करना लाज़मी है। और उनका ऐसी हकूमत हमारी अपनी वा किसी और हकूमत की अपेक्षा बहुत दर्जे अच्छी है। शेर क्यों ख़राब है और बकरी क्यों अच्छी है? इसलिए कि शेर दूसरों का नाहक़ ख़ून करता है और बकरी औरों के लिए मुफ़ीद प्रमाणित होती है। यही कारण है, कि शेर दिनों दिन घट रहे हैं। डाकू क्यों बुरा है और क्यों जेल में भेजे जाने वा फांसी पर लटकाए जाने के लायक है? इसलिए कि वह दिल के विचार से नीच है। जरमनी को हम लोग क्यों नफ़रत की निगाह से देखते हैं? इसलिए कि उस ने धन दौलत हकूमत का अनुचित रूप से प्यारा बनकर डाकूओं की तरह दूसरों के देश पर हमला किया है। याद रक्खो, कि हमारे देश की अवनति का मूल कारण उसके रहने वालों का नाना उच्च शक्तियों से विहीन होना है। कुछ साल पहले हमारे देश में बर्साती कीड़ों की तरह बहुत से बैंक और शादी फण्ड और विद्या फण्ड आदि के नाम से कसरत से फण्ड खुले और फिर चन्द के सिवाय सब के दीवाले निकल गए। यह क्यों? बेशक नातजरुबे-

कारी भी उसकी एक वजह थी, लेकिन बहुत बड़ी वजह दयानतदार आदमियों का न मिलना था।

याद रखना चाहिए, कि जिस नेचर ने अपने विकास के सिलसिले में देवात्मा को ज़ाहिर किया है, उसी नेचर के अपने इन्तज़ाम के अनुसार यह देवात्मा अपने सब से आला मक़सद में जय पर जय लाभ करने के लिए है। क्या यह सच नहीं, कि देवात्मा के इस निराले और परम कल्याणकारी काम को मिटा देने के लिए उसके विरोधियों की तरफ़ से अवर्णनीय अनुचित कोशिशें की गईं और की जा रही हैं, फिर भी वह समय के साथ २ बराबर उन्नति करता गया है और उन्नति करता जावेगा। उसकी यह सारी कामयाबी धन वा विद्या की उन्नति के द्वारा नहीं हुई, बल्कि उन विशेष शक्तियों के द्वारा हुई है, कि जिन का उस में प्रकाश हुआ है। देव समाज के स्कूलों में लड़के लड़कियों का बुरी आदतों से उद्धार करने और उन में नेक आदतों के पैदा करने का काम हो रहा है। उसकी अब न केवल हमारे बहुत सारे विरोधी भी दाद देने के लिए, बल्कि उन में से कई अपने लड़के लड़कियों का हक़ीक़ी फ़ायदा समझ कर उन्हें उन में दाख़िल करने के लिए भी मजबूर हो गए हैं। हमारे हाई स्कूलों में कई ऐसे दूर के मुक़ामों से मां बाप ने अपने लड़के दाख़िल किए हैं, कि

जहां पहले से एक छोड़ कई २ हाई स्कूल मौजूद थे। तब हमारे जाति जनों और देश वासियों के लिए किस क़दर हर्ष का विषय होना चाहिए, कि उनकी जाति और उन के देश में देवात्मा के ज़हूर के द्वारा वह अद्वितीय उच्च कार्य्य हो रहा है, कि जिस की उन्हें सब से बढ़कर ज़रूरत थी, और ज़रूरत है। अब ऐसे उच्च कार्य्य की उन्नति के लिए उन्हें दिल खोलकर जिस २ प्रकार की सहायता करनी ज़रूरी है, उसके बयान करने की हमें ज़रूरत नहीं।

विविध विषयों के सम्बन्ध में उपदेश।

देव शास्त्र व्रत के अवसर पर आशीर्वाद।

(जीवन पथ, वैशाख सं० १९५८ वि०)

तुम सब के भीतर आज के व्रत से कल्याण लाभ करने के लिए जहां तक सम्भव हो शुभ आकांक्षा उत्पन्न हो। तुम में से जिस २ के हृदय में जीवन विषयक हित अभिलाषा उत्पन्न हो चुकी है, उसकी हित अभिलाषा इस समय जाग्रत हो। इस हित अभिलाषा से ऊपर कोई और प्रवृति, कोई और वासना, कोई और उत्तेजना उदय होकर तुम्हारी इस उच्च आकांक्षा को दबा न दे। उच्च गति मूलक और आत्मा के लिए प्रकृत रूप से कल्याणकारी धर्म्म साधन जहां सैकड़ों हज़ारों और लाखों जनों के लिए असम्भव है, क्योंकि उनके भीतर धर्म्म सम्बन्धी सात्विक कोष हि उत्पन्न नहीं हुआ, वहां जिन के भीतर यह सात्विक कोष उत्पन्न हो भी चुका है, और जिन के भीतर अपने जीवन के लिए हित अभिलाषा भी जाग चुकी है, वह भी जानते हैं, कि उनकी यह अभिलाषा एक २ बार और कई प्रवृतियों, वासनाओं और उत्तेजनाओं के अधीन होकर किस प्रकार दब जाती है। किस प्रकार वह एक २ बार साधन स्थान में बैठकर भी, साधन मन्दिर में उपास्थित होकर

भी अपने मन की नीच गतियों को रोक नहीं सकते। अपने नाना प्रकार के एक वा दूसरे संकल्पों का दमन नहीं कर सकते। वह साधन मन्दिर में बैठते हैं, शरीर उनका वहां होता है, परन्तु उनके हृदय के भीतर वही एक वा दूसरे प्रकार की सान्सारिक वासनाएं आदि काम करती रहती हैं। साधन स्थान में बैठकर वह इस योग्य नहीं होते, कि अपनी सात्विक हित अभिलाषा को उत्तेजित करके और सब वासनाओं, प्रवृत्तिओं और उत्तेजनाओं से ऊपर चले जाएं, और इस समय उनके भीतर केवल यही एक सात्विक आकांक्षा काम करे, कि आज हम, जिस यज्ञ सम्बन्धी व्रत का साधन हैं, उसी के विषय में वह जीवन दायिनी ज्योति और शक्ति लाभ करें, कि जो उसका उद्देश्य है, जिस से हमारा साधन सुफल हो, जिस से हमारे धर्म्म भाव जाग्रत हों, हमें उच्च ज्योति के मिलने से हमारा धर्म्म विषयक ज्ञान उन्नत हो। यदि इस प्रकार ज्योति और शक्ति लाभ न हो, यदि इस प्रकार सात्विक भावों से जाग्रत होकर कोई आत्मा ऐसे साधन में योग न दे सके, तो वह ऐसे स्थान में आकर केवल बैठ सकता है, परन्तु वह साधन का प्रकृत लक्ष्य सन्मुख नहीं रख सकता, और साधन करके अपने आप को सुफलकाम ही नहीं करता और नहीं कर सकता। इसलिए ऐसा हो, कि तुम में से जिस२

के भीतर साधन कराने द्वारे के साथ हृदय गत योग देने के लिए कुछ न कुछ योग्यता आ चुकी है, उस योग्यता के अनुसार तुम सचमुच आज के व्रत साधन में अपने आत्मा को जोड़ सको। और इस प्रकार अपने जीवन दाता के साथ आन्तरिक सूत्र से जुड़कर आज के व्रत को सफल कर सको। और ऐसा हो, कि इस प्रकार के सात्विक सूत्र के द्वारा जुड़ जाने से जो देव ज्योति और शक्ति तुम तक पहुंच सकती है, वह सब ज्योति और शक्ति तुम्हारे हृदयों तक पहुंच सके। ऐसा हो, कि आज का साधन जिन २ के लिए जहां तक कल्याणकारी हो सकता है, उनके लिए वहां तक कल्याणकारी हो। " ओं यच्छुभं, तन्नआसुव।"

एक और ऐसे हि अवसर पर आशीर्वाद और उपदेश।

(जीवन पथ, श्रावण सं० १९६० वि०)

तुम्हें शुभ प्राप्त हो। तुम्हारे भीतर शुभ के लिए आकांक्षा जाग्रत हो। तुम अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में शुभ और अशुभ के सच्चे भेद को पहचानो। तुम शुभ और अशुभ के केवल शब्दों को हि न सुनो, किन्तु अपने २ अस्तित्व के सम्बन्ध में, उनके प्रकृत अर्थ को उपलब्ध करो। किस २ सम्बन्धी से किस २ सूत्र के द्वारा जुड़ने से क्या २ शुभ अथवा अशुभ आता है,

इसके विषय में तुम्हें प्रकृत ज्ञान लाभ हो। विश्व के विविध विभागों के सम्बन्ध में जो यज्ञ स्थापन किए गए हैं, उन यज्ञों के विषय में ज्योति लाभ करने के लिए अर्थात् सत्य के देखने और उपलब्ध करने के लिए तुम्हारे भीतर आकांक्षा उत्पन्न हो। आज के व्रत साधन के समय तुम्हें जिस सत्य ज्ञान के लाभ करने की आवश्यकता है, उसके लिए तुम्हारे भीतर आकांक्षा उदय हो। और इस प्रकार का ज्ञान जिन बोधों और भावों की उत्पत्ति के द्वारा सफल हो सकता है, उनकी महिमा और आवश्यकता भी तुम्हें अनुभव हो। मूल सम्बन्धी के साथ जिन नीच गति दायक सम्बन्ध सूत्रों के काटने और उच्च गति दायक सम्बन्ध सूत्रों के द्वारा जुड़ने से प्रत्येक यज्ञ के सम्बन्ध में, तुम्हारे लिए शुभ का द्वार खुल सकता है, और अशुभ का द्वार बन्द हो सकता है, शुभ का विकास और अशुभ का नाश हो सकता है, उनका तुम्हारे आत्मा में सत्य रूप से प्रकाश हो। तुम्हें शुभ दायक ज्योति और शक्ति लाभ हो। तुम में से जिस २ के लिए जो २ कुछ शुभ आ सकता है, वह शुभ आवे। मैं तुम्हें ऐसा आशीर्वाद करता हूं।

यज्ञ साधन क्यों? एक ओर तुम्हारे किसी सम्बन्धी के साथ तुम्हारे अस्तित्व का शुभ और अशुभ विषयक जो सम्बन्ध है, उसके विषय में ज्योति लाभ करने, और

दूसरी ओर ऐसी ज्योति के द्वारा इस सम्बन्ध में जो कुछ अशुभ आता वा आ सकता है, उस से मोक्ष पाने के निमित्त प्रकृत बोधों के जाग्रत करने, और जो कुछ शुभ लाभ हो सकता है, उसके निमित्त उच्च अनुरागों के उत्पन्न और उन्नत करने का साधन।

इस प्रकार के साधन से यदि किसी सम्बन्ध में कोई सत्य ज्ञान प्रदायिनी और तत्व प्रदर्शिनी ज्योति और नीच गति नाशिनी बोध शक्ति और उच्च गति दायिनी अनुराग शक्ति लाभ हो, तो ऐसा यज्ञ और उसका साधन तुम्हारे लिए सार्थक और सफल हो सकता है। यदि यज्ञ साधन का यही अभिप्राय हो, जैसा कि वह निश्चय है, तो क्या यह अभिप्राय प्रत्येक मनुष्य के द्वारा, जो केवल मनुष्य कहलाता है, पूर्ण हो सकता है? कदापि नहीं। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जो मनुष्य कहलाता है. किसी ऐसी ज्योति और किसी ऐसी शक्ति के लिए अपने हृदय में कोई आकांक्षा अनुभव नहीं करता। तब क्या यह सच नहीं, कि जब तक उच्च जीवन के लिए किसी मनुष्य के भीतर कोई आकांक्षा हि वर्तमान न हो, तब तक वह उसे कदापि लाभ नहीं कर सकता? हां जिस वस्तु के लिए किसी मनुष्य के भीतर कोई आकांक्षा न हो, वह उसे लाभ करना नहीं चाहता और लाभ भी नहीं करता। अब

यदि यह सच हो, कि हमारे चारों ओर के मनुष्यों में क्या पुरुष और क्या स्त्री के विचार से लाखों की संख्या में ऐसे हि जन वर्तमान हैं, कि जो शरीर की अल्पाधिक आवश्यक रक्षा और कुछ नीच सुखों और वासनाओं की तृप्ति करने के भिन्न और कोई उच्च आकांक्षा नहीं रखते, तो फिर उनके लिए उपरोक्त उद्देश्य के अनुसार किसी यज्ञ का साधन क्या ?

अब फिर यहि कल्पना करो, कि यदि कोई मनुष्य विद्या और विज्ञान की उन्नति से शारीरिक, खान, पान, स्नान, शयन, वस्त्र धारण, व्यायाम, बातचीत और अन्य ऐसी हि बातों के विचार से बहुत सुसभ्य बन जाय, और ऐसे शारीरिक सुखों को प्राप्त हो जाय, कि जो किसी असभ्य वा साधारण पशु की तुलना में बहुत अधिक और बढ़ चढ़कर हों, और इनके भिन्न अहं की तृप्ति से जो सुख मिलता है, उसका भी आकांक्षी हो जाय, अर्थात् वह चाहे कि एक वा दूसरे प्रकार के लोगों में मेरी प्रशंसा हो, मेरी इज्ज़त हो, मेरा सन्मान् हो, आदर हो, मुझे कोई उच्च पद वा उपाधि मिल जाय, मैं धनी कहलाऊं, मैं अधिपति कहलाऊं और इस प्रकार की वासनाएं भी उस में प्रबल रूप से उत्पन्न हो जाएं, तो भी क्या ऐसा मनुष्य जो आज कल की सभ्यता के यह सब बड़े २ लक्षण रखता हो, और

अपनी इन कामनाओं में बहुत कुछ कृतकार्य्य भी हो चुका हो, इन्हीं और केवल इन्हीं कामनाओं में आबद्ध रहकर हमारे किसी यज्ञ साधन के योग्य हो सकता है? कदापि नहीं। तब प्रत्येक यज्ञ साधन का मूल कहां है? जीवन विषयक तत्व ज्ञान के मिलने पर, जीवन के विनाश से उद्धार और उस के विकास की सच्ची आकांक्षा में। अब प्रश्न यह है, कि तुम में से कितने जन ऐसे हैं, कि जिन के भीतर अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में इस प्रकार की ज्योति और शक्ति के लाभ करने की कोई सच्ची आकांक्षा पाई जाती है? जिन के भीतर रात और दिन के चौबीस घण्टों में यह आकांक्षा एक वा दूसरे समय में हृदय के आन्तरिक द्वार को खटखटाती रहती है? यदि ऐसे आत्मा कुछ हों, और ऐसी आकांक्षाओं से परिचालित होकर उन्हों ने इस यज्ञ के सम्बन्ध में सचमुच कोई साधन किया हो, तो वह निश्चय आज इस व्रत के दिन में यहां बैठकर और यज्ञ के दिनों में उन्हों ने अपने प्रति दिन के साधनों से जो कुछ अपने जीवन में शुभ लाभ किया हो, उसे सन्मुख लाकर अपने आप को धन्य २ और कृतार्थ अनुभव कर सकते हैं। और यह समझ सकते हैं, कि यह यज्ञ औरों के लिए चाहे केवल स्वप्न की सी वस्तु रहा हो, हमारे लिए वह निश्चय जीवन दायक प्रमाणित

हुआ है । इस प्रकार साधन की जब तक किसी में योग्यता न हो, तब तक वह बेशक किसी ऐसे साधन में बैठ सकता है, और वह भी इस भाव को लेकर, कि कदाचित मेरे भीतर भी ऐसे साधन के लिए जिस प्रकार की आकांक्षाओं की आवश्यकता है, वह आकांक्षाएं ही जाग उठें, नहीं तो बिना ऐसी आकांक्षाओं के उत्पन्न होने के और बिना किसी यज्ञ साधन के लिए नीच गति विनाशक और उच्च गति विकासक जिन भावों की आवश्यकता है, उनके कुछ न कुछ जाग्रत होने के कोई साधन कल्याणकारी नहीं हो सकता । ऐसा हो, कि तुम में से जिन २ के भीतर कुछ थोड़ी सी भी ऐसी योग्यता आ गई है (यदि वह आ गई हो) कि जो किसी यज्ञ साधन के लिए आवश्यक है, वह उसे सच्चे साधन के द्वारा दिनों दिन बढ़ा सकें । और अभी तक जिन के भीतर इस प्रकार की नितान्त आवश्यक कोई भी योग्यता वर्तमान नहीं है, उनके लिए इस प्रकार की योग्यता के लाभ करने के लिए (यदि ऐसा लाभ करना उनके लिए सम्भव हो) दिनों दिन शुभ अवसर प्राप्त हो सके ।

उच्च जीवन अभिलाषा ।

(जीवन पथ ज्येष्ठ सं० १६५८ वि०)

उच्च जीवन के विषय में सामान्य अभिलाषा का उत्पन्न होना यथेष्ट नहीं है; इस अभिलाषा को दिनों

दिन बढ़ाने की भी आवश्यकता है।

जीवन जिन अटल नियमों के अधीन है, और उन के अधीन होकर जिस २ गति को ग्रहण करके वह जिस २ अवस्था को प्राप्त होता है, उस को प्रति दिन सन्मुख लाने से, जीवन अभिलाषी उच्च आत्माओं के चरणों में बैठकर इसी विषय पर चर्चा करने से, इसी अभिप्राय को लेकर जो पुस्तकें रची गई हों, वा जो २ लेख वर्तमान हों, उनके प्रति दिन के पाठ आदि से यह अभिलाषा बढ़ती है। यह अभिलाषा बढ़ते २ जब इतनी प्रबल हो जाए, कि एक ओर फिर उसके पूरा न होने से दुख प्रतीत हो, और दूसरी ओर जिस जीवन दाता के जीवन भण्डार से उच्च जीवन का दान मिल सकता है, उसकी ओर हृदय स्वभावतः आकृष्ट हो, तब जीवन पथ पर पांव धरने की आशा हो सकती है। जीवन दाता की ओर हृदय आकृष्ट होता है वा नहीं, यदि होता है तो कहां तक होता है, उसका पता उसके लक्षणों से लग सकता है। बिना इस आकर्षण वा अनुराग के ऐसे जीवन के भण्डार से कोई आन्तरिक सम्बन्ध स्थापन नहीं होता, और जब तक ऐसे भण्डार से हि—ऐसे जीवन के स्रोत से हि—सच्चा सम्बन्ध स्थापन न हो, तब तक कोई आत्मा, जो नाना प्रकार की प्रवृत्तियों और वासनाओं आदि की शक्तियों के नीचे दबा हुआ है,

केवल अपना "सारा बल" लगाकर भी क्योंकर उद्धार की आशा कर सकता है ? इसके भिन्न वह एक वा दूसरी प्रवृत्ति वा वासना आदि का इतना पक्षपाती हो जाता है, कि उनके विरुद्ध अपना "सारा" क्या एक २ बार कुछ भी बल नहीं लगाना चाहता। इसलिए जब किसी साधक के भीतर यह प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हो जाय, कि वह अपनी इच्छा वा कामना के नहीं, किन्तु जीवन दाता गुरु की हि शुभ इच्छा के अधीन होकर चलेगा, तभी वह उन की उच्च गति दायिनी शुभ इच्छा से अवगत होना चाहता है, और अवगत होकर और उन से ज्योति और तेज चाहकर और पाकर जीवन के उच्च पथ पर चलने की योग्यता लाभ करता है।

दूर निवासी सेवकों के लिए।

[जीवन पथ, आषाढ़ सं० १९५८ वि०]

परम पूजनीय भगवान् देवात्मा की सेवा में उन के एक ऐसे सेवक ने, कि जिन को अपनी सरकारी नौकरी के कारण सत्संग से बहुत दूर रहना पड़ता था, अपने एक पत्र में लिखता है:—

"मैंने इस वर्ष आप की सेवा में पत्र लिखने में बहुत कमी की है; उसका कारण यही है, कि मैं आध्या-

त्मिक जीवन के विचार से दिनों दिन मृत्यु की ओर जा रहा हूं। जैसे शरीर के विचार से रोगी पुरुष एक २ समय अपने जीने से निराश होकर इधर उधर चारों ओर मृत्यु के सामान देखता है, मेरा भी प्राय: यही हाल है। जीवन दाता पूजनीय भगवान् के चरणों से दूर रहकर, और उनके सेवकों की संगत से वंचित होकर, अथवा दूसरे शब्दों में जीवन के सामानों से दूर रहकर मृत्यु का ग्रास हो रहा हूं। हृदय में हर समय केवल सांसारिक चिन्ताएं और नीच वासनाएं उत्पन्न होती रहती हैं, कोई उच्च भाव जाग्रत नहीं होते! हाय, मेरा क्या परिणाम होगा! यदि आठ पहर कोई फ़िकर है, तो केवल सरकारी काम और खाने पीने और सोने आदि का। मैं तो अपने आप को भंवर में पड़ा हुआ अनुभव करता हूं; क्या मेरे लिए अनुकूल सामान पैदा नहीं होंगे?"

उच्च संगत से दूर रहकर केवल एक इन्हीं का यह हाल नहीं; किन्तु और कितने हि आत्मा भी कि जिन्हें उच्च आत्माओं की पवित्र संगत से दूर और उनके उच्च भाव उत्तेजक साधनों में योग देने से वंचित रहना पड़ता है, अपनी न्यूनाधिक ऐसी हि अवस्था की साक्षी दे सकते हैं, जैसा कि एक और जन के निम्न लिखित पत्र से भी प्रकाशित होगा। वह लिखते हैं :—

"पवित्र संगत के बिना हृदय पत्थर सा हो रहा है। मैं अकेला अपना साधन कुछ करता हूं, परन्तु वह नाम मात्र हि होता है; हृदय उस से वह रस नहीं लाभ करता, कि जो वह उस समय किया करता था, जब कि उच्च संगत को प्राप्त होता था। अब तो इधर उधर के काम धन्दों की हि चिन्ता रहती है। जब मैं अकेला होकर किसी धर्म्म साधन के लिए बैठता हूं, तो हृदय की कठोरता से और दिन भर में कोई सत्कार्य्य न करके बहुत दुखी होता हूं।"

निःसन्देह ऐसे संसार के भीतर रहकर, कि जहां चारों ओर हि अधिकतर धर्म्म भावों को नाश करने वाले और आत्मा में नीच भावों का संचार करने और बढ़ाने वाले प्रभाव पड़ते हैं, उच्च संगत से दूर रहकर धर्म्म भावों से विहीन हो जाना कोई अचम्भे की बात नहीं है। जैसे एक २ कोमल वृक्ष, कि जिस ने अभी धरती से सिर निकाला हि हो, यदि ज्येष्ठ मास की लू में खड़ा रहे, और जलती २ रेत उसकी कोमल पत्तियों पर पड़ती रहे, तो वह शीघ्र हि कुमला जाएगा; और यदि उसकी रक्षा न की जावे और उस को हरा भरा रखने का कोई यत्न न किया जावे तो वह थोड़े हि काल में पूर्ण रूप से सूख जायगा; इसी प्रकार ऐसे आत्माओं का हाल है, और यदि धर्म्म भाव विनाशक नीच प्रभावों से उन्हें

बचाने का कोई यत्न न किया जावे अथवा वह आप ऐसी आत्म विनाशक गति से उद्धार लाभ करने के लिए विशेष यत्न न करें, तो निःसन्देह उन्हें बहुत बड़ी हानि पहुंच सकती है।

तब प्रश्न यह है, कि ऐसे जन क्या करें, कि जिस से उनकी रक्षा हो। वह क्या साधन हैं, कि जो उन्हें उच्च संगत से कुछ काल के लिए दूर रहने की अवस्था में भी उच्च भावों के विचार से जीवित रख सकें ? इस के लिए प्रत्येक धर्म्म अभिलाषी साधक को दो प्रकार के साधन करने चाहिएं। (१) वह साधन कि जिन के द्वारा वह जीवन दाता के साथ योग करके अपने जीवन की उच्च गति के लिए उन से आवश्यक ज्योति और शक्ति पा सकें। (२) वह साधन कि जिन के द्वारा वह उस ज्योति और शक्ति से अनुप्राणित होकर अपने जीवन के द्वारा औरों का शुभ साधन कर सकें। दूसरे शब्दों में एक आध्यात्मिक आहार लाभ करने का साधन, और दूसरा उसे पचाने और सुफल करने का साधन। यह दोनों साधन हि जीवन रक्षा के लिए अतिशय आवश्यक हैं। और पहले के बिना दूसरा और दूसरे के बिना पहला निष्फल हो जाता है। आगे इन दोनों प्रकार के साधनों के लिए पृथक् २ सेवक को क्या कुछ करना चाहिए, इस विषय में प्रत्येक सेवक को अपने २ क्षेत्र

वा मण्डल के कर्म्मचारी से (कि जो उस की मान्सिक और आध्यात्मिक अवस्था और परिवार वा व्यवसाय विषयक कार्य्यों आदि से भली भांत अवगति रखता हो,) पूछकर शिक्षा लाभ करनी चाहिए। यहां पर साधारण रूप से यह बताया जा सकता है कि :—

(१) परम पूजनीय भगवान् देवात्मा के सम्बन्ध में साधन करने के निमित्त :—

(क) उनके, अथवा उनके विषय में उनके योग्य सेवकों के उपदेशों वा लेखों का पाठ करना चाहिए।

(ख) अपनी श्रेणी के सम्बन्ध में उस ने जो २ प्रतिज्ञाएं की हों उन्हें बीच में पाठ करते रहना चाहिए।

(ग) भगवान् देवात्मा के जीवन और उनकी समाज से उस ने जिस २ प्रकार के उपकार लाभ किए हों उन को स्मरण करके उनके प्रति कृतज्ञता, धन्य-वाद और दीनता के भावों को उत्पन्न करना और बढ़ाना चाहिए।

(घ) अपने जीवन में जिन नीचताओं और त्रुटियों का ज्ञान हो चुका हो, उन से उद्धार लाभ करने के लिए सहाय प्रार्थना करनी चाहिए।

(२) सत्कार्य्य साधन के निमित्त :—

(क) अपने परम हितकर्ता मूल सम्बन्धी और उन से सम्बन्धित जनों वा स्थानों के सम्बन्ध में यथा

साध्य एक वा दूसरे प्रकार की किसी सेवा का साधन करना चाहिए।

(ख) जिन धर्म्म वा पारिवारिक सम्बन्धियों आदि से उस ने कोई विशेष हित पाया हो उनकी एक वा दूसरे प्रकार की सेवा करनी चाहिए।

(ग) देवसमाज जनरल फंड अथवा देवसमाज सम्बन्धी हितकर कार्य्यों, यथा उस की पाठशालाओं, चिकित्सालयों आदि की सहायता और सेवा करनी चाहिए।

(घ) अपने साधारण देश वासियों के हित का कोई कार्य्य, यथा उन्हें विद्या पढ़ाना, उनका रोग निवारण करना, समाज के निर्दिष्ट पापों में से एक वा दूसरा पाप छुड़ाना, वा किसी भूखे, नंगे, निर्धन, अंग हीन आदि की कोई सहायता करना चाहिए।

(च) किसी हितकर पशु, यथा गौ, बैल, घोड़े आदि की प्रति दिन कुछ न कुछ सेवा करनी चाहिए।

(छ, किसी हितकर वृक्ष यथा पीपल, बड़, आम आदि की सेवा करनी चाहिए।

उपरोक्त साधनों के भिन्न अपने साथी सेवकों के साथ पत्र व्यवहार रखने, देवसमाज प्रधान कार्य्यालय में अपनी अवस्था आदि का समाचार भेजते रहने और समाज के

नाना प्रचार क्षेत्रों में भगवान् देवात्मा की शक्ति का जो कार्य्य हो रहा है, उस से अवगत रहने के लिए उसके एक वा दूसरे सामाजिक पत्र के पाठ आदि के साधन भी उच्च भावों के जाग्रत रखने में बहुत सहायता कर सकते हैं।

देव समाज के अंग होकर आप उस के लिए क्या करते हैं?

जो आत्मा भगवान् देवात्मा की सेवकी में ग्रहण अथवा दीक्षित होकर देव समाज में प्रविष्ट हो चुके हैं, उनके लिए आवश्यक है, कि वह अपने आप को देव समाज का एक अंग अथवा प्रत्यङ्ग अनुभव करें, और उसकी एक वा दूसरे प्रकार की उन्नति के लिए अपनी योग्यता के अनुसार अपनी एक वा दूसरी शक्ति के द्वारा यत्न करना अपना कर्तव्य समझें। जीवन्त शरीर के भीतर जैसे प्रत्येक छोटा और बड़ा अंग जब उसकी रक्षा, पालना और उन्नति में सहायता करता है, तभी वह उस का जीवन्त अंग समझा जाता है, और जब कोई अंग इस प्रकार कार्य्य करना छोड़ देता है, तभी वह मृत अंग समझा जाता है। ऐसी अवस्था में या तो वह काट दिया जाता है, या यूंहि निकम्मा पड़ा रहकर शरीर के लिए बोझे अथवा कई

अवस्थाओं में हानि का कारण रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक सेवक को समझना चाहिए, कि वह जो देव समाज की जीवन्त गठन का अंग बना है, उसे अपने जीवन की गति के द्वारा अपने आप को उसका जीवन्त अंग प्रमाणित करना है। अर्थात् उसकी एक वा दूसरे प्रकार की उन्नति में भाग लेकर जहां उसके साथ अपने सम्बन्ध को सुफल करना है, वहां इस सेवा से अपने जीवन को उच्च गति में उन्नत करना है। जिन २ शुभ कार्य्यों के द्वारा कोई सेवक देव समाज के लिए जीवन्त और हितकर अंग प्रमाणित हो सकता है, उन में से कुछ यह हैं :—

(१) वह अपने पारिवारिक और अन्य जनों में देव समाज और उसके स्थापक का वर्णन करके उनके प्रति श्रद्धा के भाव को उत्पन्न कर सकता है।

(२) देव समाज अपनी पहली श्रेणी के सेवकों से जिन पापों को छुड़ाती है, उन में से किसी एक वा दूसरे पाप से अपने किसी देश वासी को किसी उचित उपाय के द्वारा बचाने का यत्न कर सकता है।

(३) आप किसी उच्च श्रेणी का सेवक होकर अपने से अपेक्षाकृत नीचे के सेवकों की उच्च गति में साधनों आदि के द्वारा सहायता कर सकता है।

(४)अपने साथी सेवकों और समाज के कर्म्मचारियों

के जीवन की उन्नति और अधिक से अधिक सुफलता अथवा सारी समाज की उन्नति के लिए प्रति दिन मंगल कामना कर सकता हूं।

(५) देव समाज के नाना हितकर कामों की धन के द्वारा सहायता कर सकता है।

(६) समाज की ओर से जिन विविध स्थानों में सेवकों और श्रद्धालुओं के बच्चों और स्त्रियों के हित के लिए विशेष कर और साधारण जनों के हित के लिए साधारण रूप से जो पाठशालाएं स्थापन की गई हैं, उन में अपना समय वा धन देकर सहायता कर सकता है।

(७) समाज के सेवकों, उनके परिवारों और साधारण जनों के हित के लिए जो विविध स्थानों में ओषधियां बांटी जाती हैं, इस कार्य्य में समय और धन से सहायता कर सकता है।

(८) समाज की ओर से सेवकों और साधारण जनों के हित के लिए जो पुस्तकें छप चुकी हैं, उनकी इकट्ठी कापियां लेकर अधिकारी जनों में बांट सकता है, अथवा अधिकारी जनों को उनके मोल लेने के लिए प्रस्तुत करके उन्हें बेच सकता है। इत्यादि २।

इस प्रकार की बहुत सी बातें हैं, कि जिन में एक छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा सेवक अपनी योग्यता

और अवस्था के अनुसार काम करके अपने आप को समाज का जीवन्त अंग प्रमाणित कर सकता है। और इस सेवा के द्वारा अपने जीवन का भी हित साधन कर सकता है।

विविध नोट।

देव समाज के लिए मैं क्या करता हूं ?

[जीवन पथ, माघ सं० १९५८ वि०]

देव समाज के भीतर परम पूजनीय भगवान् देवात्मा की अनुपम उद्धारनी शक्ति काम कर रही है, और उस के द्वारा प्रत्येक सेवक ने अपने जीवन में अधिक वा न्यून रूप से उच्च परिवर्तन लाभ किया है। प्रत्येक सेवक पहले की अपेक्षा अवश्य उच्च हो गया है। इस दृश्य को विचार पूर्वक सन्मुख लाकर जहां भगवान् देवात्मा के कार्य्य की महानता को सन्मुख लाना चाहिए, वहां फिर देव समाज के इस अद्वितीय कार्य्य को देखकर अपने भीतर यह प्रश्न करना चाहिए, कि इस महान कार्य्य को पुष्टि देने, और उसके उन्नत करने के लिए "मैं क्या करता हूं ?" मेरी कौनसी शक्ति, मेरा कौनसा धन वा पदार्थ इस महोच्च कार्य्य में काम आ रहा है ? समय था जबकि यह सारे

जन इसी पृथिवी में वास करते थे, एक वा दूसरे मत वा सम्प्रदाय को मानते थे, चतुर वा विद्वान कहलाते थे, परन्तु उनकी गति नीच गति थी । उनके जीवन विनष्ट हो रहे थे। और अपनी बारी में वह औरों का विनाश कर रहे थे। और यदि भगवान् देवात्मा की पाप विनाशनी और उद्धारणी शक्ति उनके हृदय तक पहुंचकर उनको न हिलाती, और उन्हें उनकी नीच अवस्था से न निकालती, तो वह आज पता नहीं कहां और किस अवस्था में होते और किन २ नीच कर्मों, और दुष्ट कामनाओं में लगकर अपना और औरों का विनाश कर रहे होते। यह सारा परिवर्तन जो उन में आगया यह सब कहां से, और क्योंकर ? यदि उस उद्धार कर्ता शक्तिवान धर्म्म अवतार ने अपने आप को इस महान कार्य्य के लिए भेंट न धरा होता, और वर्षों तक घोर से घोर संग्रामों में पड़कर और दिन रात के कठिन परिश्रमों से, और अपना रक्त बहाकर, इस पुण्य अग्नि को प्रज्वलित न किया होता; और फिर उस उद्धार कर्ता के द्वारा जीवन प्राप्त उनके और कितने हि सेवकों ने अपनी २ तुच्छ शक्तियों की उसी अग्नि में आहुतियां न दी होतीं, और उस पाप मोचनी अग्नि को अपनी ऐसी आहुतियों के द्वारा और प्रबल न किया होता, तो यह सारे फल कहां से और क्योंकर उत्पन्न होते और

हो सकते ? दुनिया में सैकड़ों धर्म्म मत और धर्म्म सम्प्रदाय हैं; उनके बड़े २ मन्दिर और बड़ी २ पुस्तकें हैं; बड़े २ धनी उनके पुजारी और प्रीस्ट हैं; परन्तु सारी पृथिवी पर कहीं भी कोई ऐसा मनुष्य दल नहीं दिखाई देता, कि जिस में सब के सब जन और तो और उन दश मोटे २ पापों से भी विरत हों, कि जिन से देव समाज का प्रत्येक सेवक विरत पाया जाता है !! तब देव समाज का यह सारा कार्य्य कितना महान ! और कितना अद्वितीय !! इस कार्य्य की महानता को उपलब्ध करो, इस कार्य्य की श्रेष्ठता को सन्मुख लाओ, और फिर एक बार प्रश्न करो, कि उसके लिए "मैं क्या करता हूं ?"

सच्ची सहकार्य्यता ।

[जीवन पथ, आषाढ़ सं० १९५८ वि०]

युरोप के सर्व साधारण लोगों में से अनेक जनों में यह उच्च भाव उत्पन्न हो चुका है, कि जिस हित-कर कार्य्य से वह उपकृत हुए हों, अथवा जिस कार्य्य को वह उत्तम और श्रेष्ट अनुभव करते हों. वह उसकी दिल खोलकर सहायता करते हैं । वह लोग हमारे अधिकांश देश वासियों की न्याई एक २ हितकर कार्य्य से अनेक प्रकार का हित पाकर भी उस कार्य्य की

उन्नति के लिए यत्न करने की ओर से विमुख और उदासीन नहीं रहते। हां, उन में से कितने हि जनों को इस विषय में कुछ कहने, वा उपदेश देने की भी आवश्यकता नहीं होती, किन्तु वह आप हि ऐसे कार्य्य की बहुत उत्तम रीति से सहायता करके अपना नाम तक भी किसी पर प्रगट नहीं करते। निसन्देह किसी श्रेष्ट कार्य्य में सच्ची और पवित्र सहकार्य्यता इसी का नाम है। और ऐसी सहकार्य्यता के प्राप्त होने पर ही कोई उत्तम कार्य्य यथेष्ट उन्नति और फल लाभ कर सकता है।

स्वार्थ त्याग और दान।

मानचैस्टर (इङ्गलैंड) में एक मांस भक्षणवर्जिनी सभा है। मांस खाने के विरुद्ध प्रचार करना इसका कार्य्य है। थोड़े दिन हुए इस सभा के मन्त्री को पता मिला, कि किसी नगर की एक वृद्ध स्त्री मरते समय अपनी यह इच्छा प्रकाश कर गई है, कि उसकी सारी सम्पत्ति कि जो चार सौ पौण्ड (छः सहस्र रुपए) की है, उपरोक्त सभा को दान में देदी जावे। इस सभा के कर्म्मचारियों ने इस भद्र स्त्री का पहले कभी नाम तक भी नहीं सुना था। इस दान से सभा के कार्य्य ने बहुत पुष्टि लाभ की है। जो लोग जी किसी शुभ काम की

उन्नति चाहता हो, वह अपने मरने के अनन्तर भी उसकी उन्नति चाहता है, और इसीलिए जो जिस काम को धन से सहाय कर सकता है, उसके लिए धन से, जो पुस्तकों के द्वारा कर सकता है, उसके लिए पुस्तकों से, और जो किसी और प्रकार से कर सकता है, उसके लिए किसी और प्रकार से, अपने शरीर के त्याग के अनन्तर भी सहाय करना स्वाभाविक है। अभी जरमनी के एक धनी अध्यापक ने २३, ६०० पौण्ड अर्थात् प्रायः चार लाख रुपए एक ऐसे अनाथालय के बनाने के लिए दान में दिए हैं, कि जिस में रहने वालों को मांस वा मांस की बनी हुई कोई वस्तु भोजन के लिए न दी जाएगी। उनके इस बड़े दान से एक ओर जहां कितने हि निराश्रय जनों को आश्रय और सहारा प्राप्त होगा; वहां दूसरी ओर मांस भक्षण के विरुद्ध कार्य्य को भी बहुत सहायता मिलेगी, और कितने हि जन मांसाहार की पाप मूलक क्रिया से बच जाएंगे। इन अध्यापक महाशय का यह दान बहुत हि प्रशंसनीय है, और मांसाहार निवारण सम्बन्धी शुभ कार्य्य के साथ उनकी सच्ची लगन का बहुत अच्छा दृष्टान्त है। स्वार्थ-त्याग और शुभ अनुराग और सद् कार्य्य साधन के बिना धर्म्म जीवन लाभ नहीं होता।

धर्म्म-गत वीरता।

धन, धरती आदि के लिए सिर कटवाना सहज है, क्योंकि उनकी वासना बहुतों के भीतर बहुत प्रबल होती है। परन्तु धर्म्म-गत वीरता और है, और वह केवल ऐसे लोगों में पाई जाती है, कि जो एक वा दूसरे प्रकार के पाप के दूर करने और किसी शुभ कार्य्य की जय के लिए संग्राम करते हैं, और ऐसे उच्च संग्राम में सौ सौ कठिनाइयों और विपदों के आने पर भी कभी पीठ नहीं दिखाते। उनका मंत्र यह होता है, कि जिस शुभ अनुराग से उन्हों ने किसी शुभ और श्रेष्ट कार्य्य को हाथ में लिया है, उसकी जय के लिए वह अपना और सब कुछ दे देंगे, परन्तु किसी और डर वा लालच से शुभ को त्याग करके भीरु और नीच नहीं बनेंगे।

ऐसी उच्च वीरता और उच्च कार्य्य के लिए आत्म त्याग का भाव हि एक २ समाज अथवा जाति को उच्च और श्रेष्ट बनाता है, और ऐसे आत्म-त्यागी लोग ही जिस कार्य्य को हाथ में लेते हैं, उस में वह कृत कार्य्य होते हैं। इसी उत्तम भाव ने युरोप की कितनी ही जातियों को इतना बलवान बना दिया है। और इसी के अभाव से हमारी जाति की इतनी अधोगति हो रही है। प्रथम तो ऐसे जन ही दुर्लभ हैं, कि जो विशुद्ध परहित

के भाव से परिचालित होकर अपने जीवन को किसी उत्तम कार्य्य में अर्पण करें, और फिर ऐसे जन तो और भी थोड़े मिलते हैं, कि जो किसी उत्तम कार्य्य में नाना विघ्नों और रोकों के आने पर भी उसी कार्य्य में लगे रहें। और इस भाव का तो अभी प्रायः पूर्ण रूप से ही अभाव है, कि जो उत्तम कार्य्य किसी एक महा पुरुष ने आरम्भ किया हो, उसे उसके पीछे उसी प्रकार से चलाने के लिए और कितने ही जन अपने आप को अर्पण करें, और उसके जीते जी भी यथोचित रूप से अपनी पूरी सामर्थ्य के अनुसार उसकी सहायता करें। इसीलिए हमारे देश में कितने ही जातीय हित के कार्य्य एक उसी जन के साथ समाप्त हो जाते हैं, कि जो उसे आरम्भ करता है। और हमारी जाति उस हित से वंचित रह जाती है, कि जो उस कार्य्य के होते रहने से उसे प्राप्त हो सकता था। आह! हमारी ऐसी दुर्दशा कब निवारण होगी?

सत्य मोक्ष और जीवन दायनी देव गंगा.

[जीवन पथ, आश्विन सं० १९५८ वि०]

हरिद्वार के रेलवे स्टेशन पर सैकड़ों हिन्दु यात्री प्रति दिन उतर रहे हैं। स्त्रियों और पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड हरि की पौड़ियों की ओर जा रहे हैं। इन में से

कोई २ जन अपेक्षाकृत बहुत निकट के स्थानों से, और कोई बहुत दूर के स्थान से आए हैं। कोई पांच वा दश कोस से और कोई पचास, पांचसौ और हज़ारों मील से आए हैं। दूर २ के एक २ यात्री ने यहां तक पहुंचने में जितना कुछ कष्ट उठाया है, जितना धन खर्च किया है, जितना परिश्रम किया है, उसे अब वह गंगा तट पर पहुंचकर सफल समझता है। क्यों? गंगा जी के दर्शन से, और उस से भी बढ़कर उस में डुबकी लगाने से। अब वह गंगा जी के दर्शन करके बहुत प्रसन्न है; और यदि यहां पर पण्डे उसे कुछ क्लेश न दें, तो वह और भी अधिक हर्षित हो सकता है। परन्तु इस प्रकार हर्षित होने के अनन्तर क्या उसके भीतर कभी यह प्रश्न उदय होता है, कि मैं गंगा स्नान के लिए क्यों आया? और इस स्नान से मुझ में क्या विशेषता आ गई? काशी जी वा कानपुर में रहकर जब मैं गंगा स्नान करता था, और अब यहां आकर जो मैंने गंगा स्नान किया, इन दोनों में कौनसा अन्तर है? गंगा के स्नान और किसी और नदी और कुंए और तालाब के स्नान में क्या अन्तर है? मैं इतने दिन जिस कुंए वा तालाब वा नहर के जल से नहाता रहा हूं, उसकी अपेक्षा यहां हरिद्वार में "हरि की पौड़ियों" के स्नान से मुझे अधिक क्या मिला? क्या यह सच नहीं, कि

वहां जैसे जल के द्वारा मैं अपने शरीर के मैल को धो सका था, यहां भी केवल शरीर का हि मैल को धो सका हूं; उस से अधिक कुछ नहीं ? वहां जैसे प्रति दिन के स्नान से मेरे आत्मा के कभी कोई पाप नहीं कटे, यहां भी नहीं कटे ? मैं तो यहां थोड़े दिन के लिए आया हूं, जो यहां के रहने वाले हैं, उनकी अवस्था हि क्या है ? यह प्रश्न साधारण नर नारियों के मास्तिष्क में तो क्या उदय हो सकते हैं, अनेक पढ़े लिखे और सुशिक्षित जनों के भीतर भी उत्पन्न नहीं होते। वह केवल अन्ध संस्कार के पीछे चल रहे हैं। अन्ध संस्कार उन्हें लाठी लिए हुए चला रहा है। और वह अन्धे होकर उसके पीछे चल रहे हैं। आत्मा क्या है? शरीर क्या है ? दोनों का सम्बन्ध क्या है ? शरीर के रोग क्या हैं ? आत्मा के रोग क्या हैं ? शरीर किन रोगों से क्षय को प्राप्त होता है ? आत्मा किन रोगों से विनष्ट होता है ? शरीर के रोगों की औषधि क्या है ? आत्मा किस की और कैसी औषधि से बचता अथवा परित्राण पाता है ? शरीर की पुष्टता किस आहार से होती है ? आत्मा किस आहार के मिलने से रहता और उन्नत होता है ? वह आहार क्या है और कहां से मिल सकता है ? यह महा हितकर प्रश्न इन यात्रियों के भीतर उत्पन्न नहीं होते। हां, जीवन तत्व विषयक ज्योति

से विहीन लाखों और करोड़ों—मूर्ख और विद्वान-स्त्री और पुरुषों की कैसी दुर्दशा ! कैसी कृपापात्र अवस्था !! तब कितना सौभाग्य है उनका जिन को जीवन विषयक आत्म ज्ञान की महा हितकर ज्योति लाभ हुई हो और जिन का ऐसी ज्योति के भण्डार से कोई जीवन्त और सच्चा सम्बन्ध स्थापन हुआ हो, और उन्हें जीवन सम्बन्धी अन्धकार से निकलकर जीवन के उच्च पथ पर चढ़ने का अवसर मिला हो।

(७)

तीर्थ दर्शन और गंगा स्नान से हिन्दुओं की दुर्दशा दूर नहीं हुई और नहीं हो सकती।

[जीवन पथ, कार्तिक सं० १९५८ वि०]

गंगा की धार हज़ारों वर्ष से बह रही है। हिमालय पर्वत भी हज़ारों वर्ष से खड़ा है। परन्तु भारत वासी हिन्दुओं की दशा क्या है ? वह हिमालय और हिमालय पर वर्तमान कितने ही तीर्थों के दर्शन भी करते रहे; सैकड़ों, हज़ारों और कभी २ लाखों की संख्या में मिल कर गंगा स्नान भी करते रहे; परन्तु इनके इस दर्शन और स्नान ने इनकी अवस्था को केवल यही नहीं, कि कुछ भी उच्च नहीं किया, किन्तु उनकी लगातार अवनति और दुर्गति के पथ से भी उन्हें कभी न रोका। और इसीलिए एक ऐसा चिन्ताशील जो भारत की महा

शोचनीय अवनति को देख सकता हो, जिस का हृदय भारत वासी हिन्दुओं की दुर्दशा को सन्मुख आकर तिलमिला उठता हो, गंगा के तट पर बैठकर और ठण्डी श्वास भरकर यह कहने के बिना नहीं रह सकता, कि हे हिमालय, हे गंगे ! तुम्हारे और उपकार हमारे जाति जनों के लिए कितने ही अधिक क्यों न हों, परन्तु हिन्दु जाति को अवनति से रक्षा करना तुम्हारे लिए असम्भव था। जिस जाति के मनुष्यों में जातीयता का कोई बन्धन नहीं, जो जानते तक नहीं, कि जातीय भाव किसे कहते हैं, जो जीवन प्रद सत्य धर्म का ज्ञान तो कहीं रहा, यह भी अनुभव नहीं कर सकते, कि संसार के धन, ऐश्वर्य्य, बल और वीर्य्य के विचार से उच्च होना क्या, और नीच होना क्या; सांसारिक उन्नति के लिए दलबद्ध होना क्या, और एक जाति बनना क्या ! जो जातीय उन्नति और जातीय अवनति के प्रकृत अर्थ को भी नहीं समझते, जो अपने आत्मा की सच्ची रक्षा करना तो एक ओर, अपने शरीर की प्रकृत रक्षा के उपाय भी नहीं जानते। जो दिनों दिन निर्धन और निरुपाय होकर नाना प्रकार के दुख पा रहे हैं; नाना प्रकार की कुरीतियों और कुसंस्कारों के दास बनकर विविध प्रकार के क्लेश भोग रहे हैं, वह तुम्हारे जल और स्नान से बच नहीं सके। हाय वह अपनी इस

महा भयानक अवस्था को भी नहीं जानते और नहीं देखते !!! परन्तु जो देखता है, और उसे अनुभव करके दुखी और व्याकुल हो सकता है, उस पर अपने जाति जनों की यह महा दुखदाई अवस्था जो कुछ प्रभाव डालती है, वह केवल अनुभव करने की वस्तु है, वर्णन करने की नहीं।

(३)

देव लोक की देव गंगा।

हाय ! हमारे देश वासियों के हृदय कितनी हीन अवस्था को पहुंच चुके हैं, कि वह उस देव गंगा को, उस स्वर्गीय गंगा की महिमा को नहीं उपलब्ध कर सकते, कि जो भगवान् देवात्मा के द्वारा प्रगट हुई है, और जिस की अमृत धार को उन्हों ने बहाया है। जो सचमुच प्राण दायिनी है। जिस के जीवन प्रद जल की कुछ २ बून्दें पीकर सैकड़ों भारत वासियों का महा कल्याण हुआ है, और उनका इसी संसार में विविध प्रकार की नीच गतियों से उद्धार हुआ है। न केवल उनका आन्तरिक नीच जीवन बदल गया है, किन्तु जैसी कि आशा करनी चाहिए इस आन्तरिक परिवर्तन के साथ २ उनकी बाहर की सांसारिक अवस्था भी बदल कर श्रेष्ठ और सुन्दर हो गई है। यह वह देव लोक की गंगा है, कि जिस की धार मट्टी पर नहीं बहती, किन्तु

आत्मा के अन्तरराज्य में बहती है। यह वह गंगा है, कि जिस के जल के पान और स्नान के फल इसी लोक में प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं। यह वह गंगा है, जिस के द्वारा सब सम्बन्धों में हित और कल्याण आता है। और आत्मा नया रूप और नया जीवन लाभ करता है। यदि भारत का उद्धार और उसकी दुर्दशा का सच्चा निर्वाण और उसका प्रकृत कल्याण और सौभाग्य सम्भव हो, तो वह इसी देव लोक की जीवन दायिनी देव गंगा के द्वारा सम्भव है।

देव धर्म्म विविध सम्बन्धों में क्या शिक्षा देता है।

(जीवन पथ, श्रावण सं० १९५८ वि०)

सम्बन्ध तत्त्व की महा हितकर ज्योति ज्यों २ किसी आत्मा को लाभ होती है, त्यों २ वह इस सत्य के उपलब्ध करने के योग्य बनता है, कि अपने अहं वा अपने स्वभाव वा अपनी रुचि वा संस्कार आदि के वश होकर किसी जीव की उचित स्वाधीनता में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं है। खाने पीने, पहनने, अलंकार धारण करने आदि किसी विषय में किसी की उचित स्वाधीनता में धर्म्म के नाम से कुछ हस्तक्षेप करना उचित नहीं है। इस से धर्म्म और समाज दोनों को बहुत हानि पहुंचती है। मनुष्य तो एक ओर, देव धर्म्म

छोटे से छोटे कीट की भी उचित स्वाधीनता की रक्षा की शिक्षा देता है। इसके भिन्न यह जीवन प्रद धर्म्म जैसे कंगालों के लिए है, वैसे हि बड़े २ धनी लोगों के लिए। धन सम्पद, स्वभाव, रुचि आदि विविध अवस्था के विचार से यह सब जनों को एक लाठी से हांकने की शिक्षा नहीं देता। इसके भिन्न यह शिल्प, वाणिज्य आदि सुसभ्यता मूलक सब प्रकार की कल्याणकारी उन्नति का बन्धु है। और इसीलिए अपनी आर्थिक और अन्य अवस्था के विचार से जहां तक किसी जन के लिए उत्तम आहार, उत्तम वस्त्र, उत्तम अलंकार और अन्यान्य उत्तम वस्तुओं का व्यवहार विधेय हो, उसके व्यवहार की आज्ञा देता है। पति पत्नी विषयक सम्बन्ध में भी यह किसी पुराने किन्तु अनुचित संस्कार के कारण किसी अनुचित संयम की शिक्षा नहीं देता। हमारे कर्म्मचारियों को इन सब विषयों में पुराने प्रचलन वा संस्कार आदि से परिचालित होकर कोई अयथ शिक्षा न देना चाहिए।

देव धर्म्म के प्रचार की आवश्यकता।

तुम में यदि कुछ धर्म्म भाव प्रस्फुटित हो चुके हैं; तुम यदि धर्म्म प्रचार के लिए अपने भीतर अपेक्षाकृत अधिक चाव और उत्साह अनुभव करते हो; तुम

यदि देव धर्म्म के आविर्भाव की महानता को दिनों दिन अधिक से अधिक उपलब्ध करते जाते हो; तो फिर क्या तुम यह नहीं समझते, कि धर्म्म विषयक सेवा और दान करके हि तुम अपने धर्म्म जीवन को उन्नत कर सकते हो? क्या तुम नहीं देखते, कि भारत के प्रत्येक प्रदेश में ऐसे कार्य्य क्षेत्रों के खुलने की अत्यन्त आवश्यकता है, कि जहां अधिकारी जनों तक देव धर्म्म दाता की ज्योति और शक्ति पहुंचाकर जहां तक सम्भव हो, उनकी नीच गति और विनाश से रक्षा की जाए? यदि जानते और देखते हो, तो फिर ऐसे महत कार्य्य में अपने जीवन को नियुक्त करने के लिए अपने आप को प्रस्तुत क्यों नहीं करते? इससे बढ़कर और कोई कार्य्य वा दान नहीं है। इस से बढ़कर आत्मोन्नति साधन के लिए और कोई काम भी नहीं है। कहां हैं वह लोग जो धर्म्म प्रचारकों की संख्या के बढ़ाने के निमित्त अपने धन और अपनी मंगल कामना से सहाय करना चाहते हैं?

व्याख्यान और आज्ञा के द्वारा पापाचरण से मोक्ष नहीं होती।

[जीवन पथ, पौष सं० १९५८ वि०]

कितने हि जन एक २ सभा में खड़े होकर अपने

व्याख्यान में यह कहना आरम्भ करते हैं :—

" भाइयो ! हम लोगों के आचरण अच्छे नहीं हैं, कितने हि हम में से मांस खाते हैं, कितने हि कई प्रकार के नशों का सेवन करते हैं, कोई उत्कोच (रिश्वत) लेते हैं, कोई चोरी करते हैं, कोई जुआ खेलते हैं, कोई धोखा देकर लोगों का धन लूटते हैं, कोई व्यभिचार करते हैं, कोई बहु विवाह करते हैं, कोई विविध प्रकार के और अत्याचार करते हैं। साधारण जन हम लोगों के आचरणों को बुरा बतलाकर विद्रूप करते हैं, और कहते हैं, कि यह लोग ईश्वर, ईश्वर और ईश्वर की वाणी की रात दिन पुकार मचाकर भी आचरण 'शैतानों' के से रखते हैं। मुंह से जो कुछ कहते हैं, उसके अनुसार कार्य्य कुछ भी नहीं करते। उनका इस प्रकार से हम लोगों को विद्रूप करना बिलकुल ठीक है। इसलिए प्यारे धर्म्म सम्बन्धियों ! हमारे लिए अब यह उचित है, कि हम लोग यह सब पाप कर्म्म छोड़कर अपने २ हृदय शुद्ध करें, और आगे के लिए लोगों के ताने न सुनें।"

वर्तमान जनों ने व्याख्यान सुन लिया। कुछ लोगों ने तालियां भी बजा दीं। परन्तु व्याख्यान कर्ता की इस आज्ञा का फल कुछ न हुआ। एक वर्ष चला गया, फिर वही अवस्था; कई वर्ष चले गए, दश, बीस वर्ष व्यतीत

हो गए; परन्तु पापाचरण घटने के स्थान में बढ़ता हि जाता है। व्याख्यान होते हैं, आज्ञाएं दी जाती हैं, परन्तु सब निष्फल जाती हैं। यह पढ़े लिखे मूर्ख यह समझते हैं, कि लोगों को एकत्र करके व्याख्यान देकर कुछ कहने और आज्ञा देने की देर है, और सब के पाप और दुराचार छूट जाएंगे। परन्तु प्रकृति के नियम इन लोगों की महा मूर्खता पर हंसते हैं; और इन नियमों के जानने वाले भली भांत समझते हैं, कि जैसे कैन्यूट बादशाह जब समुद्र के तट पर बैठा हुआ समुद्र को यह आज्ञा दे रहा था, कि अपनी लहरें और आगे न भेज, मेरे कपड़े भीग जाएंगे; और समुद्र उसकी आज्ञा को नहीं सुनता था, और अपनी लहरों को बन्द नहीं करता था; वैसे हि एक २ मनुष्य के भीतर जिन २ नीच प्रवृत्तियों और वासनाओं और उत्तेजनाओं की लहरें उठ रही हैं, और उसे अपने वेग से वशीभूत करके नीचे को ले जा रही हैं, और नाना प्रकार के उपरोक्त पाप हि नहीं, किन्तु उन से बढ़कर और सैकड़ों पाप ऐसे करा रही हैं, कि जिन का उन्हें कुछ पता तक नहीं है; वह लहरें किसी की आज्ञा से बन्द नहीं होतीं। वह क्रमागत उठती हैं, और जिस के आत्मा पर वह जितना अधिकार लाभ कर चुकी हैं, उतना हि उस को, और तो और, एक २ बार उसकी अपनी इच्छा के विरुद्ध भी पाप करने के लिए

बाध्य करती रहती हैं। पापी का पतन होता जाता है, और वह अपने दुर्बल आत्मा के साथ इन नीच गतियों की प्रबल धार में उसी प्रकार विवश बहता चला जाता है, जिस प्रकार एक २ वृक्ष की छोटी सी टहनी किसी नहर वा नदी की धार मे बहती चली जाती है।

यदि किसी व्याख्यान वा आज्ञा देने से पापियों का परित्राण सम्भव होता, तो प्रत्येक गवर्नमेंट कम से कम अपने राज्य से विविध प्रकार के अपराधों को दूर कर देने के लिए, प्रत्येक ज़िले के आदमियों को इकट्ठा करके ईश्वर की वाणी के भिन्न अपनी राज्य विधि के साक्षात् वचन सुनाकर लोगों को अपराध रहित बना देती। विचारालय सब बन्द कर देती। कोई किसी पर अत्याचार न करता। और भीतर बाहर चारों ओर सुख और शान्ति का राज्य स्थापन हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता, और नहीं हो सकता। हज़ारों मनुष्य ऐसी अधम प्रकृति को लेकर जन्म लेते हैं, कि उनके आत्माओं में कोई उच्च परिवर्तन आ हि नहीं सकता और जो ऐसी प्रकृति को लेकर उत्पन्न होते हैं, कि जिन में उच्च परिवर्तन आ सकता है, उन्हें नीच गतियों की प्रबल धार से रोकने और उन की गति को बदलने के लिए किसी ऐसे महा उच्च शक्ति दाता से जुड़ने की आवश्यकता है, कि जिस की शरण लेकर और जिस के प्रभावों को पाने

से वह ऐसा परिवर्तन लाभ कर सकते हैं। जब तक किसी ऐसी उद्धारिणी और उच्च गति दायिनी शक्ति के भण्डार जीवन दाता का आश्रय प्राप्त न हो, तब तक पापी आत्माओं का विविध नीच गतियों से उद्धार और उन में उच्च गतियां का विकास नहीं हो सकता।

धर्म्म का पूर्णाङ्ग आविर्भाव।

अब जिस आत्मा का आविर्भाव ऐसी विशेषता को लेकर हुआ हो, कि जिस के द्वारा वह आत्मा कि जो विविध प्रकार की महा भयानक और विनाशकारी नीच गतियों के अधीन हों, उद्धार पा सकते हों, और एक वा दूसरी नीच गति सम्बन्धी पाप से परित्राण पाकर उच्च गति वा उच्च जीवन की ओर गमन कर सकते हों, वही आविर्भाव धर्म्म का अवतार होता है। यह धर्म्म का अवतार अपने कामों और अपनी शक्ति के लक्षणों और फलों से पहचाना जाता है। किसी को ऋषि और किसी को महर्षि और किसी को पैग़म्बर और किसी को महात्मा आदि कहना और बात है, परन्तु धर्म्म के सच्चे अवतार के बिना पृथिवी का पाप भार हलका नहीं होता। और उच्च गति मूलक शुभ और कल्याण का राज्य नहीं आता। पूर्णाङ्ग धर्म्म का अवतार न केवल बहुत बड़ी विशेषता रखता है, किन्तु वह अपनी इस विशेषता के विचार से प्रकृति में अद्वितीय आविर्भाव और

अद्वितीय धर्म्म शिक्षा और धर्म्म भावों का प्रकाशक भी है।

भगवद् गीता का अवतार और है और धर्म्म का सच्चा अवतार और।

भगवद् गीता के चौथे अध्याय में लिखा है :—

परित्राणाय् साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां,
धर्म्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

(अर्थ)

मैं साधु लोगों की रक्षा और दुष्कर्म्म कारी पापी जनों का विनाश करके धर्म्म स्थापन करने के लिए समय २ में आविर्भूत होता हूं।

बतलाया जाता है, कि इस श्लोक के अनुसार श्री कृष्ण जी महाराज कहते हैं, कि मैं धर्म्म संस्थापन के निमित्त समय २ में अवतार लेता हूं। किस धर्म्म के संस्थापन के लिए? कि जिस में इसी श्लोक के कथन के अनुसार साधुओं का परित्राण और पापियों का नाश करना उद्देश्य रक्खा गया है? अब कोई पूछे कि भला यह भी कोई धर्म्म स्थापन करना है? इस में तो धर्म्म कुछ भी नहीं, वरं अधर्म्म अवश्य है। पापियों के पाप तो उनके आत्माओं का नाश कर हि रहे हैं, तुम उलटा उनका नाश करके कौनसा उत्तम काम करते हो? फिर उनका नाश करके साधुओं का परित्राण क्या? कोई जन

सचमुच साधु होता हि तब है, जब वह पाप जीवन को परित्याग करने, और शुभ गुणों के धारण करने के योग्य बने। इसीलिए साधुओं का परित्राण क्या? अब यदि इस श्लोक का यह अभिप्राय समझा जाय, कि जब किसी देश में अच्छे लोगों को बुरे और दुराचारी लोग दुःख और हानि पहुंचाते हैं, तो श्री कृष्ण चन्द्र जी प्रकाशित होकर बुरे और दुराचारी लोगों को मारकर उनकी पीड़ा से साधु जनों का परित्राण कर देते हैं, तो भी यह साधारण युद्ध वा लड़ाई की बात हुई, किसी को धार्मिक बनाने की बात तो कुछ भी न हुई। धर्म्म स्थापन की बात तो तब होती, कि जब बिचारे पापियों को नाश करने के स्थान में उनके जीवन को पाप की गति से फेरकर पाप जीवन से उनका परित्राण किया जाता। सो वह तो इस श्लोक में कुछ भी नहीं। फिर धर्म्म संस्थापन क्या? पापियों का नाश तो शारीरिक बल से हो सकता है, परन्तु पापियों का तो इस से कुछ भी भला नहीं होता। हां, पापियों का नाश कर देने के स्थान में यदि कोई अपनी ज्योति और शक्ति के द्वारा उनके पापों का नाश करे, अर्थात् पाप जीवन से उनका परित्राण करे, तो उस से जहां एक ओर पापियों का सब से श्रेष्ठ कल्याण होता है, वहां दूसरी ओर उन का इस प्रकार सब से श्रेष्ठ कल्याण कर्ता अपने इस

महान कार्य्य के द्वारा धर्म्म का सच्चा अवतार वा आविर्भाव भी कहलाया जा सकता है । इस के भिन्न उपरोक्त श्लोक के अनुसार युद्ध आदि में वीरता के प्रकाश वा युद्ध में सैकड़ों लोगों को वध करने वा कराने के विचार से कोई और प्रकार का अवतार हो, तो हो, परन्तु धर्म्म का अवतार नहीं हो सकता ।

व्यवसाय विषयक मिथ्या कुल भेद ।

कुछ लोग एक जगह एकत्र बैठे थे । वह आपस में कुछ निर्दोष हंसी की बातें कर रहे थे । इतने में ज्ञान देव भी वहां आ पहुंचे । सब वर्तमान जनों ने बहुत आदर सन्मान् के साथ उन्हें बैठने के लिए स्थान दिया । उनके आसन ग्रहण कर लेने पर सब जनों ने विनय पूर्वक उन से आवेदन किया, कि आप के आने से पहले हम लोग कुछ निर्दोष हंसी की बातें कर रहे थे, और यद्यपि उन से हंसी तो आती थी, पर कुछ शिक्षा नहीं मिलती थी । आप बहुत श्रेष्ठ ज्ञान रखते हैं, आप में इतनी सामर्थ्य है, कि आप कुछ ऐसी बातें भी करें, कि जो हंसाने वाली हों, और साथ हि जिन से कोई उत्तम शिक्षा भी मिल सके । अतएव कृपा करके कुछ ऐसी बातें कीजिए, कि जिन्हें सुनकर एक ओर जहां हमारा हृदय हास्य रस से भरकर कली की न्याईं खिल जाए,

वहां दूसरी ओर हमारा मस्तिष्क भी किसी उच्च तत्व को देखकर श्रेष्ट ज्ञान लाभ करें। ज्ञान देव जी ने उनके इस आवेदन को सुनकर कहा, कि बहुत अच्छा! आप लोग प्रस्तुत हों, मैं आप की शुभ इच्छा के पूर्ण करने के लिए यत्न करूंगा। यह कहकर उन्हों ने अपनी जेब से एक डिबिया निकाली, और उसे खोलकर उस में से चार इंच लम्बी एक शलाका और एक सिन्दूर की पुड़िया बाहर रखी। पुड़िया में से उन्हों ने कुछ सिन्दूर निकाल कर इस शलाका के दोनों सिरों पर लगाया। फिर धीरे २ होंठ हिलाकर कोई मंत्र पढ़ा, कि जिस को कोई और नहीं सुन सका। फिर उन्हों ने एक काले बोर्ड के पास खड़े होकर और इस शलाका को हाथ में लेकर और एक २ को अपने पास बुलाकर और उस के सिर पर वह शलाका चार बार फेरकर, उसका नाम पूछना, और बोर्ड पर लिखना आरम्भ किया।

इस प्रकार कई जनों ने अपने जो २ नाम बोर्ड पर लिखवाए, वह यह थे :—

(१) हलदी प्रसाद बी० ए०, बी० एल० वकील हाईकोर्ट।

(२) जलेबी सिंह एम० ए०, हैड मास्टर हाई स्कूल।

(३) लड्डू राम, डिपुटी कलेक्टर।

(४) धतूरा सिंह, एम० ए०, मुन्सिफ ।

(५) रत्न जोत बी० ए०, एम० बी०, असिस्टेएट सरजन ।

(६) कतकी प्रसाद, हैड क्लर्क ।

ज्ञान देव ने हलदी प्रसाद वकील के सिर पर एक वार फिर अपनी शलाका फेरी और पूछा :—

(प्रश्न) आप कौन हैं ?

(उत्तर) जनाब मैं तेली हूं ।

वकील साहब का यह कहना था, कि "मैं तेली हूं" और सब 'ह, ह, ह, ह,' करके हंस उठे और बोले, कि हम ने समझा था, कि आप वकील हैं, और आप के बाप दादे हि तेल निकालने का पेशा करके तेली कहलाते थे; पर आप की अकल के कुर्बान जाइए, कि आप तेली का पेशा छोड़कर भी अपने आप को तेली कहते हैं।

ज्ञान देव ने जलेबी सिंह हैड मास्टर के सिर पर अपनी शलाका फेरी और पूछा :—

(प्र०) आप कौन हैं ?

(उ०) जनाब मैं सुनार हूं ।

हैड मास्टर जी का यह कहना था, कि "मैं सुनार हूं" और वर्तमान जनों ने उनके इस उत्तर पर फिर उच्च हास्य किया। और कहा, कि आप एक ऐसे

जन के बेटे तो अवश्य हैं, कि जो सोने चांदी के ज़ेवर बनाता था, और इसीलिए सुनार कहलाता था, पर आप हेड मास्टर होकर अपने आप को झूठ मूठ सुनार कहते हैं। शोक! आप एम० ए०, होकर इतनी समझ भी नहीं रखते, कि आप अपने बाप की न्याई यद्यपि सुनारी का काम नहीं करते, फिर भी अपने आप को सुनार कहते हैं।

ज्ञान देव ने डिपुटी लड्डू राम के सिर पर अपनी शलाका फेरी और प्रश्न किया :—

(प्र०) आप कौन हैं ?

(उ०) मैं नाई हूं।

डिपुटी साहब के उत्तर देने पर, कि "मैं नाई हूं" फिर कहकहा लगा और कई मुखों से यह शब्द निकला, वाह! डिपुटी साहब आप हजामत तो अच्छी बनाते होंगे—भला आप की किसबत कहां है ?

ज्ञान देव ने धतूरा सिंह मुन्सिफ के सिर पर भी अपनी शलाका फेरी और पूछा :—

(प्र०) आप कौन हैं ?

(उ०) मैं तरखान हूं।

मुन्सिफ साहब के मुंह से यह सुनते हि कि "मैं तरखान हूं" सारे जन हंस पड़े, और एक ने कहा, कि सरदार साहब किसी दिन हमारी चौकी की मुरम्मत

भी कर जाना।

इस के अनन्तर डाक्टर रतन जोत की वारी आई। इन पर भी ज्ञान देव ने अपनी शलाका फेरी और फिर उन से पूछा :—

(प्र०) महाशय! आप कौन हैं?

(उ०) मैं मोची हूं।

आवाज़ आई; अच्छा! अच्छा। डाक्टर साहब आप मोची हैं। जूतियां बनाते हैं। हम ने समझा था, कि आप असिस्टंगट सरजन हैं, और चिकित्सा का काम करते हैं!! (सब का उच्च हास्य।)

ज्ञान देव ने कतकी प्रसाद हेड क्लर्क के सिर पर भी अपनी शलाका फेरी और पूछा :—

(प्र०) कहिए साहब! आप कौन हैं?

(उ०) मैं-मैं-मैं बतला हि दूं? मैं धोबी हूं।

हेड क्लर्क साहब ने रुकते २ ज्यों हि धीरे से यह कहा, कि "मैं धोबी हूं" त्यों हि सब वर्तमान जन तो हंस २ कर लोटने लगे। किसी ने कहा, कि दफ़तर में बैठे हुए आप कपड़ों पर स्याही मलकर कलम की चोट से कपड़े धोते होंगे।

अभी हंसी का शब्द नहीं हुआ था, कि ज्ञान देव ने कहा बस! अब हंसी हो चुकी। सुनो! और भली भांत ध्यान दो! तुम लोगों ने पढ़ लिखे होकर, बड़े २

विद्वान कहलाकर, यूनीवर्सिटी की डिगरियां लेकर " कुल भेद " की मिथ्या शिक्षा के अनुसार अपने २ उत्तरों मे जैसे एक ओर बुद्धिमता के स्थान में मूर्खता का परिचय दिया है, और अपनी मूर्वता से एक दूसरे को हंसाया है, वहां अपने उत्तरों से शरमसारी भी दिखाई है। तुम्हारे ऊट पटांग उत्तर और तुम्हारा लज्जित हो होकर ऐसे उत्तर देना क्या तुम पर " प्रचित कुल भेद " की झूठी प्रथा को प्रकाश नहीं करता ?

यदि तुम में से किसी का बाप कभी अपने आप को तेली वा तरखान वा सुनार वा लोहार कहता था, तो वह तेली, तरखान, सुनार और लोहार का उस समय व्यवसाय भी करता था—वह उन पेशों के काम को जानता था और करता था। परन्तु तुम्हारी अवस्था क्या है ? तुम वह पेशे नहीं करते, किन्तु उन से भिन्न और व्यवसाय करते हो, परन्तु फिर भी वकील होकर, डिपुटी होकर, मुन्सिफ होकर झूठ मूठ अपना ऐसा व्यवसाय बतलाते हो, कि जो तुम नहीं करते, और जिस के बतलाते में तुम बहुत कुछ लज्जा भी बोध करते हो। हंसी हो चुकी, और अब तुम गंभीर भाव के साथ अपनी अवस्था पर विचार करो और मेरे उपदेश में जिस उत्तम सत्य की शिक्षा मिलती है, उसे ग्रहण करो, अर्थात् जो कुछ तुम सचमुच हो, वही बतलाओ। झूठ कुछ न कहो।

अपने एकावनवें जन्म दिन के अवसर पर स्त्रियों की ओर से आवेदन पत्र का उत्तर।

[जीवन पथ, पौष सं० १९५८ वि०]

तुम्हारे आवेदन पत्र ने जिस प्रकार मेरे हृदय को स्पर्श किया है, उस प्रकार कल पुरुषों के आवेदन पत्र ने मेरे हृदय को स्पर्श नहीं किया था। कोमल हृदय से निकले हुए भाव निसन्देह हृदय पर विशेष प्रभाव डालते हैं, और इस समय ऐसे हि प्रभाव मैंने तुम्हारे पत्र से लाभ किए हैं। साधारण रूप से, जहां हमारे स्वदेशीय जन अपने घर की स्त्रियों के हित साधन से भी विमुख और उदासीन देखे जाते हैं, वहां यह दृश्य मुझे बहुत हि हर्ष देता है, कि मैं पुरुषों के साथ २ स्त्रियों को भी उभारने और उनका हित साधन करने के योग्य हुआ हूं। बहुत शोक और दुख का विषय है, कि हमारी जाति में स्त्रियों का उचित सन्मान नहीं रहा। और उनकी आवश्यक सहायता नहीं की जाती। यहां तक कि कितने हि पुरुष उन्हें "जूतियों" की न्याई हेय वस्तु समझते हैं। यह मनुष्य का बड़ा अधिकार और कर्तव्य है, कि वह अपने से दुर्बल की सहायता करे। स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा शारीरिक बल के विचार से अवश्य दुर्बल हैं, इसलिए उनका हाथ पकड़ना और उनकी सहायता करना पुरुषों के लिए

आवश्यक है । परन्तु साधारण रूप से मनुष्य अपने से दुर्बल को सहारा नहीं देते, किन्तु उलटा उसे सताते हैं, कि जो बहुत शोचनीय है। वह बल किस काम का जो दुर्बल को सहारा देने के काम में न आवे? और वह धर्म्म किस काम का, जो अधर्म्म को दूर करने के लिए न हो? हमारे देश में जहां एक २ बड़े पुरुष ने किसी स्त्री का हां अपनी मां तक का भी दर्शन मात्र करना उचित नहीं समझा, वहां स्त्री जाति की दुर्गति की क्या सीमा हो सकती है? मैं जब यह देखता हूं, कि मेरे कार्य्य से पुरुषों के साथ २ स्त्रियों का भी विशेष हित साधन हुआ है, तो मुझे बहुत हर्ष प्राप्त होता है। हमारी समाज में एक २ स्त्री ने अपने जीवन में जो आश्चर्य्य परिवर्तन और हित लाभ किया है, वह बहुत हि संतोष जनक और निराला है। न केवल यह कि उनके पतियों और घर के और पुरुषों के बदल जाने से उन्हें बहुत सुख और हित प्राप्त हुआ है, और जिन घरों में पहले एक २ स्त्री अपनी जान तक को सुरक्षित नहीं पाती थी, और अपने घर में शराबियों और दुराचारियों की मंडलियां देख २ कर दुखी और क्लेशित होती थी, अब उन घरों का पहला सारा दृश्य बदल गया है; नरक के स्थान में अब वहां पर स्वर्ग आ गया है, और अब उन्हीं घरों की एक २ स्त्री बहुत सुख और शान्ति अनु-

भव करती है ; किन्तु इस से भी बढ़कर एक २ स्त्री के अपने जीवन में जो शुभ परिवर्तन आया है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। यदि ६–७ वर्ष हि पहले चले जावें, और हम वर्तमान कृष्ण देवी जी को (अर्थात् जैसी कि वह अब हैं) ढूंढना आरम्भ करें, तो हम उन्हें कहां पा सकते हैं ? अब वह इस योग्य हैं, कि आप ऐसा आवेदन पत्र लिख सकती हैं, और उसे पढ़कर सुना सकती हैं, और अपने शुभ जीवन के द्वारा और कितनी हि स्त्रियों का शुभ साधन कर सकती हैं। और इस से भी बढ़कर उनका कैसा अच्छा सुन्दर परिवार बन गया है। और उनके पति ने कैसे उत्तम भाव लाभ किए हैं, कि उन्हों ने आप नाना प्रकार के कष्ट उठाकर भी अपनी पत्नी को ऐसा अवसर दिया है, कि वह शुभ कार्य्य में अपना जीवन व्यतीत करें। कैसा सुन्दर और कल्याणकारी दृश्य ! (इस ओर बयान में कई बार भगवान् देवात्मा का हृदय भर आता था, और उनकी आंखों से पवित्र अश्रुओं का पतन होने लगता था।) अन्त में भगवान् देवात्मा ने कहा कि स्त्री जाति के हित साधन का हमें अपने ऊपर जितना भार अनुभव होता है, वह देव समाज बालिका विद्यालय के खुल जाने से एक सीमा तक हलका हो गया है, और वहां के शुभ कार्य्य को देखकर हमें बहुत हर्ष मिलता है। परन्तु अभी तक

उस मे बहुत कुछ करना बाकी है। हमारी यह नितान्त इच्छा है, कि किसी प्रकार कन्याओं और स्त्रियों की उत्तम से उत्तम शिक्षा और उनके हित और विकास साधन का योग्य जनों के द्वारा उत्तम से उत्तम प्रबन्ध हो सके।

बौद्ध धर्म्म और उसके प्रचारक।

(जीवन पथ माघ सं० १९५८ वि०)

इस पृथिवी के महा पुरुषों में सब से पहले जिस महात्मा ने आप नगर २ भ्रमण करके अथवा अपने प्रचारकों को नाना दिशाओं में भेजकर धर्म्म प्रचार का काम किया, वह भारत वर्ष के प्रसिद्ध महात्मा शाक्य मुनि बुद्ध थे। उनके पीछे उनके शिष्यों ने धर्म्म प्रचार के कार्य्य में जिस अनुराग, आत्म-त्याग और प्रबल उत्साह का दृष्टान्त प्रदर्शन किया है, वह धर्म्म प्रचार के इतिहास में प्रायः अद्वितीय है। ऐसे समय में जब कि अभी रेल तो कहीं रही, पक्की सड़कें भी चलने को न थीं, महात्मा बुद्ध के विश्वासी और धर्म्म उत्साही शिष्यों ने केवल भारत वर्ष के नाना प्रदेशों में हि प्रचार नहीं किया, किन्तु गान्धार (अफ़गानिस्तान), तुखार (तुर्किस्तान), कुष्टन (काशग़र), स्वर्ण भूमि (ब्रह्मा), तिब्बत, साईबेरिया, चीन, जापान, ईरान, रूम, यवन

देश (यूनान), श्याम, जावा आदि दूर २ देशों में भी भ्रमण करके बौद्ध धर्म्म का प्रचार किया।

इस सारे प्रचार कार्य्य का इतिहास बहुत हि विचित्र और आश्चर्य्य जनक है। अभी महात्मा बुद्ध को स्थूल देह त्याग किए हुए तीन हि वर्ष हुए थे, कि वैशाली के वृत्ति कुल के राजा की सन्तान लद्दाख, नैपाल, मंगोलिया और मनचूरिया आदि में अपना वास स्थान बनाने के लिए निकली। यह लोग सब बौद्ध थे, और जिधर २ यह गए, उधर २ हि बौद्ध धर्म्म का प्रचार करते गए। फिर विक्रमादित्य से अढ़ाई सौ वर्ष पहले मगध (विहार) के महाराजा अशोक ने, जो कि बौद्ध थे, भारत वर्ष के कोने २ में बौद्ध धर्म्म का प्रचार कराया, और भारत वर्ष से बाहर भी प्रचारकों को भेजा और इस प्रकार मध्यान्तिकथेरो ने गांधार में, महारक्षित ने यवन देश में मध्यमथेरो ने हिमावत (हिमालय) में, सोन और उत्तर ने स्वर्ण भूमि में, और महाराजा अशोक के प्रिय पुत्र महेन्द्र ने लंका में बौद्ध धर्म्म का प्रचार किया। राजा विक्रमादित्य से २५ वर्ष पीछे राजा कणिष्क के समय में चीन भर में इस धर्म्म का प्रचार हो चुका था। उसके पांच सौ वर्ष पर्य्यन्त जापान और कोरिया में भी बौद्ध धर्म्म के प्रचारक पहुंच चुके थे। इस समय जापान से लेकर रूम तक और साईबेरिया से लेकर लंका और

स्थान तक इस धर्म्म के प्रचारक काम कर रहे थे। पांचवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक इस धर्म्म के प्रसिद्ध प्रचारकों में से कि जो उपरोक्त देशों में काम करते रहे, कुछ के नाम यह हैं :—

आर्य्य देव, असंग, स्थिरारमति, वसुबन्धु, आर्य्य-शूर, स्थिरमति, अनांत्र, शंकरस्वनी, भानुविवेक, बन्धु-प्रभु, धर्म्म पाल, ज्ञानपुत्र, धर्म्मयश, पद्माशिल्प, सुमुनि, बुद्धि श्री ज्ञान, धर्म्मत्राता, वसुमित्र, वसुभद्र, सघसेन, हरिवर्मा, संघरच, बुद्धमित्र, बुद्धत्राता, वसुवर्मा, गुण-मित्र, संघभद्र, नंदीमित्र, सुनंत्रभद्र, ज्ञानमित्र, धर्म्म-काल, धर्म्मभद्र, कालरुचि, जनमित्र, गुणभद्र इत्यादि २। प्रचार के इस कठिन कार्य्य में कितने हि प्रचारक बनों और पर्वतों में से जाते हुए डाकुओं के हाथों से मारे गए, कितने हि हिम अर्थात् बरफ़ के नीचे आकर दब गए, कितने ही बनों के हिंसक पशुओं की भेंट हुए। और सैंकड़ों मूर्ख और अज्ञानी श्रोताओं के हाथ से मारे गए। परन्तु इन सारी कठिनाइयों से उनका धर्म्म उत्साह ठंडा नहीं हुआ। आहा! यह कैसा सुन्दर समय था। आहा! यह भारत के लिए कैसे गौरव का काल था! आहा! यह प्रचारक कैसे धर्म्म वीर और उत्साही थे। क्या वर्तमान काल में इसी भारत भूमि से देव धर्म्म की अपूर्व और जीवन

दायिनी शिक्षा के प्रचार के लिए ऐसे हि आत्म त्यागी और उत्साही जन शीघ्र उत्पन्न न होंगे ?

बोधवान और अबोधी अवस्था।

(जीवन पथ, चैत्र सं० १९५८ वि०)

सुरजू और खुरजू दो पुराने मित्र थे। दोनों एक दिन लाहौर के गोलबाग़ की एक बैंच पर बैठे हुए थे। दोनों ने अच्छे वस्त्र पहने हुए थे। दोनों के घड़ियां लटकती थीं। दोनों के हाथों में सोने की अंगूठियां भी पड़ी हुई थीं। दोनों का एक २ नौकर उन से कुछ दूर खड़ा हुआ था। यह दोनों मित्र आपस में पहले तो कुछ देर हंस २ कर बातें करते रहे, परन्तु थोड़ी देर में हि क्या देखते हैं, कि वह ऊंचे २ बोलकर एक दूसरे से झगड़ने लगे। होते २ उनकी आपस में लड़ाई आरम्भ हो गई। और यह भय प्रतीत होता था, कि कहीं हाता पाई के द्वारा एक दूसरे को हानि न पहुंचा बैठें। इतने में श्रीमान् विचार देव जी जो दूर से यह सारा कौतुक देख रहे थे, उनकी ओर बढ़े। पास जाकर उन्हों ने देखा, कि दोनों का खूब गरमा गरम विवाद हो रहा है, और झगड़ते २ दोनों के हि गले की रगों नीरस हो रही हैं, और दोनों हि हांप रहे हैं। श्रीमान् विचार देव जी ने निकट आकर सुरजू और खुरजू की जो बात

चीत सुनी वह यह है :—

सुरजू—तुम चाहे मानो चाहे न मानों गुलाब का फूल पृथिवी के सब फूलों से बड़ा होता है। निसन्देह बड़ा होता है।

खुरजू—नहीं ! कभी नहीं ! गेंदे का फूल सब से बड़ा होता है। और गुलाब से तो गुलबांस के फूल भी बड़े होते हैं। देखो कहां गुलाब शब्द, और कहां गुला-बांस शब्द ! यह तो दोनों शब्दो से हि साफ २ प्रकाशित होता है, कि गुलाबांस का फूल गुलाब से अवश्य बड़ा होता है। देखो ! कैसा अच्छा प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सुरजू—नहीं तुम को तो फूलों का कुछ भी पता नहीं है। अरे भाई गुलाब का फूल केवल यही नहीं, कि सब फूलों से बड़ा होता है, किन्तु सुन्दर भी सब से अधिक होता है। उसका गुलाबी रंग अन्धेरी रात को भी मात कर देता है।

खुरजू—नहीं यह सब मिथ्या बात है। मुझे प्रतीत होता है, कि तुम को चम्बेली के फूल का कुछ भी ज्ञान नहीं है। क्या तुम ने वह प्रसिद्ध गीत कभी भी नहीं सुना ? कि जिस में यह शब्द आते हैं, " फूलों में फूल चम्बेली रे " मैं यह कह सकता हूं, कि यदि गुलाब का फूल अन्धेरी रात को मात कर देता है, तो चम्बेली का फूल दिन को भी अन्धेरा कर देता है, नहीं तो जैसा

मैंने चम्बेली की उत्तमता का प्रमाण दिया है, वैसे हि तुम भी कोई देकर दिखाओ।

सुरजू और खुरजू के इस शास्त्रार्थ को सुनकर विचार देव जी आश्चर्य्य रह गए। और मन में यह ठान कर आगे बढ़े, कि उन्हें कहेंगे, कि भाई तुम जिस बाग़ में बैठे हुए यह विवाद कर रहे हो, उसी बाग़ में तुम्हारे सामने हि गुलाब का पेड़ भी लगा हुआ है, चम्बेली के फूल भी खिले हुए हैं, और गेंदा और गुलाबांस भी निकट हि हैं, फिर तुम क्यों नहीं उन फूलों को देखकर हि उनके विषय में निर्णय कर लेते, और आपस का झगड़ा मिटा लेते ? परन्तु अभी विचार देव जी ने दो चार पग हि आगे उठाए थे, कि वह देखते क्या हैं, कि यह तो दोनों जन हि आंखों से अन्धे हैं ! अब देखने के लिए कहें तो किस से कहें ? परन्तु फिर भी उन से रहा न गया, और उन्हों ने उन अन्धों से कहा :—

विचार देव जी—भाई आप आपस में विवाद क्यों करते हैं ? यूं तो गुलाब, गेंदे, गुलाबांस और चम्बेली के फूल आप के निकट हि हैं, यदि आप की आंखें होतीं, तो आप अभी देख सकते, कि सत्य क्या है और असत्य क्या है। परन्तु अब और नहीं तो बाग़ के माली से हि पूछकर निर्णय करालें, कि जो दिन रात उन्हें

देखता और पालता पोसता है; ताकि आप का आपस का झगड़ा दूर हो जाए।

सुरजू—ऐं! तुम हो कौन? जाओ २ आ गए कहीं से बड़े आंखों वाले! तुम ने हम को समझा क्या है? क्या माली फूलों के विषय में हम से कुछ अधिक जानता है? हम ने तो ऐसे २ कवित्त और श्लोक फूलों की स्तुति में कंठस्थ कर रक्खे हैं, कि जिन का नाम तक भी किसी माली ने न सुना होगा।

खुरजू—निसन्देह! भला यह मूर्ख माली जानते हि क्या हैं? हम तो ऐसे २ बीस मालियों को नौकर रख सकते हैं। लो जी यह आए हैं, हम को मालियों से शिक्षा दिलाने वाले।

विचार देव जी ने सुरजू और खुरजू से यह उत्तर सुनकर उनको कुछ और समझाना व्यर्थ समझा, और वह धीमे शब्दों में यह कहकर आगे चले गए, "सच है, यदि आप और आप जैसे अनेक लोग एक ओर आंखों से अन्धे अथवा बोध हीन, और दूसरी ओर नीच अभिमान और अहं से परिपूर्ण न होते, तो उनकी ऐसी दुर्दशा न होती, और मिथ्या मतवाद में पड़कर अपना आप नष्ट न करते।"

उनके पीछे से सुरजू और खुरजू फिर पहले की न्याई अपने मत के वाद विवाद में लग गए, और थोड़ी देर

में गुत्थम गुत्था होकर लहू लुहान हो गए, और उन्हें उनके नौकरों ने बहुत कठिनता से अपने २ कन्धों पर उठाकर उनके घर पहुँचाया।

दो सत्य और उनके दृष्टान्त।

(जीवन पथ, वैशाख सं० १९५८ वि०)

(१)

कई जनों को देखा है, कि उन में घ्राण बोध नहीं होता, अर्थात् उन्हें सुगन्ध और दुर्गन्ध में कोई भेद प्रतीत नहीं होता। ऐसे जनों के पास यदि विष्टा पड़ी हो, अथवा उनके कपड़ों को विष्टा लगी हुई हो, हां यहां तक कि उनकी नाक के पास भी कहीं विष्टा लगा दी जावे, तो भी उसकी दुर्गन्ध से उनके भीतर कोई ग्लानि अथवा घृणा उत्पन्न नहीं होती। ऐसी दुरावस्था का परिणाम क्या हो सकता है? यह, कि अनेक बार जब विष्टा के गन्दे और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक परमाणु उड़ २ कर श्वास के द्वारा उनके भीतर प्रवेश करके उनके शरीर में विकार उत्पन्न कर रहे हों, तो भी ऐसे जनों को कुछ पता न लग सकेगा, और वह उसके अति हानिकारक फलों को भुगतने के बिना न रह सकेंगे। वह मुंह से सफ़ाई २ पुकार कर भी उस मल का, कि जो उन्हें हानि पहुंचा रहा है, ज्ञान

न पा सकेंगे, और न हि उस से बचने के लिए कोई यत्न कर सकेंगे। ठीक इसी प्रकार से लाखों और करोड़ों मनुष्य जिन के भीतर पाप मल को अनुभव करने के लिए कोई उच्च बोध वर्तमान नहीं है, रात दिन नीच और दुराचारी जनों के भीतर वास करके अथवा उन से सम्बन्ध रखकर, हां यहां तक कि आप नीच और दुष्कर्म्म करके भी उस से केवल यही नहीं, कि कोई ग्लानि वा घृणा अनुभव नहीं करते, किन्तु उलटा उस से प्रसन्नता लाभ करते हैं। हाय! यह पाप मल उनके भीतर रच २ कर उनके आत्मा को नष्ट करता जाता है। परन्तु उन्हें उसका कोई पता नहीं लगता। हां वह एक २ समय दुष्ट जनों से मिलकर, और उन में बैठकर, और इस से भी बढ़कर, आप घोर से घोर पाप और दुराचार करके बहुत प्रसन्न होते हैं। ऐसे अबोधी जन अपनी एक वा दूसरी नीच रुचि के परितार्थ होने पर थोड़ी देर के लिए चाहे प्रसन्न होलें, परन्तु वास्तव में वह अपने हाथ से अपने पाओं पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। उनकी अवस्था उस शराबी की न्याई है, कि जो खुशी २ चाव के साथ अपने भीतर ऐसा विष भरता जाता है, कि जो अन्त में उसके लिए और अनेक और जनों के लिए बहुत विनाशकारी प्रमाणित होता है।

तब भगवान् देवात्मा का कार्य्य मनुष्य जगत् के लिए कैसा श्रेष्ठ और परम हितकर कार्य्य है, कि जिस से मनुष्यों के भीतर आत्मा के लिए नीच और विनाशकारी प्रभावों से घृणा और उन से बचने के लिए आकांक्षा उत्पन्न हो जाती है, और फिर ऐसे मनुष्य इस पाप मल का बोध पाकर विनाशकारी प्रभावों में रहना नहीं चाहते, और उस से दुख और क्लेश अनुभव करते हैं। जैसा कि एक सेवक लिखते हैं :—

"आज से दो वर्ष पहले इस प्रकार मुझे न कोई बुरा असर, बुरा असर मालूम होता था, और न कभी किसी बुरे असर से इतना दुख और क्लेश अनुभव होता था। अब जीवन दाता सतगुरु की ज्योति में पता लगता है, कि पहला सारा जीवन बहुत अबोधता का और बहुत नीच जीवन था। जब मैं यह प्रश्न करता हूं, कि यह नया बोध मुझ में कहां से आ गया? तो उत्तर मिलता है, कि ज्योति दाता भगवान् देवात्मा की कृपा से हि यह बोध जागा है, अब आशा करता हूं, कि उन्हीं की अपार शक्ति से आगे बढ़ने के लिए भी बल पा सकूंगा।"

(२)

जिस मनुष्य के भीतर पानी की आवश्यकता का बोध होता है, वह जैसे प्यास लगने पर पानी ढूंढ़ता

है, और जब उसे कहीं जल प्राप्त नहीं होता, तो वह "हाय मैं मरा" "हाय मैं गया" आदि शब्द मुंह से कहकर अपनी व्याकुलता का प्रकाश करता है; ठीक वैसे हि जब किसी आत्मा के भीतर, जीवन के विनाश और विकास का बोध उत्पन्न हो चुकने पर, जीवन विषयक हित अभिलाषा जाग आई हो, और उसे जीवन दायक सम्बन्धियों की आवश्यकता अनुभव हो चुकी हो, तब यदि कभी दुर्भाग्य वशतः उसे जीवन दायक सामानों से दूर रहना पड़े, तो उनके न मिलने से उसके भीतर भी उसी प्रकार व्याकुलता का प्रकाश देखा जाता है। वह भी ऐसे सम्बन्धियों को न पाकर वैसे हि व्याकुलता के शब्द उच्चारण करने लगता है, हां ऐसी व्याकुलता से हि इस बात का परिचय मिलता है, कि किसी जन के भीतर सचमुच जीवन हित अभिलाषा उत्पन्न और जाग्रत हुई है। नहीं तो जो जीवन और मृत्यु में, विनाशकारी और जीवन दायक सम्बन्धियों में, कोई भेद नहीं अनुभव करता, वह अपने जीवन से यह प्रगट करता है, कि अभी उसके भीतर जीवन सम्बन्धी विकास और विनाश का कोई बोध जाग्रत नहीं हुआ। उपरोक्त सेवक जीवन दायक सामानों को न पाकर अपने एक लेख में अपनी व्याकुलता का इस प्रकार से प्रकाश करते हैं:—

"...... के दिन को सामने लाकर मैं धन्य २ हो जाता हूं, जब कि मैं आप के श्री चरणों में बैठकर जीवन रस लाभ करने का अवसर पा रहा था। उस के अनन्तर छै सात दिन तो बहुत अच्छे व्यतीत हुए, परन्तु उसके पीछे अब साफ़ प्रतीत हो रहा है, कि मैं मर रहा हूं, मैं डूब रहा हूं, मेरा दम घुट रहा है, मेरे इर्द गिर्द के सब सामान मुझे नीचे ले जा रहे हैं। जब कभी जीवन पथ का पाठ करते समय, अथवा भगवान् देवात्मा के महोच्च कार्य्य का ध्यान करत समय आंखों से आंसू जारी हो जाते हैं, तो उनको अपने कपड़ों पर लगा लेता हूं, और कोई आंसू भूमि पर नहीं गिरने देता, कि और नहीं तो इनका हि शुभ और पवित्र असर मेरे इर्द गिर्द रहे, और मैं बुरे असरों से बचा रह सकूं। हाय! वह समय कब आवेगा, जब मैं फिर अपने आप को धर्म्म सम्बन्धियों के पवित्र असरों से घिरा हुआ देख सकूंगा।" आहा! कैसा सुन्दर भाव! जीवन दायक सम्बन्धियों और जीवन रस के पाने के लिए जब ऐसी प्रबल आकांक्षा हो, तब हि जीवन दायक सम्बन्धियों के मिलने पर जीवन लाभ की आशा हो सकती है।

हमारे देश की विद्या सम्बन्धी शिक्षा प्रणाली का बहुत बड़ा दोष।

[जीवनपथ, ज्येष्ठ सं० १६५६ वि०]

हमारे देश की विद्या सम्बन्धी शिक्षा प्रणाली का बहुत बड़ा दोष यह है, कि जहां एक ओर उसके द्वारा हमारे विद्यार्थी केवल नियत पाठ पुस्तकों को तोते की न्याईं कंठस्थ करके किसी न किसी प्रकार नियत परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, और सच्चे अर्थों में उनकी मानसिक शक्तियों के भली भांत विकासित होने का कार्य्य नहीं होता, वहां दूसरी ओर जिस प्रकार उन्हें बाल्य काल से हि कारागार के शास्ति प्राप्त अपराधियों की न्याईं प्रति दिन घण्टों के घण्टे लगातार स्कूलों के भीतर बन्द रखकर एक दो नहीं किन्तु कितने ही कठिन विषयों में शिक्षा दी जाती है, उस से उनका शारीरिक स्वास्थ्य और भी नष्ट हो जाता है। और अभी जब कि उनकी युवावस्था मानो आरम्भ तक नहीं होती, वह बहुधा अति दुर्बल, मरियल और कई रोगों के शिकार हो जाते हैं। थोड़ी सी वयस से हि कितनों की दर्शनेन्द्रिय इतनी दुर्बल हो जाती हैं, कि वह पुस्तकों को अपनी आंखों के साथ लगा २ कर पढ़ते हैं, अथवा चश्मा लगा २ कर निर्वाह करते हैं। छोटा कलेवर, पीला मुख, कुबड़ी पीठ, दुर्बल चक्षु, यह

हमारे विद्यार्थियों की पहचान हो जाती है। और फल यह होता है, कि जहां ऐसे विद्यार्थी सारी वयस दुर्बल और रोगी रहकर बहुधा शीघ्र हि अकाल वृद्धावस्था को प्राप्त अथवा अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, वहां ऐसे दुर्बल माता पिता से जो सन्तान् उत्पन्न होती है, वह और भी दुर्बल और " मुनहनी " होती है; और जब वह फिर अपनी बारी में उसी स्कूल की दोष युक्त विद्या सम्बन्धी शिक्षा प्रणाली के शिकंजे में आते हैं, तो उनकी और भी अधिक दुर्गति होती है, और वह अपने पिता की अपेक्षा भी अधिक दुर्बल रोगी और शीघ्र मृत्यु प्राप्त होने के योग्य बन जाते हैं। इस महा दूषित शिक्षा प्रणाली के कारण हमारी जाति को बहुत बड़ी हानि पहुंच रही है। हमारी सन्तान का प्राण और सत चूसा जा रहा है। इसलिए जो लोग हमारे देश और हमारी जाति का सच्चा हित चाहते हैं, उन का यह बड़ा कर्तव्य है, कि वह विद्या पढ़ाने की आड़ में हमारी प्यारी सन्तान का नाश न होने दें। विद्या लाभ कोई ऐसा अस्वाभाविक (unnatural) कार्य्य नहीं है, कि वह बिना हमारे शारीरिक विनाश के न हो सकता हो। मान्सिक शक्तियों और उत्तम शारीरिक गठन का आपस में गहरा सम्बन्ध है, और उत्तम शारीरिक गठन के बिना उत्तम मान्सिक उन्नति नहीं

हो सकती; और जितनी होती भी है, वह यथेष्ट रूप से सफल नहीं होती। Sound mind in a sound body पूर्णतः सत्य कथन है। इसलिए स्वयं विद्या लाभ में कोई दोष नहीं, किन्तु हमारी विद्या सम्बन्धी शिक्षा प्रणाली में अवश्य दोष है। और वह दोष यह हि है, कि (१) बाल्य काल से हि विद्यार्थियों को लगातार पांच २ छः २ घण्टे तक स्कूलों में बन्द रखकर उन्हें पढ़ाया जाता है, कि जिस से उनकी शारीरिक गठन को बहुत हानि पहुंचती है। और (२) उन्हें इस समय के अन्तर कई २ ऐसे कठिन विषयों में ऐसे बुरे तौर से शिक्षा दी जाती है, कि जिस से उनकी मानसिक शक्तियों को उलटा बहुत हानि पहुंचती है। नीचे हम जर्मनी देश के कई प्रसिद्ध और विचार शील विद्वानों का इस विषय में मत प्रकाश करते हैं, और चाहते हैं, कि हमारी समाज के वह जन कि जिन्हें देव समाज के विद्या प्रचार सम्बन्धी कार्य्य में एक वा दूसरी रीति से भाग लेने का अवसर प्राप्त है, वह उसे विशेष रूप से विचार पूर्व्वक पाठ करें। और हमारे अपने स्कूलों में ऐसी दोष युक्त और हानिकारक विद्या सम्बन्धी शिक्षा प्रणाली से बचने के लिए जिस २ उपाय के अवलम्बन करने की आवश्यकता है, उसके लिए आवश्यक यत्न करें।

" A report has just been issued by the Board of Education in Germany in which considerable space is taken up by a paper by a celebrated expert on measurement of Mental Fatigue in Germany. Educationists in that country have given devoted and unsparing labour to the study of mental fatigues; as it has an all-important bearing on Primary and Secondary Education. The result of the thorough and prolonged investigation is. as follows:—

The most serious and the most frequent cases of mental exhaustion from over-work seem to have been noticed among pupils under 12 years of age, a serious inactment considering that the years from 9 to 12 are generally looked upon as those of feeblest developement, particularly in the case of boys. There seems to be a general consensus of opinion among the investigators that the hours in vogue at most schools are too long for children of this age. Thirty minutes is regarded as the limit of time during which the serious

attention of children to one subject can reasonably be demanded, though with skilful introduction of variety into the lesson forty to forty-five minutes might be devoted to it without entailing too severe a strain on the mental powers. One fact at any rate, stands out clear; *viz.* that *nothing exhausts children so much as prolonged mental exertion combined with strict attention.* The important question of intervals of suitable length between the hours of work has been ably investigated by Friedrich and Griesbach; and their experiments led them to the conclusion that *continuous work should never exceed one's school hours* The most favourable results were obtained *when intervals of five to fifteen minutes occurred between each lesson.*

Friedrich's experiments, however, seem to point to the advantage of making the intervals rather longer than is usually the case, especially when all school work is done in the morning. The time lost

in the intervals is, Fiederich maintains, amply compensated for by greater freshness and capacity of work.'

इसका हिन्दी अनुवाद यह है :—

जर्मनी के विद्या विभाग के राज-कर्म्मचारियों ने इन्हीं हि दिनों में अपना एक विवरण पत्र प्रकाशित किया है, कि जिस के एक बड़े भाग में जर्मनी के एक अति विख्यात महाशय का एक निबन्ध छापा गया है, कि जो "मान्सिक श्रान्ति प्रमाण" के विषय में सुदक्ष समझा जाता है। उस देश के विद्या दाता एक काल से बहुत गम्भीर भाव और अति परिश्रम के साथ मान्सिक श्रान्ति के विषय में विचार कर रहे हैं, अर्थात् यह जानने का यत्न कर रहे हैं, कि क्योंकर मान्सिक (ज़हनी) परिश्रम करने से मास्तिष्क (दिमाग़) अधिक थक जाता है, और किस प्रकार कम थकता है। क्योंकि यह विषय बालक और बालिकाओं की आरम्भक और द्वितीय शिक्षा के साथ नितान्त गहरा और आवश्यक सम्बन्ध रखता है। इस विषय में कितने हि वर्षों की परीक्षा से जो कुछ सिद्ध हुआ है वह यह है :—

उचित मात्रा से अधिक कार्य्य करने से और सब की अपेक्षा जिन विद्यार्थियों को बहुत बढ़कर और बहुत भारी हानि पहुंचती है, वह १२ वर्ष की वयस से नीचे

के बालक बालिका हैं। और यह बात बहुत हि शोचनीय और दुख प्रद है, क्योंकि यह समझा गया है, कि नौ वर्ष से लेकर १२ वर्ष की वयस तक यूं भी और वर्षों की अपेक्षा बच्चे, विशेषतः बालक बहुत कम बढ़ते और शारीरिक उन्नति करते हैं। उपरोक्त विचारशील महाशयों में से यह सब की सम्मति पाई जाती है, कि अब स्कूलों में बच्चों को एक २ विषय में शिक्षा देने के लिए जो घण्टे वा पीरियड नियत किए जाते हैं, वह विशेष करके १२ वर्ष से कम वयस के बच्चों के लिए बहुत दीर्घ (लम्ब) हैं। यद्यपि चतुराई और विशेष सोच विचार के साथ पाठों को अदल बदल करते रहने से ऐसा भी हो सकता है, कि इस वयस का कोई विद्यार्थी बिना मान्सिक श्रान्ति (थकान) के ४० वा ४५ मिनट तक भी एक हि विषय पर ध्यान दे सकें, परन्तु साधारण रूप से इस वयस के बच्चों से अधिक से अधिक जितनी देर तक एक हि विषय पर भली भांत ध्यान देने की आशा की जा सकती है, उसकी अवधि ३० मिनट तक है। किसी और बात में तो चाहे कुछ मत भेद भी हो, परन्तु इस विषय में तो किंचित मात्र भी सन्देह नहीं, कि लगातार कितनी देर तक मान्सिक परिश्रम करने और एकाग्रवृत्ति होकर किसी विषय में ध्यान देने से बच्चों को जितनी हानि पहुंचती है,

उतनी किसी और कारण से नहीं पहुंचती।

श्री फ्रैडरिक और श्रीसब्रक साहिब ने बच्चों की शिक्षा के घण्टों के बीच में आवश्यक अवकाश देने के विषय में बहुत-उत्तमता के साथ परीक्षाएं की हैं। और वह अपनी इन परीक्षाओं के द्वारा इस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, कि लगातार मानसिक परिश्रम स्कूल के नियत घण्टों से उपरान्त कभी नहीं होना चाहिए।

परीक्षा के द्वारा यह देखा गया है, कि जब विद्यार्थियों को प्रत्येक पाठ के अनन्तर ५ से लेकर १५ मिनट तक अवकाश दिया गया, तो बहुत हि उत्तम फल उत्पन्न हुए। परन्तु श्री फ्रैडरिक साहिब की परीक्षाओं से अधिक तर यह प्रतीत होता है, कि थोड़े मिनटों की अपेक्षा अधिक मिनटों का अवकाश देने से विशेष करके अच्छे फल उत्पन्न होते हैं, विशेषतः जब कि सारा स्कूल का काम दोपहर से पहले २ हि किया जाता हो। फ्रैडरिक साहिब का यह कथन है, कि इस प्रकार जो अधिक समय दिया जाता है, उसके द्वारा यह बहुत बड़ा लाभ होता है, कि उस से बच्चों में सतेजता और कार्य्य विषयक निपुणता बहुत बढ़ जाती है।

देव शक्तियों का अद्भुत कार्य्य ।

(जीवन पथ, आषाढ़ सं० १९५९ वि०)

इस विश्व में जो कुछ क्रिया हो रही है, वह सब शक्ति के द्वारा हो रही है। शक्ति और जड़ पदार्थों के संयोग से हम में और हमारे चारों ओर जो कुछ हल चल जारी है, वह सब कुछ शक्ति का खेल है। शक्ति के द्वारा हि सब प्रकार के अस्तित्व परिवर्तित होते हैं, और नाना रूप ग्रहण करते हैं।

जैसे यह सच है, कि बिना शक्ति के परिवर्तन नहीं हो सकता, वैसे हि यह भी सर्वथा सत्य है, कि शक्ति का भी परिवर्तन होता है। इस सत्य के प्रमाण में कुछ दृष्टान्त नीचे लिखे जाते हैं :—

किसी अंगीठी में कोयले सुलग रहे हैं। दूर से देखने वालों को यह अग्नि दिखाई दे, वा न दे, तो भी वह वहां है; और न केवल है, किन्तु वह कोयलों को जला रही है; और अपने आस पास की वस्तुओं तक भी अपना उत्ताप पहुंचा रही है। अभी चूल्हे पर किसी बासन में जल रख दें, तो वह थोड़ी देर में गरम हो जाएगा। अब चाहे तुम इस अग्नि की वर्तमानता को न मानो, और चाहे उसका नाम उत्ताप के स्थान में शीत, और अग्नि के स्थान में हिम (बर्फ़) रखदो; परन्तु वह अपना कार्य्य किए जाएगी। और जब तक वह वहां

वर्तमान रहेगी, तब तक अपना उत्ताप अपने आस पास के अस्तित्वों तक पहुंचाता रहेगी, और उन्हें उनकी पहली ठण्डी अवस्था से निकाल कर उन में परिवर्तन लाती रहेगा।

एक घना जंगल है। साधारण रूप से किसी मनुष्य का उधर से गमन नहीं होता। परन्तु चम्पा का एक वृक्ष वहां जड़ पकड़ लेता है। और उस भूमि से रस लाभ करता है। लो! थोड़े काल में उस में सुन्दर २ कलियां निकल आती हैं। वह खिलती हैं, और अति सुगन्धि दायक, कोमल, श्वेत, फूल प्रकाशित हो जाते हैं। वहां पर कोई मनुष्य उन्हें देखने वाला नहीं, कोई कवि उन्हें सराहने वाला नहीं, कोई उनकी प्रशंसा करने वाला नहीं, तो भी वह फूल खिलते हैं, और अपने पूरे यौवन और सौन्दर्य्य में खिलते हैं, और अपनी मधुर सुगन्धि के परमाणुओं से अपने आस पास की वायु को भर देते हैं। और चम्पा के वृक्ष का यह कार्य्य उस समय तक इसी प्रकार होता रहेगा, जब तक उस में प्राण शक्ति विद्यमान रहेगी और उस प्राण शक्ति की रक्षा के लिए आवश्यक सामान मिलता रहेगा।

भगवान् देवात्मा जिन अद्वितीय देव शक्तियों को लेकर प्रगट हुए हैं, उनका कार्य्य मनुष्यों को नीच जीवन और अधोगति से निकालना और उनके भीतर उच्च

भाव संचार करके उन्हें जीवन की उच्च गति की ओर ले जाना है। उनकी देव शक्तियां एक ओर आत्माओं की महा विनाशकारी गतियों से रक्षा करती हैं; और दूसरी ओर उनके भीतर जीवन संचार करती हैं। जैसे बाह्य जगत् में सूर्य्य नाना शक्तियों का स्रोत है, वैसे हि भगवान् देवात्मा आध्यात्मिक जगत् में उपरोक्त शक्तियों के भण्डार होकर देव प्रभावों दाता हैं। यही कारण है, कि जो जन उनके कुछ भी अधिकार में आते हैं, वह उनकी अद्भुत शक्तियों के दोनों प्रकार के प्रभावों को लाभ करते हैं। एक ओर उनके पाप और विकार झड़ने लगते हैं, भीतर की मैल धुलने लगती है, और वह विनाशकारी नीच गतियों से उद्धार पाना आरम्भ करते हैं, और दूसरी ओर उनके भीतर जीवन दायक उच्च गति आरम्भ होती है; उच्च भाव उत्पन्न होते हैं, और उच्च आकांक्षाएं जाग्रत और सबल होने लगती हैं। जैसे आवश्यक सीमा में हाइड्रोजन और आक्सीजन गैसों के कैमीकल मेल से जल बन जाता है, और पृथिवी के जिस देश में और जिस काल में यह नियम पूरा होगा, वहीं पर उनके मेल से जल की उत्पत्ति होजाएगी; वैसे हि जो जन भगवान् देवात्मा की शरण में आते हैं, वह भी अपने भीतर उनकी उद्धारिणी और उच्च जीवन दायिनी शक्तियों के उपरोक्त फलों को अपनी २ योग्यता के अनु-

सार अवश्य लाभ करते हैं।

इन पाप मोचनी और जीवन दायिनी शक्तियों के जोर अद्भुत कार्य्य प्रकाशित होते रहते हैं, वह एक देखने वाले विचार शील पुरुष पर यह सत्य ज़ाहर करने के बिना नहीं रह सकते, कि भगवान् देवात्मा ऐसी देव शक्तियों के भण्डार हैं, कि जहां और जिस देश में कोई जन उन के साथ श्रद्धा मूलक सम्बन्ध स्थापन करता है, वहां हि उसके भीतर उपरोक्त जीवन सम्बन्धी परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। यदि एक जन सिन्ध में उनके श्री चरणों से जुड़ता है, तो उसके भीतर वैसा हि परिवर्तन आने लगता है; और यदि कोई जन पंजाब में उन से योग करता है, तो उसके भीतर वहां हि उनके देव प्रभाव अपना कार्य्य करने लगते हैं। कोई धनवान हो वा निर्धन हो, विद्वान हो वा अनपढ़ हो, उच्च पदस्थ हो वा कोई पद न रखता हो, ब्राह्मण हो वा शूद्र हो, हिन्दु हो वा कोई और जन हो, जहां वह उनकी शक्तियों के प्रभावों को लाभ करता है, वहीं उसके पहले पाप झड़ने लगते हैं, उसकी पहली अवस्था बदलने लगती है, उसके भीतर उच्च भाव उत्पन्न होने लगते हैं, उच्च आकांक्षाएं जाग्रत होने लगती हैं, और एक नूतन गति आरम्भ हो जाती है, जिसे देख २ कर उसके आस-पास के लोग आश्चर्य्य में पड़ जाते हैं।

भगवान् देवात्मा के इस श्रेष्ट परिवर्तन के कार्य्य को बन्द करने के लिए आज तक कौन से उपाय नहीं किए गए? शत २ और सहस्र २ जनों ने अकेले २, और बड़े २ जत्थे बान्ध कर, उन्हें और उनके कार्य्य को चकना चूर कर देने के लिए क्या कुछ हाथ पांव नहीं मारे? बड़े २ पढ़े लिखों ने, बड़े २ स्पीकरों और ऐश्वर्य्य रखने वालों ने उनके महान आविर्भाव के विरुद्ध क्या कुछ चेष्टाएं नहीं कीं? एक २ समाज और उसके शत २ सभासदों ने, कितने हि समाचार पत्रों और उनके लेखकों ने, नाना पुस्तकों के रचने वालों ने, और ऐसे हि और अनेक जनों ने वह कौनसा उपाय है, जो उनके कार्य्य के विरुद्ध अवलम्बन नहीं किया? झूठे अभियोग घड़कर, मिथ्या अपवाद लगाकर, झूठे मुकदमे खड़े करके, कारागार की शास्ति के लिए यत्न करके; खून, व्यभिचार चोरी, लूट खसोट आदि जैसे घोर से घोर अपराधों का उन्हें अपराधी बताकर जो कुछ जिस को सूझ सका वैसा उन्हें रंगकर दिखलाने का यत्न करके, क्या अब तक ऐसे जनों ने नहीं देख लिया, कि सचमुच वह उन देव शक्तियों के कार्य्य को नहीं रोक सकते, और नहीं रोक सके; कि जो भगवान् देवात्मा के अस्तित्व में प्रकाशित हुई हैं? प्रत्येक वर्ष आया है, और इन शक्तियों का कार्य्य और भी उन्नत होता गया है। प्रत्येक वर्ष विरोधी

जनों ने नए से नए उपाय उनके कार्य्य को रोकने के लिए सोचे और निकाले हैं, परन्तु वह सब व्यर्थ जाते रहे हैं, और उनकी विजयी शक्तियां उन सब पर जय लाभ करके उन्हें परास्त कर देती रही हैं! धन्य हैं वह जन, कि जो इन देव शक्तियों के भण्डार के साथ योग करके अपना हित साधन करते हैं। और उन से भी बढ़कर धन्य हैं वह जन, कि जो उन के उपासक होकर उनके सच्चे प्रचारक बनते हैं, शत २ आत्माओं को मृत्यु से बचाने और उन्हें जीवन स्रोत से जोड़कर उनमें जीवन संचार करने का व्रत धारण करते हैं।

रावलपिंडी में उपदेश।

[जीवन पथ, पौष सं० १६५६ वि०]

परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ७ नवम्बर १६०२ ई० की सायंकाल को रावलपिंडी पहुंचे। वहां पर उन्हों ने अपने सेवकों आदि के हितार्थ जो उपदेश दिए, उनका सार नीचे दिया जाता है:—

पहले दिन की सभा में उन्हों ने फ़रमाया, कि

" हम जिस प्रकृत धर्म्म का उपदेश करते हैं, और जिस को हम सत्य धर्म्म वा देव धर्म्म, वा विज्ञान-मूलक धर्म्म कहते हैं, उसका मूल आत्मा के जीवन सम्बन्धी हित और अहित के प्रकृत ज्ञान में है। यह ज्ञान केवल

इन शब्दों वा उनके अर्थों का जानना नहीं, किन्तु उन में यथार्थ रूप से प्रभेद अनुभव करना है। जैसे घड़ी और घड़ा, मद और दूध, आलोक और अन्धेरा, स्वास्थ्य और रोग, जीवित और मृत आदि पूर्णतः भिन्न २ वस्तुएं वा अवस्थाएं हैं; एक नहीं हैं, इसी प्रकार हित और अहित एक नहीं, वरन अलग २ भाववाचक शब्द हैं; परन्तु लाखों मनुष्यों को उनके विषय में कोई बोध नहीं। आत्मा तो कहीं रहा, शरीर के सम्बन्ध में भी उनके हित और अहित का कुछ बोध नहीं। वह शरीर के सम्बन्ध में भी विविध वासनाओं के वश होकर नाना प्रकार का असंयम करते हैं; मद, भंग, अफ़ीम जैसी विषाक्त वस्तुओं का सेवन करते हैं; और विषपान से स्वास्थ्य विषयक नियमों को भंग करते हैं। मैले, आलसी और निकम्मे रहते हैं; परन्तु वह जानते तक नहीं, कि इस सब के द्वारा उनका शारीरिक अहित होता है। कुछ लोग ऐसे हैं, कि जिन को शरीर के सम्बन्ध में स्वास्थ्य और रोग आदि का ज्ञान तो है, वह उन दोनों में अन्तर भी अवश्य देखते हैं, और उनके लक्षण भी बता सकते हैं, परन्तु स्वास्थ्य के लिए उनके भीतर कुछ अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ। वह यह सब कुछ जानकर भी स्वास्थ्य विषयक नियम भंग करते रहते हैं, क्योंकि वह एक वा दूसरी वासना के अधीन होते हैं। वह उन

को जिधर चाहती हैं, ले जाती हैं। आत्मा के विषय में और भी अन्धकार छाया हुआ है। जो लोग शरीर जैसे स्थूल पदार्थ का हि हित और अहित नहीं अनुभव करते, वह आत्मा के हित और अहित को क्या जानेंगे? अतएव मनुष्य के लिए यह बहुत बड़ा अधिकार है, कि वह अबोधता के पूर्ण अन्धकार से निकल कर आत्मा के हित और अहित का सच्चा बोध प्राप्त कर सके, और यदि वह दोनों में अन्तर देखने के योग्य हो चुका हो, तो उसके अपने अन्दर हित के लिए आकर्षण और अहित के लिए घृणा उत्पन्न होगी। यदि किसी मनुष्य को अपने आत्मा के जीवन के सम्बन्ध में हित और अहित विषयक कोई सच्चा बोध न हो, तो फिर उसकी हृदय भूमि से हम प्रकृत धर्म्म का कोई अमृत वृक्ष उत्पन्न और उन्नत नहीं कर सकते। ऐसा हो, कि तुम लोगों में इस प्रकार हित और अहित विषयक विवेक जाग्रत अथवा उन्नत हो, और इस विवेक के साथ आत्म हित अर्थात् प्रकृत धर्म्म साधन की सच्ची अभिलाषा उत्पन्न हो।"

यह उपदेश क्या अपनी अद्भुत ज्योति के विचार से और क्या सोए हुए आत्माओं को अपनी २ योग्यता के अनुसार धर्म्म जीवन के विषय में चिन्तन करने के लिए प्रस्तुत करने के विचार से बहुत हितकर था।

दूसरे दिन आप ने कल के उपदेश की न्याई फिर

हित और अहित बोध के विषय में और अधिक ज्योति प्रदान की और बतलाया, कि यह बोध हृदय में उच्च प्रभावों के द्वारा उत्पन्न किए जाने की वस्तु हैं। किसी कल्पना मूलक मत के मानने वा व्याख्यान देने से यह बोध उत्पन्न नहीं होते, किन्तु जिन के भीतर यह बोध वर्तमान हैं, उनकी संगत में आने और लगातार उनके शक्ति के ग्रहण करने से उत्पन्न होते हैं। और उन्हीं की संगत से उन्नत और वर्द्धित होते हैं। ऐसे बोधों के उत्पन्न हो जाने पर हि किसी आत्मा के हित के निमित्त जो कुछ बतलाया जावे, वह उसकी ओर जाने के लिए संग्राम करता है, और साधन ग्रहण करके और अनुकूल अवस्था में रहकर और जीवन दाता की देव ज्योति और शक्ति पाकर अपने धर्म्म वृक्ष से कुछ डालियां और पत्ते निकाल सकता है।

उनके पहले दो दिनों के उपदेशो से हृदय किसी क़दर प्रमाद की अवस्था से जाग चुके थे, और उनकी महान ज्योति के ग्रहण करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी अवस्था में थे। तीसरे दिन जीवन दाता ने नीच गति मूलक वासनाओं और उत्तेजनाओं और उनके फलों के विषय में बहुत हि शक्ति से परिपूर्ण और दिलों को हिला देने वाला और स्पष्ट रूप से नीच गति की भयानक छवि को दिखलाने वाला उपदेश दिया। उन्हों ने

बतलाया, कि मनुष्य जन्म काल से हि कुछ प्रवृत्तियां, वासनाएं और उत्तेजनाएं लेकर पैदा होता है, जो एक २ शक्ति के समान हैं, और अपने प्रकाश के समय क्या बच्चे को और क्या बूढ़े आदमी को हिला देती हैं, और उनके वशीभूत होकर हि मनुष्य इस दुनिया में सब प्रकार के अपराध और अत्याचार करते हैं। वह एक २ वासना वा उत्तेजना के पीछे अन्धा धुन्ध जाते हैं; और नीच से नीच गति को प्राप्त होते हैं। उन्हें इन नीच गतियों के महा दुखदाई और विनाशकारी फलों का कुछ भी बोध नहीं होता। वह पूर्ण अन्धकार की अवस्था में रहते हैं। कुछ ऐसे हैं, कि जिन्हें बाहर के फलों और प्रभावों का कुछ पता तो लगता है, परन्तु वह अपनी वासनाओं के ऐसे वशीभूत हो चुके हैं, कि फिर रात दिन उन्हीं के प्रवाह में बहते चले जाते हैं। परन्तु प्रकृति के नियम अटल हैं। वह इन वासनाओं के अधिकार में होकर विनाश के भयानक परिणाम से बच नहीं सकते। हां, नीच वासनाओं और उत्तेजनाओं आदि के द्वारा विविध नीच गतियों में पड़कर लाखों आत्मा अपनी शक्ति को दिनो दिन खोकर एक दिन पूर्ण विनाश को प्राप्त हो जाते हैं! इसलिए युवकों के लिए जिन पर वासनाओं आदि के अधिकार ने अपना पूर्ण राज्य स्थापन नहीं कर लिया, नीच गति से उद्धार लाभ करने की

अधिक आशा हो सकती है, परन्तु जहां उनका अधिकार बहुत बढ़ गया है, वहां धर्म्म जीवन की प्राप्ति की आशा प्रायः नहीं रहती, और आत्मा धीरे २ उच्च जीवन लाभ करने की योग्यता खो देता है। नीच वासनाओं आदि के अधिकार से मनुष्य पहले भीतर से पापी बनता है, और अपने आप को हानि पहुंचाता है; फिर बाहर के पाप कर्म्म करता है, और दूसरों को हानि पहुंचाता है। इस आन्तरिक पाप, और लगातार हानि का फल यह होता है, कि जीवन शक्ति नष्ट होती जाती है, और मनुष्य अधिक से अधिक अधोगति को प्राप्त होकर एक दिन अपने अस्तित्व को ही खो बैठता है। देव धर्म्म जिन विश्वव्यापी नियमों पर स्थापित है, उन के अनुसार यदि तुम नीच गति की ओर ले जाने वाले सम्बन्धियों के अधिकार में आ जाओ, तो तुम्हारी शक्ति नष्ट होती जाएगी। इसके विरुद्ध यदि तुम उच्च संगत में आने लगो, और तुम्हारे भीतर आत्म हित की अभिलाषा उत्पन्न हो जाए, और जीवन दाता सम्बन्धी के साथ तुम्हारा सच्चा सम्बन्ध स्थापन हो जाए, तो धीरे २ तुम्हारे भीतर आत्म बल आने और बढ़ने लगेगा। और तुम एक वा दूसरी वासना वा उत्तेजना के अधिकार से निकलकर एक वा दूसरे प्रकार के पापों से मोक्ष लाभ करोगे। जहां पाप है, वहां किसी के सम्बन्ध में अनु-

चित हानि वा दुख वा दोनों अवश्य वर्तमान होंगे। इस लिए तुम नीच वासनाओं आदि के अधिकार में रहकर और पाप करके अपने और औरों के लिए हानि वा दुख का कारण अवश्य बनोगे। ऐसा हो, कि तुम्हारा दिल जागे, और विनाशकारी नीच गतियों से उद्धार लाभ करने के लिए तुम्हारे भीतर आकांक्षा उत्पन्न हो, और तुम उच्च जीवन के अभिलाषी बनकर जीवन दायक ज्योति और शक्ति के भिखारी होकर अपना हित साधन कर सको। जीवन दाता मूल सम्बन्धी में अपने जीवन की सब सामग्री देखकर उन्हें अपना सर्व्वस्व अनुभव कर सको। उन्हें छोड़कर अपने जीवन का नाश उपलब्ध कर सको।

चौथे दिन भगवान् देवात्मा ने एक और सभा कराई, जिस में उन्हों ने पहले एक संक्षिप्त उपदेश में प्रगट किया, कि जो ज्योति उन्हों ने हम तक पहुंचाई है, (और शरीर की रोगी और पीड़ित अवस्था में भी किसी भाव ने उन्हें मजबूर किया है, कि वह अपनी उच्च ज्योति का दान हमें दें) यदि हम उस को दृढ़ता से न पकड़ सकेंगे, तो वह हम से छिन जावेगी, और हमारा कुछ भला नहीं होगा। और यदि ज्योति का निरादर किया जावे, तो फिर ज्योति लाभ करने की योग्यता जाती रहती है। इसके अनन्तर उन्हों ने फ़रमाया, कि गत

तीन दिनों के उपदेशों से यदि हम लोगों के भीतर अपने आत्म हित और अहित का कुछ बोध पैदा हुआ हो, और हमारा प्रमाद दूर हुआ हो, तो हम लोगों को एक ओर अपनी नीचताओं के दूर करने और दूसरी ओर अपने भीतर आत्म हित का भाव वर्द्धन करने के लिए कुछ न कुछ साधन ग्रहण करने चाहिएं। इस पर कितने हि जनों ने विविध साधन ग्रहण किए। और भगवान् देवात्मा ने अपना शुभाशीर्वाद दान देकर यह सभा समाप्त की।

श्रीमान् पण्डित हरनारायण अग्निहोत्री जी को कर्म्मचारी पद पर ग्रहण करते समय उपदेश।

(जीवन पथ, चैत्र सं० १९५९ वि०)

परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने बहुत उच्च भावों से भरकर श्रीमान् पण्डित हरनारायण जी की बाल्य अवस्था से लेकर अब तक जैसी २ अवस्था रही है, और उस में जो २ परिवर्तन आते रहे हैं, उनका मोटा २ वर्णन किया और इस समय उनके भीतर जो शुभ और श्रेष्ट परिवर्तन जारी है, उसके लिए अपने हर्ष का प्रकाश किया। इस भाव प्रकाश के समय आप ने कहा:—

"कोई मनुष्य जिस सीमा तक अपने अहित से बचने और हित को ग्रहण करने की इच्छा रखता है, वहां तक वह स्वाधीन है। परन्तु जब

वह अपनी किसी वासना वा उत्तेजना आदि के आप अधीन हो जाता है, तो फिर उस अंश में वह अपनी स्वाधीनता खो बैठता है। ऐसे लाखों मनुष्य पाए जाते हैं, कि जो अपनी कितनी हि वासनाओं और उत्तेजनाओं के इतने अधीन हैं, कि वह उनके विरुद्ध गति करने की कुछ शक्ति नहीं रखते। एक२ वासना उन पर इतनी सवार है, कि उसके सामने उनकी स्वाधीनता कुछ नहीं। वह पराधीन हैं। चाहे स्वभाव जात नीच प्रकृति के कारण और चाहे नीच सम्बन्धियों में रहने के कारण वह ऐसे बन गए हैं, कि वह एक वा दूसरी नीच वासना और उत्तेजना के अधीन हैं। परन्तु कोई२ ऐसे जन भी मिलते हैं, कि जो अपनी एक२ वासना वा उत्तेजना के इतने अधीन नहीं होते और उन में इतनी इच्छा शक्ति होती है, कि वह उस वासना और उत्तेजना की प्रेरणा को मानें वा न माने। ऐसे जन इतने अंश में स्वाधीन कहे जा सकते हैं। यह स्वाधीनता निश्चय बहुत श्रेष्ठ वस्तु है, क्योंकि उसके मिलने से मनुष्य पर के अनुचित अधिकार में नहीं रहता। पराधीन पर के अधीन होना कहलाता है। पराधीन जन को यदि उसकी कोई वासना वा उत्तेजना विनाश की ओर ले जा रही हो, तो वह विवश उसी के अधीन चला जाता है। कितनी हि अवस्थाओं में उसे यह ज्ञान भी नहीं होता, कि मैं विनाश की ओर जा रहा

हूं। परन्तु जहां पता भी लग जाता है, कि मैं विनष्ट होता हूं, वहां भी उसकी कुछ पेश नहीं जाती। क्योंकि जहां पेश जा सकती हो, वहां समझना चाहिए, कि स्वाधीनता वर्तमान है। यह मनुष्य का बहुत बड़ा अधिकार है, कि उसका अपना अस्तित्व उसके उच्च भावों के हाथ में हो, और नीच वासना अथवा उत्तेजना के अधीन न हो। यद्यपि बाहर से किसी मनुष्य के पाओं में कोई बेड़ियां पड़ी हुई नहीं, तो भी यदि वह देखे, कि मैं अपने हित के लिए न कुछ सोच सकता हूं, न कुछ कर सकता हूं, यहां तक कि यह जानकर भी कि अमुक वासना वा उत्तेजना के अधिकार से बचे रहने में मेरा हित है, फिर भी मैं उस से बच नहीं सकता, तो क्या ऐसा जन कोई मनुष्यत्व का गौरव प्रकाश करता है? कदापि नहीं। ऐसा जन चाहे राजा हो, चाहे प्रजा, धनी हो वा दरिद्र, विद्वान हो वा मूर्ख, जब तक वह अपने अस्तित्व का हिताकांक्षी न हो, तब तक वह मनुष्य नाम को सार्थक नहीं करता। वह मनुष्य का आकार निसन्देह रखता है, परन्तु वह मनुष्य के अस्तित्व को सफल नहीं करता। ऐसा मनुष्य हि सच्चा कैदी, सच्चा गुलाम, सच्चा दास और बंधुआ है। फिर जो आप स्वाधीन नहीं, वह किसी दास वा बंधवे का ऐसी अवस्था से क्योंकर उद्धार कर सकता है? तब तुम सोचो, कि यदि कोई ऐसा पुरुष हो, कि जो

पापों का बोधा होकर आप उन के विनाशकारी दासत्व से ऊपर हों, और औरों को भी उन से मुक्त करने की अपने भीतर आकांक्षा और शक्ति रखता हो, वह कैसा सुन्दर जन है! अब तुम देखो, कि तुम में से कितने के भीतर आत्म हिताकांक्षा वर्तमान है? तुम में से कितने जन ऐसे हैं, कि जो सब प्रकार के पापों के बोधा होने और उन से मोक्ष पाने की अभिलाषा रखते हैं? तुम में से कितने ऐसे हैं, कि जो ऐसी स्वाधीनता वा मोक्ष के प्रेमक होकर औरों को भी मोह और पाप के दासत्व से मुक्त करके उन्हें सच्ची स्वाधीनता देना चाहते हैं? औरों को नीचता की ओर जाता हुआ देखकर उनके लिए दया का भाव अनुभव करते हैं? आहा मनुष्य जन्म पाकर यदि कोई जन सच्ची स्वाधीनता वा मोक्ष का अभिलाषी न बन सके, और औरों के भीतर ऐसी हि आकांक्षा उत्पन्न न कर सके, और इस से भी ऊपर देव धर्म की शिक्षा के अनुसार उनके विकास साधन के लिए कुछ काम न कर सके, तो ऐसे जन का उत्पन्न होना और न होना बराबर है। हां कितनी हि अवस्थाओं में ऐसे जन का पैदा न होना हि अच्छा कहा जा सकता है; क्योंकि वह पैदा होकर उलटा अपनी नीचता से औरों की नीचता को बढ़ा जाता है।

तुम में से जो जन दूसरी श्रेणी के सेवक बन चुके हैं, उनके भीतर ऐसी कामना होनी चाहिए, कि मेरा हित हो, और मेरे द्वारा औरों का भी हित हो। मैं अपने और औरों के हित के लिए प्रति दिन विचार और कार्य्य करूं। मैं आप अपनी नीच अपनत्व के दासत्व से निकलूं और औरों को निकालूं। बिना इसके मैं सड़ गलकर विनाश हो जाने से नहीं बच सकता। औरों के हित के लिए चिन्ता करने, समय देने, उपाय और यत्न करने से हि अपना हित भी होता है। जो अपने तन से किसी की कोई हितकर सेवा करता है, किसी रोगी की चिकित्सा और शुश्रूषा करता है, आप विद्वान होकर किसी को विद्या पढ़ाता है, वह प्रशंसनीय है। परन्तु इस से भी बढ़कर जो किसी के आत्मा के जीवन वा धर्म्म के पथ में सहाय बनता है, उसका अधिकार बहुत उच्च है। किसी रोगी को औषधी देना अच्छा है, और कितने हि लोग देते हैं; मूर्ख को विद्या देना अच्छा है, और उसके लिए जगह २ विद्यालय भी पाए जाते हैं; परन्तु आत्माओं के उद्धार और भलाई के काम में जो सहाय होते हैं, वह देव समाज में सब से श्रेष्ट अंग समझे जाते हैं। ऐसे जन हि सचमुच देव समाज के कर्म्मचारी होते हैं।"

इसके अनन्तर भगवान् देवात्मा ने श्रीमान् पण्डित हरनारायण जी की ओर संकेत करके कहा, कि " यह

हमारा अपना पुत्र है, और इस पृथिवी में सब से बड़ा पुत्र है। हमें इस से बढ़कर और क्या हर्ष हो सकता है, कि हमारे जीवन का जो व्रत है, उसकी सिद्धि में हमारी सन्तान भी भाग ले और उत्तम रूप से भाग ले। ऐसा कौन विद्वान होगा, कि जो अपने पुत्र को विद्वान देखना न चाहता हो ? ऐसा कौन सच्चा धार्म्मिक होगा, कि जो अपने पुत्र को धार्म्मिक और धर्म्म का दानी देखना न चाहता हो ? श्रीमान् हरनारायण जी ने जन्म से हि धर्म्म भावों का अच्छा बीज पाया था। बाल्य काल से हि इनकी धर्म्म में गति थी। छोटी सी उमर में भजन गाना, प्रार्थना करना, नगरकीर्तन की नकल करना, उप-देष्टा होकर बैठना, उपदेश देना इनके प्रिय काम थे। फिर विद्या उपार्जन करने पर भी यह गति बढ़ती गई। और ऐसा समय आया, कि आज से ११ वर्ष पहले इसी मन्दिर में देव समाज की 'पताका' के नीचे खड़े होकर इन्हों ने अपना सारा जीवन धर्म्म प्रचार के लिए भेंट करने की प्रतिज्ञा की। इन्हों ने उस समय यह भाव प्रकाश किया था, कि मैं किसी महाराजा का पुत्र होकर भी अपने आप को ऐसा धन्य २ अनुभव न करता, जैसा आज अनुभव कर रहा हूं। इनके यह शब्द मेरे भीतर तीर की न्याईं लगे थे। यह रोते थे, और मैं भी रोता था। वह रोना किसी दुख वा शोक को लेकर न था,

किन्तु उच्च आनन्द को लेकर था। वह अश्रु हृदय के उच्च भावों के उछलने से निकल रहे थे। वह घड़ी बहुत शुभकर घड़ी थी। मैंने अपनी ओर से अपने किसी पुत्र के उच्च मार्ग में केवल यही नहीं, कि कभी कोई रोक उत्पन्न नहीं की; किन्तु सदा उस में सहाय की है। जब यह कालेज में पढ़ते थे, तो इन्हों ने एक दिन कहा, कि मैं अपने धर्म्म प्रचार के काम में सहायता लाभ करने के लिए केवल अंग्रेज़ी पढ़ना चाहता हूं। और अन्य मज़मून नहीं पढ़ना चाहता। मैंने कहा बहुत अच्छा, तुम केवल अंग्रेज़ी पढ़ सकते हो। मैंने नहीं कहा कि तुम्हें अवश्य डिगरी हासिल करनी चाहिए, क्योंकि विना उसके कोई बड़ा व्यवसाय अथवा बहुत धन नहीं मिल सकता। इन्हों ने अंग्रेज़ी पर ही अधिक ध्यान दिया। इसीलिए यह यूनीवर्सिटी की परीक्षा में नहीं बैठ सके। हम ने हर एक के धर्म्म पथ में सहाय की है। और यह कभी नहीं चाहा, कि औरों के पुत्र फ़कीर बनें, और हमारा पुत्र वकील बने। परन्तु चाहे कोई हमारा बच्चा हो, और चाहे किसी और का, हर एक की प्रकृति अपनी २ होती है। वह किसी के चाहने से नहीं उत्पन्न होती, किन्तु वंश परम्परा आदि से मिलती है, इसीलिए प्रत्येक जन धर्म्म प्रचारक नहीं होता और नहीं हो सकता। हमारी यह इच्छा हो

सकती है, कि हमारा प्रत्येक बच्चा धर्म प्रचारक हो, परन्तु यह हमारे वश की बात नहीं है। हरनारायण जी के कुछ दिन अच्छे बीते। परन्तु कुछ दिन के पीछे वह कली जो खिलने लगी थी, उस में कीड़ा लगा। इस कीड़े के उत्पन्न करने में कई बातों ने काम किया, जिन में से एक अंग्रेज़ी शिक्षा भी थी। सच्ची स्वाधीनता के स्थान में मिथ्या स्वाधीनता ने अपना विनाशकारी काम किया। उस ने इन्हें स्वेच्छाचारी बना दिया। हम चुप हो रहे। हम कैसे हि शक्तिमान क्यों न हों, परन्तु जब तक कोई जन स्वेच्छाचारी रहे, और हमारी ओर से विमुख रहे, तब तक हम प्रकृति के नियम के अनुसार साक्षात् रूप से कुछ नहीं कर सकते। इस प्रकार कुछ काल चला गया, जो बहुत शोचनीय था। फिर यह कुछ और नौकरियां करने के अनन्तर ट्रेनिंग कालिज की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। स्कूल मास्टर बने। फिर हैडमास्टर हुए। परन्तु इस कुल अवस्था में हमारी मंगल कामनाएं इन के साथ रहीं। हमारी ऐसी कामना रहती थी, और बहुत व्याकुलता के साथ रहती थी, कि हमारा पुत्र विनष्ट न हो। और जब हमारे द्वारा और जन बच रहे हैं, तो हमारा अपना बेटा क्यों न बचे। आखिर हमारी मंगल कामनाओं ने इनके हृदय को फिर हिलाया। इन्हों ने अनुभव करना आरम्भ किया, कि मैं अन्धकार में हूं।

मुझे कोई और ज्योति दे, तो मैं ज्योति पा सकता हूं। इस अवस्था में इनको किसी प्रकार आराम नहीं मिलता था। चित्त बहुत दुखी और अशान्त रहता था। किसी भांत चैन नहीं मिलता था। हम ने बाहर से कोई यत्न नहीं किया। अपनी ओर से कोई पत्र नहीं लिखा, कोई सन्देसा नहीं भेजा, आप बुलाकर कुछ समझाने की चेष्टा नहीं की; तो भी किसी सूक्ष्म शक्ति के द्वारा इनका हृदय बदल गया।

इन्हों ने अनुभव किया, कि मैं जीवन के वृक्ष से कट गया हूं, और इसलिए सूखता जाता हूं। मेरे भीतर जीवन का रस केवल जीवन दाता के स्रोत से आ सकता है। ऐसी ज्योति के मिलने पर रोना चिल्लाना आरम्भ हुआ। बहुत समय तक बहुत घोर दुख और पश्चात्ताप जारी रहा। उसका जारी रहना आवश्यक था। प्रत्येक पापी को जानना चाहिए, कि पाप का प्रकृत बोध होने पर पापी को अपने पाप के लिए अन्तर हि अन्तर बहुत बड़ी आग में जलना और बहुत क्लेश उठाना पड़ता है। इन्हें भी बहुत आग में से गुज़रना पड़ा है। यह अपने आप फिरे हैं। इन्हों ने अपनी ग़लती और अपनी उलटी चाल को आप देखा है। यदि कोई हृदय परिवर्तन के अनन्तर फिरे, तो हमारे काम का हो सकता है; नहीं तो नहीं। जब इनके भीतर परिवर्तन आया, तो यह

भाव इनके अन्तर उत्पन्न हुआ, कि मैं किसी और स्कूल में हैडमास्टर क्यों रहूं ? क्यों न मेरी शक्तियां समाज के स्कूल में काम आवें ? अतएव यह वहां की अधिक वेतन की हैडमास्टरी को छोड़कर देव समाज हाई स्कूल की थोड़ी वेतन की हैडमास्टरी पर चले गए। जिस से इन्हें कुछ शान्ति मिली। कुछ आशा मिली। जो अङ्ग जहां का था, वहां पर आ गया। जो हड्डी टूट जाती है, वह जब तक ठिकाने पर नहीं आती, तब तक उस में पीड़ा जारी रहती है। और जब ठिकाने पर आती है, तो पीड़ा दूर हो जाती है। इसके पीछे कुछ और दृश्य इनके सन्मुख आया, अर्थात् यह कि मैं अपने पिता के आध्यात्मिक कार्य्य में भी एक अङ्ग बनूं। कैसी स्वाभाविक और शुभकर कामना ! मेरे बच्चे का वापस आना कुछ कम हर्ष का स्थान नहीं। अब भी उनकी उच्च गति से इनके छिपे हुए त्रिविध धर्म्म भावों के जाग्रत और उन्नत होने से समाज के लिए बहुत बड़ी आशा हो सकती है। इस हर्ष जनक परिवर्तन और आशा जनक उच्च आकांक्षा के साथ अब यह कर्म्मचारी बनने के लिए प्रस्तुत हैं। इसलिए आज यह ६ फाल्गुण का दिन और बातों को छोड़कर मेरे लिए, इनकी परलोक वासी माता के लिए, यहां की माता के लिए, बहिन भाइयों के लिए और जो और जन भी इन से शुभकर

सम्बन्ध रखते हैं, उन सब के लिए बहुत हि हर्ष जनक है। मेरे पुत्र! ऐसा हो, कि तुम्हें घोर अन्धकार से निकलने और तुम्हारे हृदय की गति के उच्च करने में जो ज्योति और शक्ति सहाय हुई है, तुम उसके लिए अब सदा सच्चे रह सको। तुम ने जो अपना ठिकाना पहचाना है, उस पर स्थिर रह सको और औरों के लिए तुम्हारा जीवन सब प्रकार से हितकर हो सके। मेरी धर्म्म ज्योति तुम्हारी मार्ग दर्शक हो। मेरी धर्म्म शक्ति तुम्हारी सहाय हो। जिस शक्ति ने तुम्हें उच्च गति की ओर फेरा है, उसकी महिमा पहचान सको। सदा के लिए उसके अधीन होने की आकांक्षा रख सको। जिस समाज के कर्म्मचारी बनते हो, उस के लिए और उसके कार्य्य के लिए सच्चे हो सको। जो जन यहां उपस्थित हैं, उनकी मंगल कामनाएं भी तुम्हें प्राप्त हों।"

हीनता बोध की उत्पत्ति।

(जीवन पथ, वैशाख सं० १९६० वि०)

हीनता—हीनता क्या? किसी वस्तु का अभाव। अभाव क्या? न होना। जैसे किसी के पास धन का न होना, किसी के पास अपना घर न होना, किसी के पास सवारी न होना, किसी के पास कोई पुस्तक न होना, किसी का कोई भाषा न जानना, किसी का गणित न

जानना, किसी का विज्ञान न जानना, किसी में कोई अच्छा गुण न होना, किसी में कोई सात्विक श्रद्धा वा दया आदि धर्म्म भाव न होना।

हीनता बोध—बोध क्या? अनुभव करना। हीनता बोध क्या? अपने किसी अभाव को अनुभव करना। यह हो सकता है, कि कोई मनुष्य कुछ धन संचय न करता हो, जो कुछ कमाता हो, वह सब खा पीकर उड़ा देता हो, और निर्धन होने का कुछ अभाव अनुभव न करता हो। यह हो सकता है, कि कोई अंग्रेज़ी भाषा न जानता हो, और वह इस अभाव को कुछ अनुभव न करता हो। यह हो सकता है, कि कोई गणित वा पदार्थ विज्ञान न जानता हो, और वह उसका अभाव बोध न करता हो। यह हो सकता है, कि कोई मनुष्य किसी और के सम्बन्ध में एक वा दूसरे प्रकार का अपराध वा पाप करता हो, और लगातार करता हो, परन्तु उसकी कोई बुराई अनुभव न करता हो। यह हो सकता है, कि कोई मनुष्य कोई सात्विक वा धर्म्म भाव न रखता हो, परन्तु वह उस के अभाव को कुछ भी अनुभव न करता हो।

बोध के लक्षण—किसी हीनता वा अभाव के बोध करने की पहचान क्या है? (१) उसके वर्तमान रहने पर सन्तुष्ट न रहना। (२) दुखी वा व्याकुल होना।

(३) उसके दूर करने की आकांक्षा करना। (४) यथेष्ट आकांक्षा के होने पर उसके दूर करने के लिए कोई साधन वा उपाय अवलम्बन करना। जब तक यह सब वा इन में से अधिकांश लक्षण किसी में किसी अभाव के सम्बन्ध में वर्तमान न हों, तब तक समझना चाहिए, कि उस में अपने उस अभाव के सम्बन्ध में कोई बोध विराजमान नहीं है।

बोध की उत्पत्ति—जिस मनुष्य में अपनी जिस हीनता का बोध नहीं है, उस में वह बोध किसी उचित कारण वा नियम के बिना अपने आप उत्पन्न नहीं होता। इसीलिए एक २ मनुष्य की हीनता सारी उमर दूर नहीं होती; एक २ मनुष्य के आत्मा में कोई धर्म्म भाव (जिन से उसका हृदय शून्य है) उत्पन्न नहीं होते। यहां तक कि "ईश्वर" २ कहने और उसकी रची हुई पुस्तकों, यथा वेद, कुरान और बाइबल आदि की पुकार मचाने से भी, उनके मानने वालों के और तो और मोटे २ पाप भी नहीं जाते, और सच्चे धर्म्म भाव उत्पन्न नहीं होते। तब कैसे सौभाग्यवान और धन्य हैं वह जन, कि जो प्रकृत नियम को पहचान कर और उसके पूरा करने के योग्य बनकर अपनी किसी नीचता और हीनता का बोध लाभ करने का अवसर पाते हैं, क्योंकि इस बोध के बिना किसी जन का भी प्रकृत कल्याण सम्भव नहीं।

धन का विनाशकारी मोह और उस से उद्धार।

[जीवन पथ, ज्येष्ठ सं० १९६० वि०]

किसी उच्च गति दायक शुभ भाव के भिन्न, केवल किसी नीच वासना के द्वारा परिचालित होकर, किसी विषय के साथ सम्बन्ध सूत्र में बन्धने से, नीच व्यसन अथवा विनाशकारी मोह की उत्पत्ति होती है। यथाः— केवल जीभ के स्वाद के लिए एक वा दूसरी वस्तु खाने का अभ्यास करना; केवल नशे के लिए किसी नशेदार वस्तु का सेवन करना; केवल धन के लालच से परिचालित होकर धन एकत्र करना; इत्यादि। ऐसी अवस्था में केवल यही नहीं, कि मनुष्य अपने आत्मा का कुछ भला नहीं कर सकता, किन्तु उसके जीवन की महा हानि करने के भिन्न, अपने शरीर की भी बहुत हानि करता है। यहां पर हम और विषयों को छोड़कर केवल धन के सम्बन्ध में मोह और उसके फलों आदि का वर्णन करते हैं। देखो, एक जन अपनी वा अपने पारिवारिक जनों की शारीरिक आवश्यकताओं के निवारण करने के लिए, धन उपार्जन के लिए कोई व्यवसाय वा काम आरम्भ करता है। किसी २ विशेष आवश्यकता के लिए उस में से कुछ २ धन संचय करने लगता है। संचय करते २ उसका लालच बढ़ने लगता है। यह लालच बढ़ते २ यहां तक पहुंच जाता है, कि फिर उसे

केवल धन के संचय करने और और धनी बनने का हि व्यसन पड़ जाता है। वह धन एकत्र करने में हि सुख अनुभव करता है। मद का नशाई जैसे प्याले पर प्याला चढ़ाने की हि कामना करता है, यह धन का नशाई भी केवल उसके अधिक से अधिक बढ़ाने की हि कामना करता है। इस प्रवल कामना के उत्पन्न हो जाने पर फिर वह उसी की चिन्ता और उसी के ध्यान में बहुत कुछ मग्न रहता है। धन के अधिक से अधिक संचय करने अथवा उसके द्वारा अधिक से अधिक सम्पत्ति बढ़ाने का यहां तक भूखा हो जाता है, कि फिर अनेक वार अपने शरीर की भी प्रवल भूख प्यास को भूल जाता है। जिस धन को उस ने पहले अपने और अपने पारिवारिक जनों की शारीरिक त्रिविध आवश्यकताओं के दूर करने के लिए कमाना आरम्भ किया था, अब उसी धन के दासत्व में फंसकर, उस के द्वारा अपनी और उनकी कितनी ही सच्ची शारीरिक आवश्यकताओं को भी पूरा करना नहीं चाहता। और जैसे एक २ जन ज़ख़मी होकर दुखी होता है, वैसे हि यह भी अनेक वार अत्यन्त आवश्यक खर्च के समय में भी, रुपया निकालने में अपने भीतर ज़ख्म का सा दर्द मालूम करता है; और उसे अपने पास से दूर करना नहीं चाहता।

यह मोह बढ़ते २ उसके शरीर के भिन्न उस के प्राण

पर भी इतना अधिकार कर लेता है, कि वह एक२ बार यह अनुभव करता है, कि मेरे लिए प्राण का त्याग करना जितना सहज है, उतना धन का छोड़ना सहज नहीं। धन का यह नीच और महा विनाशकारी लालच उसका स्वामी बन जाता है, और यह उसके व्यसन में पड़कर क्रीतदास से भी बढ़कर उसका दास हो जाता है। कैसा भयानक दृश्य !! कहां यह चेतन मनुष्य, और कहां उसका एक अचेतन पदार्थ के मोह में फंसकर यह दासत्व !!

धन का यह दास जिस का नाम धनदास होना चाहिए, प्रति दिन धन कमाने के लिए कितना कुछ कार्य और कितना कुछ परिश्रम करता है, और कितना कुछ उसके लिये कष्ट उठाता है; परन्तु इन सब का फल ? वही नीच वासना और दासत्व की उन्नति। वही मोह का बढ़ना! अब इस धन दास का यह शरीर भी कब तक साथ दे सकता है ? एक दिन वह भी छूट जाता है, और फिर उसका वह धन कहां जाता है ? क्या उसी के साथ जाता है ? नहीं। वह उस नीच व्यसनी की कुछ परवाह नहीं करता। जैसे कभी २ एक सांप चूहे को पकड़ कर उसके लहू को चूसकर उस वहीं छोड़ देता है, वैसे हि यह धन अपने विनाशकारी लालच के विष से न केवल अपने दास के आत्मा की

जीवनी शक्ति को, किन्तु उसके शरीर को भी शक्ति को बहुत कुछ अपहरण करके उसे छोड़कर, यहीं इसी पृथिवी में पीछे पड़ा रहता है। यदि उसकी मृत्यु पर उसके कुछ सम्बन्धी मोह के वश होकर रोते हैं, तो कुछ सम्बन्धी यह देखकर कि उस अभागे के मरने से उसका सारा वा बहुत सा धन उन्हें प्राप्त होगा, मन २ में प्रसन्न भी होते हैं!

धनदास जैसे मोह में फंसकर धन का दास बन जाता है, वैसे हि मोह में फंसकर अपनी स्त्री और अपने पुत्रों आदि का भी दास बन जाता है। वह धन का अनुचित लालसी बनकर जैसे उसे अधिक से अधिक अपने पास देखने का आकांक्षी रहा था, वैसे हि अपने इस धन को अपनी मृत्यु के अनन्तर अपने उन पुत्रादिकों के पास हि छोड़ जाना चाहता है, कि जिन के मोह में फंसकर वह उनका भी दास बन चुका है। वह अनेक बार उस गधे की न्याई होता है, कि जो कुम्हार के सोटे के अधीन रहकर सारा दिन उसके लिए ईंट वा मट्टी के बोरे ढोता रहता है, और जिस की मज़दूरी तो कुम्हार ले लेता है, और वह कूड़ी पर चरकर अपना गुज़ारा करता है। गधा कुम्हार के डंडे से, और यह मोह अथवा अनुचित लालच के डंड से परिचालित होता है। कैसा बुरा दृश्य! कैसी शोचनीय अवस्था!!

धन दास गधे से भी बढ़कर बुरा बन जाता है। गधा तो कुम्हार के पास काम के न रहने पर, शान्ति पूर्वक ख़ाली भी फिरता रहता है, और अपनी सन्तान् के सम्बन्ध में भी कोई नीच मोह नहीं रखता; परन्तु यह जब तक जागता रहता है, तब तक अकसर उसी की चिन्ता और उधेड़ बुन में रहता है, और अपनी सन्तान् के साथ नीच मोह में बन्धकर सारी उमर जो कुछ इकट्ठा करता है, वह उन्हीं के पास छोड़ जाना चाहता है, कि जो या तो उसी की न्याई इस धन के ढेर के बढ़ाने में गधे की तरह काम करके अपने लिए विनाश-कारी मोह को बढ़ाते रहते हैं; या उस से भी बढ़कर नाना प्रकार के बुरे और पाप कर्म्मों में ख़र्च करके अपने गधे पिता की महा मूर्खता के कारण, ऐसे पापों के द्वारा अपने आत्मा के भिन्न शरीर को भी कई प्रकार के रोगों से महा रोगी और दुखदाई बना लेते हैं। और इस प्रकार दोनों हि इस धन रूपिणी मायाविनी के दास बन कर अपने २ सम्बन्धों को एक दूसरे के लिए सब प्रकार से हानिकारक और दुखदाई प्रमाणित करते हैं।

इन सब हानिकारक फलों से तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों आदि का उस समय तक पीछा नहीं छूट सकता, जब तक तुम्हारे भीतर उसके महा भयानक मोह के तोड़ने के लिए धर्म्म सम्बन्धी उच्च भाव जाग्रत

और यथेष्ट रूप में उन्नत न हों। जब तक तुम्हारे हृदय में उपरोक्त अवस्था को सन्मुख लाकर उसके भयानक फलों के देखने की आंख पैदा न हो। जब तक तुम धन और अपनी सन्तान् आदि के मोह में फंसकर जिस दासत्व को प्राप्त हो रहे हो, उसके विनाशकारी रूप को देखकर, उस से भागने और बचने के आकांक्षी न बनो वा तुम्हारे हृदय में ऐसी आकांक्षा उत्पन्न न हो। क्या ऐसी आकांक्षा तुम में पाई जाती है ? क्या उसके विषय में तुम कभी कोई चिन्ता वा विचार करते हो ?

फिर इस विनाशकारी मोह से बचने का उपाय क्या है ? यदि तुम्हारे भीतर उस से उद्धार की कुछ इच्छा उत्पन्न हो चुकी हो, तो तुम अपने कमाए वा पाए हुए धन को उचित रूप से दान करने का अभ्यास करो। विशेष २ आवश्यकताओं अथवा अपने मरने के पीछे यदि अवस्था के अनुसार, अपनी स्त्री वा किसी सन्तान् के निमित्त कुछ रखना वा छोड़ जाना आवश्यक हो, तो उतना हिसाब करके रखओ, बाकी जो कुछ हो उसे शुभ कार्य्यों के लिए और उन में से सब से बढ़कर प्रकृत धर्म्म प्रचार विषयक महा हितकारी विविध कामों के लिए शुद्ध भाव से दान करदो।

इसके भिन्न अपनी मासिक वा वार्षिक आय में से अपने और अपने परिवार वर्ग आदि के पालन आदि के

निमित्त जितना व्यय करना तुम्हारी अवस्था के लिए उचित और आवश्यक हो, उतना व्यय करो, और उस में भी जो कुछ बच रहे, वह सब दान के काम में लाओ।

स्मरण रक्खो, कि तुम्हारा यह दान उन सैकड़ों लोगों की न्याई न हो, कि जो किसी नीच वासना की तृप्ति यथा, नाम वा यश वा उपाधि वा पद आदि की प्राप्ति के लिए करते हैं; किन्तु केवल शुभ और हित के उच्च भाव से परिचालित होकर हो। बिना ऐसे उच्च भाव मूलक सच्चे कल्याणकारी और लगातार दान के जैसे तुम एक ओर धन के मोह और विनाशकारी फलों से रक्षा नहीं पा सकते, वैसे हि दूसरी ओर अपने आत्मा के जीवन का भी कोई कल्याण साधन नहीं कर सकते। और न अपनी स्त्री वा सन्तान् आदि के लिए हि अपना सद् दृष्टान्त दिखाकर और उन्हें उसका अनुयाई बनाकर उनके शुभ में सहाय हो सकते हो। तुम यदि और कोई महत् काम नहीं कर सकते, तो बेशक धन कमाओ, और उचित और यथेष्ट रूप से कमाओ और खूब कमाओ, परन्तु यह सब मोह के वश होकर धनी बनने वा अपने पीछे अनुचित रूप से स्त्री पुत्रादिकों के पास छोड़ जाने के लिए नहीं, किन्तु प्रकृत धर्म्म भावों को लाभ करके उपरोक्त प्रकार से दान करने और उसके द्वारा अपने

और औरों के कल्याण साधन वा दूसरे शब्दों में मोह और पाप के विनाशकारी फलों से बचने और उच्च जीवन की सम्पत्ति के बढ़ाने के लिए हो।

स्त्रियों की शिक्षा।

[जीवनपथ, ज्येष्ठ सं० १९६० वि०]

स्त्रियों की वाणी में जितनी मधुरता पाई जाती है, उतनी पुरुषों की वाणी में नहीं पाई जाती। इसीलिए स्त्रियां संगीत विद्या को विधि पूर्व्वक सीखकर जितना मधुर गा सकती हैं, उतना पुरुष प्रायः नहीं गा सकते।

एक काल था, जब कि हमारे देश की हिन्दु स्त्रियों को साधारण विद्या के भिन्न गाना, बजाना, चित्र खीचना, फूलों के ज़ेवर बनाना, घर सजाना, और शुश्रूषा करना उचित विधि के साथ सिखाया जाता था, परन्तु खेद का विषय है, कि हिन्दुओं की और अवनति के साथ यह सब कुछ भी चला गया। महा भारत के आदि पर्व के पढ़ने से ज्ञात होता है, कि उस समय में हमारे देश की भद्र स्त्रियां विधि पूर्व्वक गाना सीखती थीं, वीणा और मृदंगादि बजाती थीं और उत्तम नृत्य करना जानती थीं। विराट पर्व में लिखा है, कि राजा विराट के घर की स्त्रियों को अर्जुन ने गाना और बजाना सिखाया था। राजा विक्रमादित्य के समय में भी इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। संस्कृत के पुराने नाटकों में

अच्छे घर की स्त्रियों में गाने बजाने आदि का जगह २ उल्लेख है। दशकुमार चरित में एक माता इस प्रकार कहती है :— " हम लोग अपनी कन्याओं को रंगने, चित्र खींचने, गाने, बजाने, नाचने और नाटक के खेल दिखाने में निपुण करती हैं।" संगीत-रत्नाकर संगीत शास्त्र का एक प्राचीन ग्रन्थ है। उसके कर्ता ने लिखा है, कि प्राचीन काल में संगीत शास्त्र के आचार्य्य स्त्रियों को विधि पूर्व्वक संगीत, नृत्य और अभिनय करना सिखाते थे। अब भी हमारे देश में भद्र घरों की स्त्रियां विवाह आदि कितने ही अवसरों पर गाती बजाती और नाचती भी हैं। परन्तु इन सब विषयों में उन्हें विधि पूर्व्वक और भली भांत कोई शिक्षा नहीं दी जाती। इसीलिए साधारण रूप से जैसे उनके गीत रद्दी होते हैं, वैसे ही उन की ढोलकी का पीटना भी किसी बहुत सुहावने और मधुर स्वर का परिचय नहीं देता। क्या अच्छा हो, कि जैसे अब लोगों की रुचि अपनी २ कन्याओं और स्त्रियों के पढ़ाने लिखाने की ओर फिरी है, वैसे ही संगीत, नृत्य, चित्रकारी, शुश्रूषा आदि अच्छे गुणों के सिखाने की ओर भी उत्पन्न हो।

जीवन रस की प्राप्ति और अप्राप्ति—दोनों के जुदा २ फल ।

[जीवन पथ, आषाढ़ सं० १९९० वि०]

जीवन रस वह है, कि जिस के मिलने से जीवन प्राप्त हो, पाप वा नीचता घटे, जीवन शक्ति बढ़े और उच्च जीवन में विकास हो। जैसे एक २ वृक्ष को जब जल आदि अनुकूल सामग्री प्राप्त होती है, तब उस में नए २ पत्ते निकलते हैं, नई २ शाखाएं फूटती हैं और नए २ फूल और फल लगते हैं। उसी प्रकार जब जीवन दाता से जुड़कर कोई आत्मा जीवन रस प्राप्त करता है, तो उसके भीतर से विकार दूर होने लगते हैं, धर्म्म भावों के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं, उच्च भाव पुष्टि लाभ करते हैं, और आत्मा मधुर, सुन्दर और सेवाकारी जीवन लाभ करता है। इसके विरुद्ध जैसे जल के न मिलने से वृक्ष के पत्ते सूखने लगते हैं, फूल कुमहला जाते हैं, फल सड़ गल जाते हैं, और धीरे २ सारा वृक्ष ही सूख कर प्राण विहीन और शुष्क काष्ट रह जाता है: वैसे ही जीवन दाता भगवान् देवात्मा से कटकर, और जीवन रस से वंचित होकर एक २ सेवक आत्मा का हाल होता है। उस के भी उच्च भाव कुमहला और मुरझा जाते हैं। वह ज्योति विहीन दुर्बल और शुष्क हो जाता है, और यदि वह जीवन रस के स्रोत से शीघ्र मेल स्थापन न करे, तो ऐसा आत्मा समय पाकर बिलकुल प्राण विहीन होकर विनष्ट हो सकता है। नीचे हम दो

सेवकों के दो जुदा २ पत्रों में से कुछ २ भाग उद्धृत करते हैं; जो जीवन की इन दोनों अवस्थाओं और उनके फलों के अन्तर को स्पष्ट रूप से प्रगट करते हैं :—

एक सेवक कि जो जीवन दाता भगवान् देवात्मा के श्री चरणों में रहकर जीवन रस प्राप्त करते रहे हैं, वह अपने जीवन के शुभ परिवर्तन को सन्मुख लाकर उनकी सेवा में अपने एक पत्र में उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

(१) आप के श्री चरणों में रहकर यथार्थता का भाव उत्पन्न हुआ है, क्या अपने बोलने में और क्या अपने लिखने में सदा ठीक रहना चाहता हूं। और यदि कभी इसके विरुद्ध कुछ हो जाता है, तो उस से बहुत तकलीफ़ होती है, और उसे ठीक करके ही चैन आता है।

(२) आप की आज्ञा को आप की अवर्तमानता में भी पूरा करना चाहता हूं, उसके विरुद्ध जाने में बहुत दुख अनुभव होता है।

(३) समाज के लिए बाध्यता का भाव उत्पन्न हो चुका है, उसके विरुद्ध जाने में भी क्लेश अनुभव होता है।

(४) अपने ज़िम्मे के काम को पूरा करने और जहां तक सम्भव हो, समय पर पूरा करने का भाव उत्पन्न हो चुका है।

(५) कुछ न कुछ शुभ काम करते रहने का अभ्यास पक चुका है। निकम्मे रहने में क्लेश अनुभव होता है। और रोग

आदि की अवस्था के भिन्न मैं निकम्मा नहीं रह सकता ।

(६) औरों का हित साधन करने का भाव एक अंश तक हृदय में उत्पन्न हो चुका है ।

(७) देव समाज के साथ एक सीमा तक अनुराग उत्पन्न हो चुका है, और उसके एक वा दूसरे प्रकार के काम में स्वभावतः हृदय जाता है, और उसकी उन्नति देखकर बहुत हर्ष लाभ करता है ।

(८) उसकी उन्नति के लिए एक वा दूसरे त्याग का भाव उत्पन्न हो चुका है ।

(९) आप के सम्बन्ध में एक अंश तक आकर्षण और अनुराग का भाव उत्पन्न हो चुका है । आप का देवरूप एक २ समय हृदय को विशेष रूप से आकृष्ट करता है । आप के रूप पर चिन्तन करके आप की महिमा को पाठ और श्रवण करके हृदय उभरता है, और आप की आज्ञा पालन करके, आप की कोई तुच्छ सेवा करके, और आप के श्री चरणों में बैठकर और आप के हितकर वचनों के सुनने का अधिकार पाकर हृदय तृप्ति पाता है ।

(१०) आप की शिक्षा की और सब शिक्षाओं से बहुत बड़ी महानता अनुभव होती है, उसके लिए बहुत आकर्षण अनुभव होता है, और उसे अपने हृदय पर अधिक से अधिक अधिकार देना चाहता हूं ।

(११) इस शिक्षा को औरों तक पहुंचाने का भाव भी उत्पन्न हो चुका है।

(१२) कई सम्बन्धों में कई एक नीच गतियों का मुझे बोध हुआ है; और उन से मेरा उद्धार हुआ है, विशेष करके एक विशेष उत्तेजना का जो मुझ पर बहुत बड़ा अधिकार था, उस से मेरा बहुत कुछ उद्धार हुआ है।

(१३) कई सम्बन्धों में कई एक उच्च बोध उत्पन्न हुए हैं, और उनके सम्बन्ध में एक वा दूसरा हितकर साधन करके आत्मा उच्च बनता है।

(१४) मान्सिक शक्तियों को पहले से बहुत उन्नत होने का अवसर मिला है।

(१५) बोलने और लिखने की शक्ति बढ़ी है।

(१६) शिष्टाचार के सम्बन्ध में बहुत बेहतरी आई है।

इन सारे उपकारों के लिए मैं हृदय गत भावों के साथ आप के श्री चरणों में कृतज्ञता के भाव का प्रकाश करता हूं। और ऐसा आशीर्वाद दान मांगता हूं, कि मैं और भी आप के साथ अपने सम्बन्ध को पहचानूं, और आप के अधिकार में आकर अपने जीवन को उच्च बना कर सफल करूं। आप की ज्योति और शक्ति अधिक से अधिक मुझे लाभ हो।

इसी पत्र के साथ भगवान् देवात्मा की सेवा में एक और पत्र मिला, कि जिस में एक सेवक इस प्रकार लिखते हैं:—

"प्राय: १५ दिन से मैं आप के और समाज के सम्बन्ध में अपने कर्तव्यों को अपनी बीमारी, काम की अधिकता और सब से बढ़कर अपनी निम्न अवस्था आदि के कारण पूरा नहीं कर सका हूं, जिस का फल यह है, कि मेरा हृदय बहुत शुष्क, दुर्बल और निस्तेज हो गया है। अपनी होश मारी हुई प्रतीत होती है। जीवन शक्ति घटी हुई दिखाई देती है। भीतर बहुत उदासी और घबराहट हो रही है। अपना आप नीचे को जाता हुआ अनुभव होता है। शरीर का आहार न मिलने से जैसे शरीर दुर्बल होने लगता है, वैसे हि आध्यात्मिक आहार की प्राप्ति न होने से मैं आत्मा के विचार से दुर्बल हो गया हूं। और मैं देखता हूं, कि यदि आप की ज्योति और शक्ति एक वा दूसरे प्रकार से मुझ तक पहुंचकर ऐसी अवस्था से मुझे न निकाले, तो ऐसी नीच अवस्था में बढ़ते २ थोड़े काल में बिलकुल मुरदा हो जाऊंगा। बेशक मैं शरीर के विचार से आप से दूर हूं, और आप स्थूल रूप से मुझे कुछ नहीं कहते, परन्तु फिर भी आप के साथ मेरा जितना आन्तरिक सम्बन्ध स्थापन हो चुका है, उसके द्वारा आप

की शक्ति मुझ तक पहुंचकर मुझे धतकारती है, और मुझे नीचे जाने में चैन नहीं लेने देती। मुझे अपने दायत्व से गिरने पर फटकारती है। मुझे ऐसी वेसुधि और नीच अवस्था के भयानक फलों को दिखाकर उन से बचने की प्रेरणा करती है। और यही कारण है, कि यद्यपि मेरे पिछले दिन एक वा दूसरे कारण से मेरी जीवनी शक्ति के घटाने का कारण बने हैं; परन्तु आप की शक्ति सूक्ष्म रूप से मुझे बराबर हिलाती रही है, और ऐसी अवस्था के लिए दुखी करती रही है। ओह! यदि मेरे जैसे इतने वर्षों से संगत में आने वाले पर प्रतिकूल सामान १५ दिन में इतना हानिकारक प्रभाव डाल सकते हैं, और मुझे इतना दुर्बल और नीरस बना सकते हैं, तो उन विचारों का क्या ठिकाना, जो वर्षों के वर्ष केवल प्रतिकूल सामानों में ही काटते हैं। मैंने इस विषय में इन दिनों बहुत शिक्षा लाभ की है, और मैं अब आगे को एक वा दूसरे छोटे मोटे विघ्न के आने पर आप के और समाज के सम्बन्ध में अपने कर्तव्यों को नहीं छोड़ूंगा। जहां कहीं आवश्यक होगा मैं धन आदि की कोई बाह्यक हानि उठा लेना गवारा करूंगा, परन्तु आत्मा को हानि नहीं पहुंचने दूंगा। संसार के किसी काम में यथेष्ट समय न दे सकने से जो हानि हो, वह हो; परन्तु आप के और समाज के सम्बन्ध में उदासीन

होकर अपने लिए और औरों के लिए हानिकारक प्रमाणित नहीं हूंगा।"

पाठक गण! तुम भी अपनी अवस्था पर विचार करो और देखो, कि तुम जीवन रस के स्रोत के साथ कहां तक जुड़े हुए हो, और कहां तक अपने धर्म्म साधनों के द्वारा उस से जीवन का रस प्राप्त करते हो?

कुछ मोटे २ पापों से विरत रहकर भी आत्मा विनाश से नहीं बच सकता।

(जीवन पथ, श्रावण सं० १९६० वि०)

प्रत्येक धर्म्म मत के अधिकांश लोगों को छोड़कर कुछ लोग जो कई मोटे २ पाप नहीं भी करते, प्रकृत धर्म्म के विचार से उनकी अवस्था भी क्या है? औरों को छोड़कर हिन्दुओं में से ही जो लोग घर और परिवार आदि छोड़कर वैरागी, योगी और सन्यासी आदि बन जाते हैं, उन में से उन अधिकांश साधुओं को छोड़कर (कि जो महा धूर्त होते हैं, जो भंग, सुलफा, मद, अफ़ीम आदि नशों का सेवन करते हैं, जो औरों की बहू बेटियों को ख़राब करते हैं, जो रसायन आदि के नाम से तरह २ की प्रवंचना करते हैं, जो अनेक प्रकार के झूठ बोलते हैं, जो अश्लील बातें करते हैं, जो आपस में भी एक दूसरे की चोरियां करते हैं, जो परस्पर

"अप्राकृतिक" कर्म्म करते हैं, जो कई बातों के विचार से कई गृहस्थियों की अपेक्षा भी बहुत घृणित और नीच जीवन व्यतीत करते हैं) उन गिनती के "साधुओं" पर ही दृष्टि फेरो, कि जो इस प्रकार के पापों में लिप्त नहीं हैं, और जो पुरानी विधि के अनुसार अपने चित्त आदि की वृत्तियों के रोकने का भी साधन करते हैं, और जो ऐसे साधन से अपने चित्त को स्थिर करके एक प्रकार का आन्तरिक सुख भी सम्भोग करते हैं, और सिद्ध पुरुष समझे जाते हैं। यदि उनकी ही अवस्था को सन्मुख लाओ, तो भी जीवन तत्व की ज्योति में तुम स्पष्ट रूप से देख सकते हो, कि यद्यपि उपरोक्त प्रकार के पापों से विरत जन पृथिवी में बहुत थोड़े ही मिल सकते हैं, फिर भी जहां कहीं वह वर्तमान भी हैं, वहां वह इन पापों से बचे रहकर भी न तो जीवन सम्बन्धी विकास और विनाश के तत्वों का ही कोई ज्ञान रखते हैं, और न हृदय के वह उच्च भाव ही रखते हैं, कि जो उनकी उच्च गति और विकास के लिए आवश्यक हैं। ऐसे जनों में भी कितने ही तो केवल धन, सम्पत्ति, इन्द्रिय सुख, मान, पद आदि को ही लक्ष्य रखकर जीते हैं, और विकासकारी धर्म्म शक्तियों से विहीन रहकर अपने आत्मा की जीवनी शक्ति को खोते रहते हैं। और कितने ही जो "साधु" बनकर

जप, ध्यान और योग आदि के साधन में रत रहते हैं, वह ध्यान समाधि का सुख लेकर भी (जिस प्रकार और कितने ही जन रसना आदि का सुख भोग लेते हैं) विकासकारी धर्म्म के सच्चे भावों से ख़ाली रहकर अपने जीवन को जहां एक ओर विकसित नहीं कर सकते, वहां दूसरी ओर ऐसी अवस्था में उपरोक्त मोटे २ पापों से बचे रहकर भी अपने आत्मा के जीवन को विनाश से नहीं बचा सकते, और एक दिन (चाहे वह दिन अन्य पापियों की अपेक्षा कुछ काल दूर जाकर आवे, सर्वथा नष्ट हो जाते हैं।

इसी प्रकार वह अल्प जन जो कुछ मोटे २ पापों से विरत रहकर सचमुच कुछ दया आदि के हितकर भाव भी रखते हैं, और नाम और प्रशंसा और उपाधि आदि वासनाओं से ऊपर जाकर अत्यधिक सच्चे परोपकार के कर्म्म भी करते हैं, वह यद्यपि इस से एक सीमा तक अपने आत्मा का अवश्य हित करते हैं, परन्तु उसे अन्य विविध सम्बन्धों में विकार वा पाप रहित करने के लिए जिन विविध बोधों की आवश्यकता है, उनके न मिलने और उसके जिन अंगों में उच्च गति दायक नाना अनुरागों के लाभ करने की आवश्यकता है, उनके न लाभ करने से, कुछ बहुत दूर तक अपना भला नहीं कर सकते, और इसीलिए वह भी एक दिन (चाहे वह दिन और

कितनों की अपेक्षा कुछ अधिक काल के बाद ही आवे) इसी अवस्था में पड़े रहकर बिलकुल नष्ट हो जाते हैं।

जीवन प्रसंग।

[जीवन पथ, भाद्र पद सं० १९६० वि०]

क्या प्रकृत धर्म्म के विषय में तुम्हारे भीतर कोई विवेक उत्पन्न हो गया है ? क्या तुम धर्म्म जीवन को चाहते हो ? क्या उसके लाभ करने के लिए तुम्हारे हृदय में कोई आकांक्षा वर्तमान है ? क्या तुम उसे संसार की प्रत्येक वस्तु से बढ़कर लाभ करने की वस्तु समझते हो ? यदि समझते हो, तो क्या तुम प्रातः काल उठकर और सब चिन्ताओं को छोड़कर, सब से पहले धर्म्म जीवन के विषय में ही चिन्ता, पाठ, विचार, आत्म परीक्षा, जप, प्रार्थना और मंगल कामना आदि साधनों में प्रवृत्त होते हो ? और उसके अनन्तर सोने के समय तक अपने विविध सम्बन्धों में जहां तक तुम्हें बोध हो चुका है, वहां तक नीचता से बचने, और जहां तक सम्भव है, अपनी ओर से हित पहुंचाने की चेष्टा करते हो ?

यदि विनाशकारी गतियों से मोक्ष और उच्च जीवन की प्राप्ति तुम्हारा मुख्य लक्ष्य हो, और उसकी तुलना में किसी वस्तु का लाभ करना गौण लक्ष्य हो, तो फिर

जहांतक उसके प्रचार की तुम में योग्यता वर्तमान हो, वहां तक उसका प्रचार करना तुम्हारे लिए न केवल आवश्यक किन्तु स्वाभाविक हो जाता है। उच्च जीवन से वढ़कर यदि मनुष्य के लिए कोई और लाभ न हो, जैसा कि नहीं है, तो फिर देव धर्म्म के प्रचार में जो जन अपनी सारी आयु व्यतीत करते हों, वा कर सकते हों, उन से वढ़कर अपना हितकारी और सौभाग्यवान मनुष्य इस संसार में और कौन हो सकता है ? कोई नहीं।

स्मरण रक्खो, कि विश्व जननी के पेट से जन्म ले कर तुम ने यदि अपने आत्मा में देव धर्म्म प्रवर्तक की कुछ भी दुर्लभ और अद्वितीय ज्योति पाई है, और इस ज्योति को पाकर सैकड़ों कल्पना-मूलक मतों के भ्रम जाल से निकलने का अवसर पाया है, और उनकी उच्च बोध उत्पादक शक्ति लाभ करके कुछ भी उच्च बोध पाए हैं, और कुछ भी सत्य धर्म्म विषयक अमूल्य ज्ञान लाभ किया है, और तुम्हारे भीतर अपने ऐसे जीवन दाता के सम्बन्ध में कुछ भी सच्ची कृतज्ञता विराजमान है, और जो लोग इस अमूल्य और अद्वितीय ज्योति से वंचित होकर और अन्धकार की अवस्था में पड़े रहकर अपने आत्माओं का नाश कर रहे हैं, उन की अवस्था को सहानुभूति के साथ देखने की कुछ भी

आंख विद्यमान है, तो तुम नेचर जननी के पेट से जन्म पाकर, और अपने धर्म्म दाता देवगुरु से आत्मिक जीवन लाभ करके उस महान और विकासकारी काम में सेवा-कारी होने से जिस में तुम्हारे धर्म्म दाता गुरु और नेचर का विकासकारी विभाग दोनों लगातार काम कर रहे हैं, मुंह नहीं चुरा सकते।

नेचर अपने भीतर विकास के जिस महा कल्याण-कारी अटल नियम को पूरा कर रही है, तुम्हारे धर्म्म दाता गुरु उसके जिस महा नियम का साथ देने के लिए अपनी सारी आयु खर्च कर रहे हैं, क्या तुम ऐसी नेचर के पेट से जन्म लेकर और ऐसे धर्म्म दाता गुरु के सेवक कहलाकर, अत्यन्त उत्साह के साथ उस में भाग लेना नहीं चाहते ? क्या तुम इन दोनों के परिश्रम को बटाना नहीं चाहते ? क्या तुम इस महत कार्य्य की कठिनाइयों से भयभीत होकर एक डरपोक और बेवफ़ा की न्याईं पीछे को भागना चाहते हो ? क्या तुम नहीं जानते कि कठिनाइयों का सामना करने और आगे से आगे पांव उठाने में ही तुम्हारा भला और तुम्हारे अस्तित्व की (जो तुम्हें मिला है) सच्ची महिमा है ? क्या तुम नहीं जानते कि रणक्षेत्र से भागकर तुम कभी भी विनाश की तोप के गोले से अपनी रक्षा नहीं कर सकते ? क्या रण में पीठ दिखाने के लिए ही नेचर

माता ने तुम्हें अपनी गोद में और धर्म्म दातागुरु ने अपने धर्म्म राज्य में जन्म दिया है? कदापि नहीं। तब अपनी योग्यता को पहचानो। अपने गिरे हुए देश और अपनी मरी हुई जाति की आवश्यकता को देखो। नेचर के महा कल्याणकारी विकास के नियम को सन्मुख लाओ। तुम्हारे उच्च जीवन दाता बूढ़े और रोगी होकर भी जिस महान कार्य्य के लिए रात दिन चिन्ता, परिश्रम और संग्राम कर रहे हैं, उनके साथ अपने सम्बन्ध के कर्तव्य को उपलब्ध करो, और झूठ हिसाबों अथवा वृथा अविश्वास में पड़कर अपने अस्तित्व के इस शुभ अवसर को न खोओ। अविश्वास को एक हुंकार मार कर दूर करो, नेचर के विकासकारी नियम को उस वाणी को सुनो, जो कह रही है, "मेरे लिए सच्चे बनने में कोई भय नहीं, कोई डर नहीं! मेरे लिए सच्चे रहने में सब से बढ़कर शुभ! सब से बढ़कर कल्याण है!" इस वाणी को सुनो और उत्साहित हो। विश्वास के भाव को प्रबल करो, और अपने पूजनीय भगवान् की आकांक्षा के पूर्ण करने, उनके सम्बन्ध में कृतज्ञता का ऋण शोध करने, अपने देश का, अपनी जाति का और अपना सब से बढ़कर हित साधन करने के लिए तुम्हारे लिए जो कुछ करना ज़रूरी है, उसके लिए खुशी २ तैयार हो। उचित होने पर अपना सारा अस्तित्व, नहीं तो और जो कुछ अर्पण कर सकते हो, वह उत्साह के साथ अर्पण करो।

सर्व्वोच्च दान ।

दान करने से आत्मा का कल्याण होता है अर्थात् एक ओर स्वार्थ के विष का नाश, और दूसरी ओर आत्मा में उच्च जीवन का विकास होता है। दान कई प्रकार के हैं, परन्तु उन सब से श्रेष्ट दान धर्म्म विषयक दान है। धर्म्म दान से बढ़कर कोई दान नहीं। यह दान प्रत्येक मनुष्य नहीं कर सकता। प्रकृत धर्म्म का दान वही जन कर सकता है, जिस में कुछ न कुछ पाप बोध उत्पन्न हो चुका हो, और उच्च जीवन लाभ करने की अभिलाषा जाग चुकी हो।

धर्म्म विषयक दान भी कई प्रकार से होता है। जो जन प्रकृत धर्म्म को पहचानकर औरों पर उसकी महिमा को प्रकाश करके और उन्हें नीच गतियों से फेरकर उच्च जीवन का अभिलाषी बनाने की योग्यता रखते हैं, और भगवान् देवात्मा के सेवक होकर इस प्रकार के कार्य्य में अपना समय देते हैं, वह समय चाहे अपने से नीचे दर्जे के सेवकों के कल्याण के लिए खर्च करते हों और चाहे श्रद्धालुओं के लिए, वह निश्चय बहुत बड़ा दान करते हैं। परन्तु इसके भिन्न देव समाज के जो लोग धर्म्म प्रचार सम्बन्धी विविध कामों, यथा धर्म्म प्रचारकों की सेवा और शुश्रूषा करने, धर्म्म पुस्तकों की रचना करने, धर्म्म पुस्तकों के बेचने और फैलाने, धर्म्म

पुस्तकों के छापने के लिए प्रेस का बन्दोवस्त करने, धर्म्म विषयक लेखों के लिखने, धर्म्म सम्बन्धी पत्रों के सम्पादन करने, धर्म्म साधनों के लिए मन्दिर बनाने, सत्संगियों के रहने वा ठहरने के लिए वा समाज के दफ़्तर आदि और प्रचारकों के रहने के लिए मकानात के निर्म्माण करने आदि के सम्बन्ध में जो कुछ धन और तन से सहाय करते हैं, वह भी धर्म्म सम्बन्धी उच्च दान करते हैं। यह दान जितना शुद्ध भाव अर्थात् स्वार्थ को छोड़कर किया जाय और जितना अधिक किया जाय, उतना ही दानी के लिए कल्याणकारी होता है।

सच्चे और झूठे धर्म्म साधन।

(जीवन पथ आश्विन सं० १९६०ं वि०)

१८ अगस्त को प्रातः काल सत्संग की सभा में भगवान् देवात्मा ने यह सत्य प्रगट किया, कि जहां साधारण जन केवल किसी गीत के गान, किसी स्तोत्र वा पुस्तक के पाठ अथवा किसी मन्त्र के जाप को ही धर्म्म का साधन समझते हैं, और ऐसा करके सन्तुष्ट रहते हैं, वहां तुम्हें इस प्रकार के साधन से तृप्ति नहीं पानी चाहिए। तुम जब कोई साधन करो, तो अपने भीतर विचार पूर्वक इस प्रकार प्रश्न करो कि :—

(१) मैं यह साधन किस के सम्बन्ध में करता हूं ?

(२) किस उद्देश्य के सिद्ध करने के लिए करता हूं? (३) जिस उद्देश्य के सिद्ध करने के लिए करता हूं, क्या उस से यह उद्देश्य सिद्ध हो सकता है? (४) इस साधन से यह उद्देश्य अब तक कहां तक सिद्ध हुआ है?

इन प्रश्नों का ठीक २ उत्तर पाने के बिना तृप्त नहीं होना चाहिए। फिर इस विषय में उन्हों ने मनुष्य जगत् के बड़े २ जनों और नाना सम्प्रदायों के नेताओं की तुलना में अपनी यह विशेषता प्रगट की, कि जहां वह धर्म्म के नाम से अनेक प्रकार की क्रियाएं करके कभी यह प्रश्न तक नहीं करते, कि वह जो साधन, भजन आदि करते हैं, वह किस उद्देश्य के पूरा करने के लिए करते हैं, और उस से वह उद्देश्य कहां तक पूरा होता है, वहां उस के विरुद्ध हम सदा हक़ीक़त को देखते आए हैं। और जहां किसी साधन से वास्तव में कोई लाभ होता नहीं देखते, वहां उस साधन को, वह चाहे किसी नाम से हो, छोड़ देते रहे हैं। दृष्टान्त के तौर पर बाबा नानक जी ने एक जगह लिखा है, "सुणिये दुख पाप का नाश" अर्थात् (ईश्वर का नाम) सुनने से ही दुख और पाप का नाश हो जाता है। अब हज़ारों जन इसका प्रति दिन पाठ करते हैं, परन्तु उसे प्रति दिन पाठ करके उन में से कोई कभी यह प्रश्न तक नहीं करता है, कि क्या ईश्वर का नाम जपने वा सुनने

से पापों का नाश होता है ? और जो लोग ईश्वर का नाम सुनते वा सुनाते हैं, वह पापी नहीं हैं ? कोई इस सत्य की ओर ध्यान नहीं देता, कि जब इसके पाठ वा श्रवण से हमारे पाप दूर नहीं होते, तो हम इसे क्यों बराबर पाठ करते रहें। हम ने इस महा तत्व को देखा है, और इसीलिए जिस साधन वा विश्वास से कोई लाभ नहीं देखते, उसे जारी रखना नहीं चाहते। तुम सब भी इस सत्य को उपलब्ध करो, और केवल गाने के लिए कोई भजन वा गीत न गाओ, केवल पाठ करने के लिए किसी पुस्तक वा स्तोत्र आदि का पाठ न करो, केवल जप के लिए कोई मन्त्र न जपो, किन्तु जब साधन के लिए बैठो, तो पहले विचार पूर्व्वक यह परीक्षा करो, कि मैं इस समय किस के सम्बन्ध में साधन करता हूं ? और किस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए करता हूं ? मेरा साधन ठीक होता है वा नहीं ? यदि ठीक होता है, तो उस से मेरा उद्देश्य सम्बन्धी फल पैदा होता है वा नहीं ? इस प्रकार यदि तुम सत्य भाव के साथ अपने साधन करो, तो थोड़े काल में ही अपने जीवन में बहुत बड़ा शुभ परिवर्तन देख सकते हो। और यदि साधन करते समय उपरोक्त सत्यों की ओर ध्यान न दो, तो चाहे कितने काल तक साधन करते रहो, तुम्हारा सारा परिश्रम निष्फल जाएगा।

पटियाले, अम्बाले और रायपुर में उपदेश।

(जीवन पथ, कार्तिक सं० १९६० वि०)

पटियाला में पूजनीय भगवान् २१ सितम्बर सन १९०३ ई० को दोपहर तक ठहरे रहे, और यद्यपि प्रधान कार्य्यालय के अतिशय मान्सिक परिश्रम के अनन्तर वह यहां पर केवल कुछ दिन चुपचाप विश्राम करने के लिए आए थे, परन्तु उनके पहुंचने की खबर पाकर यहां के कई उच्च पदस्थ जनों ने उन से मिलने की प्रवल इच्छा प्रकाश की। और कई और जनों के भिन्न यहां की चीफ़कोर्ट के एक जज्ज और यहां के कालेज के एक अध्यापक कई २ घण्टे तक उनका सत्संग करते रहे, और भगवान् देवात्मा वहुत परिश्रम के साथ उनके कई प्रकार के कल्पना मूलक कुसंस्कारों को दूर करने और उन तक विज्ञान मूलक सत्य धर्म्म की ज्योति के पहुंचाने और उनका प्रकृत हित साधन करने की चेष्टा करते रहे। जिन सत्यों को विशेष रूप से उनके सन्मुख लाने की चेष्टा की गई, वह यह हैं :—

(१) मनुष्य में मन, आत्मा से कोई पृथक वस्तु नहीं, किन्तु उसी का एक कोष है, इसलिए यह संस्कार बिलकुल मिथ्या और अत्यन्त हानिकारक है, कि पाप तो मन करता है, और आत्मा निर्लेप रहता है, और उसे किसी पाप का फल नहीं भोगना पड़ता। इसी

महा हानिकारक कुसंस्कार से गुमराह होकर और औरों को गुमराह करके हमारे देश के सैकड़ों, हज़ारों " साधु " भेड़ की पोशाक में भेड़िए बने हुए हैं, और महा नारकी जीवन व्यतीत करके सैकड़ों परिवारों का नाश करते हैं।

(२) जैसे एक ही स्त्री एक ही समय में व्यभिचारिणी और पतिव्रता नहीं हो सकती, वैसे ही जो लोग " व्यवहार " में पापाचार रखकर ऐसी कल्पना करते हैं, कि वह उसके साथ २ ही " परमार्थ " में ठीक रह सकते हैं, वह बहुत धोखे में हैं, और धर्म्म जीवन के प्रकृत रूप और लक्षणों के ज्ञान के विचार से पूर्ण अन्धकार में हैं।

(३) प्रकृत धर्म्म का पहला लक्षण यह है, कि वह पाप जीवन की जड़ काटता है, और मनुष्य का नीच जीवन से उद्धार करता है। जो मत वा साधन आदि मनुष्य को पाप जीवन से निकालने में कुछ सहाय नहीं करता, उसका सत्य धर्म्म से कुछ सम्बन्ध नहीं है।

(४) यदि कोई मनुष्य इधर उधर के मत मतान्तरों के विषय में तो बड़ी गप्पें हांकता रहे और ऐसी बात चीत में बड़ी तृप्ति लाभ करे, परन्तु अपने जीवन की विनाशकारी गति और उस से उद्धार लाभ करने के विषय में कुछ चिन्ता और विचार करने के योग्य न बने, तो

ऐसा जन बहुत बड़े धोखे में और अपने प्रकृत हित और अहित के ज्ञान की ओर से पूर्ण अन्धकार में है, और जितना शीघ्र वह ऐसी अवस्था से उद्धार लाभ करे, उतना ही उसके लिए अच्छा है।

(५) जैसे आग में हाथ डालने से वह अवश्य जल जाता है, और कोई कल्पित देवी देवता अथवा ईश्वर वा "रब्ब" उसके फल से किसी को बचा नहीं सकता, वैसे ही जो जन अपने जीवन के प्रकृत हित की ओर से अज्ञानी रहकर विनाश पथ पर जा रहे हैं, उन्हें उन का कोई कल्पित विश्वास अथवा कोई कल्पित देवी देवता वा उपास्य देव विनाश के महा दुखदाई परिणाम से नहीं बचा सकता, और विनाशकारी गति से उनका उद्धार नहीं कर सकता।

(६) जैसे हम किसी अंग्रेज़ी जानने वाले की इस प्रकार की परीक्षा कर लेते हैं, कि उसे कोई अंग्रेज़ी पुस्तक देकर उस से उसका अर्थ पूछते हैं, कोई विद्यार्थी उसके पास भेजकर देखते हैं, कि वह उसे अंग्रेज़ी पढ़ा सकता है वा नहीं, इत्यादि ; ठीक इसी प्रकार किसी कल्पित देवी वा देवता वा ईश्वर पर विश्वास करने से पहले यह परीक्षा करके देखना चाहिए, कि आया वह सचमुच और वास्तव में कोई सद्गुण विशिष्ट अस्तित्व है, और हमारे किसी काम आ सकता है वा नहीं।

यथा किसी कल्पित पुरुष को सर्वज्ञ मानने से पहले हमें यह देखना चाहिए, कि वह हमें एक २ मनुष्य के समाने भी किसी विज्ञान, इतिहास, भूगोल, गणित वा भाषा आदि का ज्ञान दे सकता है वा नहीं, अथवा उसे पतित पावन मानने से पहले यह देखना चाहिए, कि जो लोग उसकी पूजा करते वा उसका नाम जपते हैं, वह पतित जीवन से उद्धार लाभ करते हैं; इत्यादि। और यदि ऐसी परीक्षा वा जिज्ञासा के बिना अन्धाधुन्द किसी कल्पना मूलक विश्वास के पीछे जाकर अपना जीवन व्यतीत कर दिया जावे और जिस स्रोत से सचमुच सच्चा हित प्राप्त हो सकता है, उसके साथ जुड़ने की ओर से उदासीनता रक्खी जावे, तो जैसे अन्न के स्थान में रेत के फांकने से केवल हानि ही हानि है, वैसे ही ऐसे कल्पना मूलक मतों के जाल में फंसे हुए मनुष्यों के लिए बड़ा भयानक हानि और दुख उठाना ज़रूरी है।

(७) सच्चे धर्म्म जीवन वा धर्म्म ज्ञान की प्राप्ति सच्चे धर्म्म जीवन और धर्म्म ज्ञान के रखने वाले धर्म्म दाता सद्गुरु से होती और हो सकती है। और कहीं से नहीं होती और नहीं हो सकती। और उसके लाभ करने के तीन अटल नियम हैं, कि जो नियम जहां पूरे होते हैं, वहीं उनका हितकर फल प्रकाशित हो

जाता है, और जहां उन में से कोई नियम भी भंग हो जाता है, वहां ही उनका फल प्राप्त नहीं होता। वह तीन अटल नियम यह हैं :—

(१) सत्य धर्म्म-पात्र सद्गुरु।

(२) सत्य धर्म्माभिलाषी।

(३) सद्गुरु के प्रति आवश्यक श्रद्धा और अनुराग।

इन अमूल्य तत्वों को प्रकाशित करने के भिन्न भगवान् देवात्मा अपनी शक्ति के अद्भुत फलों और देव समाज के अद्वितीय कार्य्य को वर्णन करके उन लोगों के भीतर ऐसे कार्य्य के प्रति श्रद्धा और सहाय भाव को उत्पन्न करने की चेष्टा करते रहे। और वह लोग भी कई वार उपरोक्त उपदेशों के लिए कृतज्ञता और ऐसे कार्य्य के लिए प्रशंसा और सहानुभूति का प्रकाश करते रहे।

इसके वाद अम्बाला में ३० सितम्बर को प्रातः काल आठ वजे के करीब सब सेवक और श्रद्धालु पूजनीय भगवान् के श्री चरणों में उपस्थित हुए, और जीवन ज्योति के सूर्य्य भगवान् देवात्मा ने अपनी देव ज्योति के प्रकाश से उन सब को धन्य २ और कृतार्थ किया। आप ने इस समय जो उपदेश दिया, उसका सार यह है :—

| मनुष्य जीवन का सब से बड़ा अधिकार यह है, कि

उसे धर्म और अधर्म के विषय में सच्चा विवेक प्राप्त हो। परन्तु यह अधिकार जैसे बहुत बड़ा अधिकार है, वैसे ही बहुत दुर्लभ भी है। लाखों और करोड़ों जन जो बड़े २ विद्वान कहलाते हैं, जो इस वा उस धर्म सम्प्रदाय के अनुयाई, उपदेशक वा प्रचारक कहलाते हैं, अथवा जो बड़े २ राजा, महाराजा, नराधीश, धनाढ्य और उच्च पदस्थ कहलाते हैं, वह इस अमूल्य विवेक से पूर्ण रूप से वंचित हैं। यद्यपि विद्योपार्जन अच्छी वस्तु है और हमारे यहां भी विद्यादान के लिए कितने ही स्कूल खुले हुए हैं, परन्तु इस में क्या सन्देह है, कि विद्या लाभ से केवल मानसिक शक्तियों की उन्नति होती है, और यह मानसिक शक्तियां केवल मनुष्य की नीच वा उच्च कामनाओं के पूरा होने में सहाय होती हैं, अर्थात् जो मनुष्य केवल नीच प्रवृत्तियों, वासनाओं और उत्तेजनाओं का दास है, उसे यह मानसिक शक्तियां इन नीच कोषों की तृप्ति में खूब बढ़ चढ़कर सहायता देती हैं, और उसे पहले की अपेक्षा अधिक नीच, गंदा और अधोगति प्राप्त बना देती हैं। परन्तु यदि उसके भीतर सात्विक बोध और अनुराग उत्पन्न हो गए हों, तो उसे वह उसकी उच्च कामनाओं और उच्च आकांक्षाओं के पूर्ण होने में मदद देती हैं। तब धर्म बोधों से विहीन और नीच कोषों के अधीन रहकर यदि कोई विद्या लाभ

करे और बहुत विद्या लाभ करे, तो भी वह उसके अपने आत्मा की रक्षा के लिए किसी काम की नहीं। और उसे पाकर यदि कोई अभिमान से भर जाय और इस अभिमान जात अन्धकार से भरकर धर्म्म और अधर्म्म सम्बन्धी विवेक की प्राप्ति से उदासीनता प्रगट करे और जहां से उसे यह कल्याणकारी विवेक प्राप्त हो सकता है, वहां से अपने आप को उसके प्राप्त करने का यत्न करने के स्थान में अपने मिथ्या अभिमान के वश होकर दूर २ रहे, तो उस से बढ़कर महा मूढ़ और अपनी हानि आप करने वाला और कौन हो सकता है? इसी प्रकार लाखों और करोड़ों जन धर्म्म के नाम से ईश्वर वादी आदि कहलाकर नाना कल्पित मतों और विश्वासों के अन्धकार में पड़कर विनष्ट हो रहे हैं, यदि एक मट्टी वा पत्थर वा धातु की बनी हुई मूर्तियों के आगे झुकने और उनकी "पूजा" करने में अपनी मोक्ष समझता है, तो दूसरा केवल वायु में कुछ शब्द उच्चारण करके अपने कल्याण की आशा करता है। यदि एक अच्छे कर्म्म करके किसी धनाढ्य के घर में जन्म लेकर धन, दारा, वा अन्य इन्द्रिय जनक सुखों के भोगने की आशा में मुग्ध है, तो दूसरा किसी कल्पित बिहिश्त में ऐसे ही सुखों यथा हूरों और मदिरा आदि की प्राप्ति की आशा में उन्मत्त है, एक यदि दिन में कई बार "निमाज़"

की " आयतें " उच्चारण कर देने में अपना परम धर्म्म समझता है, तो दूसरा " गायत्री " के मन्त्र को (कि जो एक पत्ती को भी सिखाया जा सकता है) उच्चारण करने के योग्य बन जाने से अपनी और औरों की " आध्यात्मिक " उन्नति अनुभव करता है। इस से भी बढ़कर कितने ही लोग " ईश्वर की दया " और उसके " मंगल हाथ " की कल्पना करते रहने में ही अपना परम कल्याण अनुभव करते हैं, और यह देखकर भी, कि उनके उस कल्पित " ईश्वर के राज्य " में ही प्रति दिन लाखों और करोड़ों निर्दोश जीव बध होते हैं, सहस्र२ मनुष्य भूखों मरते हैं, एक २ भूचाल, महामारी और तूफ़ान से अगणित निर्दोप बच्चे, स्त्रियां और बूढ़े, विद्वान, धर्म्म वान और पापी मनुष्य, पशु, पत्ती और वृत्त विना किसी अन्तर और भेद के विनष्ट और ध्वंस हो जाते हैं, इत्यादि। फिर भी अपने कल्पित "ईश्वर" की " दयालुता " और उसके " मंगल स्वभाव " के झूठे विश्वास को परित्याग नहीं कर सकते।

एक और सम्प्रदाय के लोग यह कल्पना करते हैं, कि जो लोग यहां मरते हैं, उन में से जिस के कर्म्म अच्छे होते हैं, उन्हें उनका " न्यायकारी ईश्वर " किसी राजा वा अमीर के गृह में उत्पन्न करता है, और जिन के बुरे कर्म्म होते हैं, उन्हें सांप बिच्छू आदि जीवों के रूप में,

जन्म देता है; और यहां पर किसी को जो दुख सुख प्राप्त होता है, वह सब उस के पिछले कर्म्मों का फल होता है। यह भी बहुत हानिकारक और मिथ्या शिक्षा है।

इस शिक्षा को मानकर तो किसी रोगी का रोग दूर करना, किसी की सहायता करना, चोर और लुटेरे आदि को दण्ड देना, "ईश्वर" की आज्ञा के विरुद्ध जाना है, और उसके "न्याय" को तोड़ना है। क्योंकि यदि कोई रोगी होता है, तो अपने पिछले कर्म्मों और ईश्वर की आज्ञा से, और यदि कोई भूखा मरता है, वा किसी का धन लूटता है, तो वह भी उसकी आज्ञा से, और अपने पिछले कर्म्मों के बदले में। फिर हस्पताल और चिकित्सालय किस काम के? और अदालतें किस के लिए? क्या ऐसी मिथ्या शिक्षा सारी सभ्यता और राज्य शासन और सच्चे न्याय की जड़ नहीं काटती? और फिर क्या ईश्वर में ऐसी कोई शक्ति है, कि जिस से वह अपनी आज्ञा को पालन करा सके? क्या यह सच नहीं, कि प्रति दिन लोग अपने जीवन में उस "सर्व्व शक्तिमान" की आज्ञाओं को (यदि कोई उस की आज्ञाएं समझी जावें) खुल्लम खुल्ला तोड़ते हैं, और उनका "ईश्वर" केवल तमाशा देखता रह जाता है, फिर जिस "ईश्वर" को एक २ पापी अपनी वर्षों की परीक्षा से इतना अयोग्य और रद्दी देख चुका हो,

और उसके सामने प्रति दिन उसकी आज्ञाओं को भंग करता रहा हो, यदि वही ईश्वर उसे सांप और विच्छू की योनि में जाने की आज्ञा दे और वह उस में जाने से इनकार करदे, तो यह ईश्वर उसका क्या कर लेगा ? और अपनी किस पोलीस के द्वारा अपनी आज्ञा पालन कराएगा ? इसके भिन्न अपने पिछले बुरे कर्म्मों के बदले यदि कोई जन सांप वा विच्छू बन भी जाए, तो इस से कौनसा शुभ लक्ष्य सिद्ध हुआ ? क्या अब वह सांप और विच्छू बनकर बुरे कर्म्मों के स्थान में अच्छे कर्म्म करेगा ? क्या यह सच नहीं, कि उसके मुंह में "न्यायकारी ईश्वर" विष की जो थैली रख देगा, उसके द्वारा वह औरों के प्राण हरण करेगा ? इस महा दुराचार के लिए कौन दायी है ? क्या इस जगत् में सांप और विच्छुओं की संख्या बढ़ाते जाना किसी अच्छे "देवता" का काम हो सकता है ? इसके सिवाय जब कोई जीव किसी योनि में इसलिए भेजा जाता है, कि वह उस में जन्म लेकर अपने पिछले कर्म्मों का फल भोगे, तो फिर जिन पक्षियों के अण्डे, बच्चा बनने से पहले ही चट किए जाते हैं, और मनुष्यों के जो बच्चे पैदा होते ही मर जाते हैं, उन्हें उस योनि में भेजने का क्या फल हुआ ? और उनके पिछले कर्म्मों का फल कहां गया ? यह सब झूठी कल्पनाएं हैं।

और शोक कि चारों ओर ऐसी कल्पनाओं का महा जाल फैला हुआ है ! इन कल्पनाओं के जाल में फंसकर और प्रकृत धर्म्म की तत्व ज्योति से पूर्ण अन्धकार में रहकर लाखों और करोड़ों आत्मा विनष्ट हो रहे हैं, यह संसार पाप और नरक का घर बना हुआ है, कल्पित देवियां हैं, देवते हैं, ईश्वर है, नमाज़ें और सन्ध्याएं हैं, मन्दिर हैं, तीर्थ हैं, "ईश्वर रचित पुस्तकें" हैं, परन्तु फिर भी नीच गति का भयानक चक्र जारी है, और घर २ घोर नारकी लीला छाई हुई है । कौन है, जो ऐसी अधोगति से आत्माओं का उद्धार करे ? कौन है, जो ऐसी कल्पनाओं के जाल से निकालकर उन्हें प्रकृत धर्म्म ज्योति प्रदान करे ? जब तक धर्म्म और अधर्म्म का सच्चा विवेक जाग्रत न हो, तब तक यह सारा अन्धकार क्योंकर दूर हो सकता है, और क्योंकर किसी के भीतर अधर्म्म वा नीच जीवन की विनाशकारी गतियों से उद्धार लाभ करने और धर्म्म वा उच्च जीवन की प्राप्ति के लिए संग्राम उत्पन्न हो सकता है ?

इसलिए बहुत बड़े भाग्य उन लोगों के हैं, कि जिन्हें प्रकृत धर्म्म दाता से जुड़कर प्रकृत धर्म्म ज्ञान लाभ करने और धर्म्म और अधर्म्म में सच्चा अन्तर देखने का अवसर प्राप्त हुआ है; जिन्हें यह सत्य ज्ञान मिला है, कि धर्म्म आत्मा की उच्च गति दायक और नीच गति

विनाशक शक्तियों का नाम है। वह आत्मा की उस अवस्था का नाम है, कि जिस में उसके भीतर जो कुछ नीच गति दायक और विनाशकारी है, उस से उद्धार लाभ करने के लिए संग्राम होता है. और जो कुछ उस के आत्मा के लिए जीवन और विकास दायक है, उसके लिए आकर्षण और उसकी प्राप्ति के लिए संग्राम उत्पन्न होता है। इसी सच्चे धर्म्म विवेक के, प्राप्त होने पर कोई आत्मा विनाश से मोक्ष और उच्च जीवन लाभ कर सकता है, और अपने लिए और औरों के लिए कल्याणकारी हो सकता है; इसके बिना कदापि नहीं। मनुष्य मात्र में यही सत्य विवेक उत्पन्न करना और अधिकारी जनों को प्रकृत धर्म्म जीवन दान देकर उनके आत्माओं का उत्तरोत्तर विकास साधन करना देव धर्म्म प्रवर्तक के जीवन का मुख्य उद्देश्य है। इसी धर्म्म जीवन के दान और प्रचार के लिए वह दिन रात संग्राम करते और अपनी समस्त शक्तियों को व्यय करते हैं, और ऐसे प्रकृत धर्म्म जीवन के फल ही उनके जीवन से पैदा हो रहे हैं। जिन के आंखें हों, वह उनके स्वर्गीय कार्य्य की महिमा को देखें, और जिन का हृदय जीवित हो, वह उसका साथ देकर अपना और औरों का कल्याण साधन करें।

भगवान् देवात्मा ने ३ और ४ अक्तूबर १९०३ ई० को प्रातः काल के समय रायपुर के सब सेवकों और श्रद्धालुओं को अपने उपदेशों से कृतार्थ किया। इन उपदेशों में उन्हों ने प्रगट किया, कि

(क) बहुत से प्रचलित देवी और देवते जिस में (ईश्वर भी शामिल है) मनुष्यों की कल्पना से उत्पन्न हुए हैं। वह सचमुच कहीं भी नहीं और कुछ भी नहीं। उनके सम्बन्ध में सब विश्वास मिथ्या हैं।

(ख) इन कल्पित देवी देवताओं से उनके पुजारी प्रायः जिन बातों की आकांक्षा करते हैं, वह सांसारिक चीज़ें होती हैं; यथा धन, पद, रोग से निवृत्ति, सन्तान, नौकरी, मुक़दमे में जीत आदि।

(ग) यह कल्पित देवी देवते उनकी यह आवश्यकताएं भी पूरी नहीं कर सकते, क्योंकि वह आप कुछ नहीं। वह केवल मनुष्य की कल्पना हैं। जब उनके द्वारा कोई सांसारिक कामना भी सिद्ध नहीं हो सकती, तो फिर आत्मा सम्बन्धी प्रकृत ज्ञान और उच्च जीवन आदि क्योंकर मिल सकता है? कभी नहीं।

(घ) नाना कुसंस्कारों और कल्पनाओं के पीछे पड़कर सहस्र २ जन नाना प्रकार की हानि लाभ करते हैं, और प्रकृत हित से वंचित रहकर विनष्ट हो जाते हैं।

(ङ) नेचर के अपने नियम हैं जो अटल हैं। नियम से परे और नियम से बाहर कोई वस्तु वा घटना नहीं। जिस चीज़ की प्राप्ति चाहते हो, उसकी प्राप्ति के जो नियम हैं, उनका ज्ञान लाभ करो। फिर उन्हें साधन के द्वारा पूर्ण करने की योग्यता लाभ करो, फिर वह वस्तु प्राप्त होगी, नहीं तो नहीं। कोई कल्पित देवी देवता वा ईश्वर तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।

(च) साधारण जनों में केवल नीच प्रवृत्तियों, वासनाओं और उत्तेजनाओं का जीवन है, और इसीलिए वह केवल उन्हीं के विषयों को चाहते और उन्हीं के लिए चेष्टा करते हैं। प्रकृत धर्म्म जीवन की अभिलाषा मनुष्यों के भीतर वर्तमान नहीं। कोई कल्पित मत इस धर्म्माभिलाषा को उत्पन्न नहीं कर सकता।

(छ) एक ओर धर्म्म के विषय में नाना कल्पनाओं के विश्वासी होकर और दूसरी ओर नीच वासनाओं और उत्तेजनाओं के दासत्व में रहकर लोग बेसुद्धि की अवस्था में पड़ते और दिनों दिन विनष्ट होते रहते हैं। सत्य धर्म्म के आविर्भाव की ज्योति और शक्ति पाने के बिना जीवन का पथ दिखाई नहीं देता और परम हितकर सत्य धर्म्म की प्राप्ति नहीं होती।

(ज) यह सत्य वा प्रकृत धर्म्म आत्मा में नीच गति विनाशक बोधों और उच्च गति दायक अनुरागों के

उत्पन्न होने से आता है, कि जिन में से एक २ बोध और अनुराग एक २ आत्मा में बहुत कठिनता से और कितने ही परिश्रम के अनन्तर उत्पन्न होता है। ऐसे एक २ बोध वा अनुराग के उत्पन्न हो जाने पर फिर उस आत्मा को चाहे कोई देखे, चाहे न देखे, चाहे उसकी नेकनामी हो, और चाहे बदनामी, परन्तु वह अपने बोध वा अनुराग के विरुद्ध जाना नहीं चाहता और जान बूझकर कोई ऐसी क्रिया नहीं करता, कि जिस से उसे और औरों को अनुचित हानि पहुंचे और बिना किसी की वाहवाह वा प्रशंसा के ऐसा यत्न करना चाहता है, कि जिस से उसका अपना आत्म विकास और उसके नाना सम्बन्धियों का हित साधन होता हो। ऐसा जन केवल यही नहीं, कि किसी को हानि नहीं पहुंचाना चाहता, किन्तु धीरे २ वह इस अवस्था में पहुंचता है, कि जिस में वह अपने जीवन को अपने विविध सम्बन्धियों के लिए कल्याणकारी और सेवा-कारी बनाना चाहता है, और अपना और औरों का हित साधन करने में ही आराम और सुख पाता है। ऐसा आत्मा धर्म्म पथ में बढ़कर साफ़ अनुभव करता है, कि सत्य धर्म्म और सत्य धर्म्म दाता में ही उसका सार, सच्चा, मधुर, शान्ति प्रद, रस मय, आनन्द जनक और अमृत मय जीवन है। उच्च जीवन प्राप्त आत्मा जहां

वास करते हैं, वहीं सच्चा स्वर्ग है, कि जिस को देव धर्म्म प्रव्वर्तक इसी संसार के भीतर लाते हैं। इसी पृथिवी में नीच जीवन रखकर जो लोग किसी कल्पना मूलक विश्वास के अनुसार वैकुंठ में जाने की आशा रखते हैं, वह यह नहीं समझते, कि नीच आत्मा जहां जाएगा वहीं नरक उत्पन्न करेगा। तब इस सत्य और पूर्ण धर्म्म के आविर्भाव की महिमा को उपलब्ध करो, कि जो इस दुनिया में यह अलौकिक लीला उत्पन्न कर रहा है, और इसी दुनिया में सच्चा स्वर्ग स्थापन कर रहा है। धन्य भाग्य हैं उन लोगों के, कि जो इस दुनिया में प्रकृत धर्म्म जीवन लाभ करने की कामना को लेकर उसके साथ जुड़ते हैं, और नारकीय जीवन त्याग करके आप स्वर्गीय जीवन पाते हैं, और अपने जीवन से इस सच्चे स्वर्ग को इस संसार में लाने का यत्न करते हैं।

पुरुषार्थ और स्वार्थ-त्याग।

[जीवन पथ, माघ सं० १९६० वि०]

जब किसी काम के करने के लिए पुरुषार्थी मनुष्य खड़े हो जाते हैं, और उसे पूरा करने के लिए लगातार बल लगाते हैं, तो उन्हें अवश्य कृतकार्य्यता (कामयाबी) प्राप्त होती है। कामयाबी कोई खुदरौ पौदा नहीं है, जो

अपने आप उग सकता हो, किन्तु वह अपनी उत्पत्ति के लिए पुरुषार्थ वा परिश्रम का जल चाहता है। जिस तरफ़ देखो उसके दृष्टान्त मिल सकते हैं। कोई जन धन नहीं कमा सकता, यदि वह उसके लिए पुरुषार्थ न करे, और उसके लिए तरह २ के कष्ट उठाकर अपना सुख आदि त्याग न करे। कोई जन विद्या लाभ नहीं कर सकता, यदि वह उसके लिए परिश्रम न करे, और नाना प्रकार के कष्ट स्वीकार न करे। इसी प्रकार कोई जन औरों में विद्या नहीं फैला सकता, जब तक वह इसके लिए पुरुषार्थ न करे, और उसके लिए यथा आवश्यक अपना धन, समय, सुख आदि त्याग करने के लिए प्रस्तुत न हो। जहां कहीं किसी काम में कामयाबी हुई है, वहां पुरुषार्थ से ही हुई है। आर्य्य समाज के लोगों ने अपने कालेज के सम्बन्ध में इतनी कामयाबी क्यों हासिल की है? इसलिए कि वह उसकी उन्नति के लिए धन एकत्र करने के काम में बहुत वर्षों से लगातार पुरुषार्थ करते रहे हैं। इस कालेज के लिए जहां वह औरों से हमेशा धन मांगते रहते हैं, वहां आप भी दिल खोलकर चन्दा देते हैं। यहां तक कि कितने ही जन सब प्रकार का लालच छोड़कर हर साल इतना धन देते हैं, कि जिसे देखकर हैरानी होती है। पिछले दिनों उनके सालाना जलसे पर एक वकील ने अपनी

वकालत की सारे वर्ष की कमाई दान करदी। उनका बयान है, कि वकालत की कमाई में से मैंने साल भर में एक पैसा भी अपने वा अपने परिवार के लिए खर्च नहीं किया, और जो कुछ उस कमाई के सम्बन्ध में मुन्शी आदि की तनख़ाह का खर्च हुआ है, उसे निकाल कर जो आमदनी रह गई है, वह सब की सब दान करदी है। उन्हों ने दो साल से यह व्रत लिया हुआ है, और कहते हैं कि यदि कोई अकामात् विपद मुझ पर न आपड़ती तो मैं आइन्दा भी हर साल इसी तरह दान करना चाहता हूं। इसी प्रकार इसी साल गवर्नमेन्ट कालेज के विद्यार्थियों ने ७७५) रुपए आपस में इकट्ठे करके दिए, और एक जन ने कि जो पहले इसी कालेज के विद्यार्थी रह चुके हैं, यह प्रतिज्ञा की है, कि वह उसके लिए प्रायः ३०००) रुपया इकट्ठा करके पांच कमरे बनवा देंगे। इसके भिन्न उनके इसी जलसे में प्रायः ४००००) रुपया कालेज के मकान के लिए इकट्ठा हो गय। और चार पांच एम० ए० और बी० ए० जनों के भिन्न कि जो इस कालेज में थोड़ा सा वेतन लेकर काम करते हैं, एक और नए एम० ए० ने थोड़ा वेतन लेकर कालेज की सेवा करने की प्रतिज्ञा की है।

तब यदि विद्या के लिए ऐसा उत्साह देखा जाता है, और ऐसे पुरुषार्थी और आत्म-त्यागी जन पाए जाते

हैं, कि जो अपना तन, मन और धन अर्पण करके दिनों दिन अपने काम को उन्नति देते हैं, और यद्यपि पूर्वोक्त कालेज का फण्ड ४ लाख* से ऊपर पहुंच चुका है, तो भी उसके बढ़ाने के लिए वह लोग रात दिन नाना प्रकार का यत्न और परिश्रम किए जाते हैं, यहां तक कि उस के लिए एक २ जन अपनी सारी कमाई तक अर्पण कर देता है; तो क्या तुम लोग, जिन्हें पूर्णाङ्ग धर्म्मावतार भगवान् देवात्मा की शरण प्राप्त होने से सत्य धर्म्म की अद्वितीय ज्योति मिली है, और जो सत्य धर्म्म और विद्या दोनों को फैलाना चाहते हैं, बिना पुरुषार्थ और आत्म त्याग के इस महान उच्च लक्ष्य को पूरा कर सकते हो ?कदापि नहीं। यह निश्चय है, कि जब तक हमारी समाज़ में कितने ही ऐसे अनुरागी और उत्साही जन उत्पन्न न होंगे, कि जो समाज की सब प्रकार की उन्नति के लिए अपना तन, मन और धन अर्पण करने में ही तृप्ति लाभ करें, और वर्षों तक, हां आयु भर ऐसे किसी व्रत का पालन कर सकेंगे, तब तक क्योंकर हमारे देश और हमारी जाति का प्रकृत हित साधन हो सकता है ? यदि देव समाज के सेवक गण दिनों दिन अधिक से अधिक उत्साही, पुरुषार्थी और स्वार्थ त्यागी बनें, तो क्या धन के विचार से और क्या प्रचार के विचार से

---

* अब तो कई लाख और भी बढ़ गया है।

समाज के लिए बहुत कल्याणकारी प्रमाणित हो सकते हैं, और उसके महोच्च काम को अधिक से अधिक कामयाबी दे सकते हैं, और इस शुभ पुरुषार्थ और स्वार्थ त्याग के द्वारा अपना जीवन भी सफल कर सकते हैं।

धर्म्म उपदेश, उसका लक्ष्य और उसकी विधि।

[जीवनपथ, ज्येष्ठ सं० १९६१ वि०]

(मरी पर्व्वत पर भगवान् देवात्मा के उपदेश का सार)

यदि कोई स्कूल मास्टर (अध्यापक) किसी गांव में जाकर गलियों के कुछ लड़कों को बुलाकर इकट्ठा करले और यह जानने के बिना, कि उन्हों ने कुछ लिखना पढ़ना सीखा है, वा नहीं, उन्हे रेखा गणित और बीज गणित पढ़ाना आरम्भ करे, तो क्या उसका ऐसा परिश्रम चाहे वह कैसे ही हित भाव और उत्साह से किया जाय, कभी सफल हो सकता है? कदापि नहीं। भला जो लड़के अभी गिनती वा पहाड़े वा क, ख, ग, तक नहीं जानते, वह रेखा गणित वा बीज गणित क्या समझ सकते हैं? और उस से क्या लाभ उठा सकते हैं? कुछ भी नहीं; क्यों नहीं? इसलिए कि उनकी वह शिक्षा उनकी अवस्था के अनुकूल नहीं। अनुकूल सामान के मिलने पर ही किसी का विकास होता है, अन्यथा नहीं। जो जन विकास की सीढ़ी के जिस डण्डे

पर खड़ा है, उससे अगले डण्डे पर उसे चढ़ाना सम्भव है, परन्तु पांच वा दश डण्डे छोड़कर उसे ऊपर नहीं चढ़ा सकते। इसीलिए जैसे मान्सिक शक्तियों के विकास का कार्य्य क्रम २ मे होता है, वैसे ही आध्यात्मिक विकास भी क्रम २ से होता है।

उपरोक्त नियम को सन्मुख रखकर हमारे लिए आवश्यक है, कि हम धर्म्म उपदेश वा धर्म्म शिक्षा देने से पहले इस बात को भली भांत जानने की चेष्टा करें, कि शिक्षार्थी की अवस्था क्या है ? अथवा दूसरे शब्दों में वह विकास की सीढ़ी के किस डण्डे पर खड़ा है, जहां से उसे आगे ले जाना है, और उसे अब अगले डण्डे पर क्योंकर ले जा सकते हैं ? यह अति आवश्यक प्रश्न हैं, कि जिन के ठीक २ निर्णय हो जाने पर ही धर्म्म शिक्षा दी जा सकती है। और ऐसी उचित शिक्षा के देने पर ही वह हितकारी और फल दादक प्रमाणित हो सकती है; नहीं तो केवल यही नहीं, कि ऐसी शिक्षा हितकारी नहीं होती, वरंच हानिकारक होती है। इसीलिए हमारी समाज में सेवकों को श्रेणीवार शिक्षा दी जाती है, जो अन्य मतावलम्बियों के लिए आश्चर्य्य की बात है।

देव समाज के सेवकों के भिन्न अन्य साधारण जन (जिन में हमें काम करना पड़ता है) जिन मोटी २

श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं, वह यह हैं :—

प्रथम वह जन जो नीचता वा पापावस्था के इतने दास और अनुरागी हो चुके हैं, कि उस से आप निकलने की अभिलाषा करना तो दूर रहा, यदि कोई और उनका मित्र वा सम्बन्धी ऐसी नारकी अवस्था से निकल आवे, तो वह उसे महा दुष्ट और घृणा की वस्तु अनुभव करते हैं। ऐसे दृष्टान्त कुछ कम नहीं हैं, कि एक जन जो पहले मद पीता था, और कई नीच कर्म्म करता था, उस ने जब यह बातें छोड़ दीं, तो उसके पुराने साथियों और मित्रों को यह बातें केवल यही नहीं, कि भली नहीं लगीं, वरंच उसकी यह अवस्था बहुत बुरी प्रतीत हुई, और वह उस को अपने विचार में बहुत रद्दी और बुरा आदमी समझने लगे। क्यों ? इसलिए कि वह उनकी चाल से बेचाल हो गया और जीवन की जिस नीच गति को वह सुख दायक पाकर उसके पीछे जाते थे, उस ने उसे छोड़ दिया। पाप के महा भयानक फलों में से एक फल यह भी है, कि उसके अधिकार में मनुष्य ऐसी भयानक दशा को पहुंच जाता है, कि भले को *बुरा और बुरे को भला, हितकारी को वैरी और वैरी को* हितकारी जानता और अनुभव करता है। उसकी विकृत दृष्टि उसे सब कुछ उलटा दिखाती हैं। यही कारण है, कि ऐसी विकृत दृष्टि रखने वाले सहस्रों और लाखों

पापी जनों ने एक २ हितकारी महापुरुष को जो उनकी चाल पर नहीं चला, बहुत बुरा अनुभव किया है, और उसे अपना वैरी जानकर उसके प्रति घृणा फैलाने और उसे नाना प्रकार से सताने और दुख पहुंचाने का प्रयत्न किया है। ऐसे जनों के बचने की साधारणतः कोई आशा नहीं, क्योंकि वह अपनी महा नीच और विकृत अवस्था के कारण सब कुछ उलटा देखते और अनुभव करते हैं। जो मूढ़ विद्या और विद्वानों के प्रति द्वेष भाव रखता हो, उन्हें अपने से बुरा और घृणा की वस्तु जानता हो, उसके लिए कभी विद्वान होना जैसे प्रायः असम्भव है; वैसे ही जो नीचता का अनुरागी उच्च जीवन आकांक्षी अथवा किसी एक वा दूसरे पाप त्यागी को बुरा और घृणा की दृष्टि से देखता हो, वह चाहे किसी समाज वा सम्प्रदाय का आदमी कहलाता हो, उसके भले की प्रायः कोई आशा नहीं हो सकती। इसीलिए वह लोग जिन्हें अपने से उच्च आत्मा बड़ा और भला नहीं दिखाई देता, और भला आत्मा भला लगने के स्थान में बुरा दिखाई देता है, अति अधम अवस्था रखते हैं, और उनके बचने की प्रायः कोई आशा नहीं। अतएव ऐसे जनों के सन्मुख धर्म्म के उच्च तत्वों का वर्णन करना वैसा ही व्यर्थ है, जैसा खोत के सामने गणित शास्त्र का पाठ करना। हां ऐसों के लिए कई

अवस्थाओं में कोई धर्म्म उपदेश हितकर होने के स्थान में उलटा हानिकारक हो जाता है। क्योंकि ऐसे नीच और दुष्ट जन जो धर्म्म दाता और उसके कार्य्य को हानि पहुंचाकर ही तृप्त होते हों, धर्म्म उपदेश पाने के प्रायः अधिकारी नहीं होते।

दूसरे वह लोग हैं, कि जो नीचता वा पापादि के दास तो हैं, परन्तु वह अपने आप को अच्छा नहीं समझते, वरंच पापी और नीच ही अनुभव करते हैं। और इसीलिए यदि उनका कोई मित्र वा अन्य सम्बन्धी किसी पाप वा बुराई के विनाशकारी दासत्व से निकलने का शुभ अवसर पा जावे, तो वह उसे घृणा नहीं करते, किन्तु अच्छा समझते हैं; और कहते हैं कि भाई तुम अच्छे हो, जो इन पापों से मुक्त हो गए, जिन से हम नहीं निकल सकते। तव ऐसे जन जिन को भलाई कुछ भली प्रतीत होती है। और अपने से भले और उच्च आत्मा भले दिखाई देते हैं, वह जन हैं, जिन के (अनुकूल सामानों के मिलने पर) बचने की अवश्य कुछ आशा हो सकती है। और इन लोगों में से कितने ही जन श्रद्धालु भी बन सकते हैं।

तीसरे वह जन हैं, जो केवल इतना ही जानकर और अनुभव करके कि हम नीच हैं, और यह हम से उच्च हैं सन्तुष्ट नहीं होते, वरंच वह अपनी इस दुर

अवस्था से निकलना भी चाहते हैं, और इसलिए उच्च आत्माओं के चरणों में आने और उनकी संगत करने की अभिलाषा भी रखते हैं, और वह केवल हमारे काम की मुंह से प्रशंसा करके ही तृप्त नहीं होते, किन्तु आप भी भला बनना चाहते हैं, अर्थात् धर्म्म लाभ की कुछ इच्छा रखते हैं। इस इच्छा की अधिकता और न्यूनता के अनुसार कोई जन हमारी अधिक निकटता और संगत ढूंढते हैं और कोई कम। कोई रोज़ संगत में आते हैं, कोई सप्ताह में एक बार और कोई कभी २। इसी आकर्षण के अनुसार ही वह अधिक वा न्यून लाभ भी उठाते हैं। यही जन सच्चे अर्थों में श्रद्धालु होते हैं, और उनके लिए उद्धार वा कल्याण की बहुत कुछ आशा हो सकती है।

चौथे वह जन हैं, कि जो केवल सत्संग में ही नहीं आते, किन्तु हमारी ज्योति और शक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार ग्रहण करके आन्तरिक परिवर्तन लाभ करते हैं, और अपने एक वा दूसरे अपराध वा पाप को परित्याग करते हैं, हितकर साधन ग्रहण करते हैं, और उन्हें उत्साह से पूरा करते हैं। ऐसे जन और भी श्रेष्ट और आशा जनक अवस्था रखते हैं। यही जन हमारे यहां सेवक बनने के अधिकारी होते हैं।

लोगों की उपरोक्त चारों अवस्थाओं को सन्मुख लाकर,

जिस २ अवस्था के जो जन हों, उनका पता लेकर काम करने से सफलता हो सकती है, अन्यथा नहीं।

मिथ्या कुल भेद।

(जीवन पथ, श्रावण सं० १९६१ वि०)

फ़रवरी सं० १९०४ ई० के "ब्रह्म चरित" पत्र में मिथ्या कुल भेद के विषय में एक लेख छपा है। लेखक ने इस महा हानिकारक प्रथा का वर्णन करने के अनन्तर अपना मत इस प्रकार प्रगट किया :—

"Thus every tribe or caste was as if trained to consider itself quite separate from the other tribe or caste as regards blood, opinions, manners, customs and religious rites. Can any one after this wonder that the Hindus should not have, even in the palmy days of their existence, grown into nation properly so called ? No one doubts that our ancestors had attained a high degree of civilisation. No one doubts that they were well versed in astronomy, logic and philosophy. But with all their culture they failed to grow into a nation.'

(भावार्थ)

"इस प्रकार प्रत्येक कुल वा वर्ण को मानो सिखाया जाता था, कि अपने आप को दूसरे कुल वा वर्ण से रक्त, राय, आचार, रीति और धर्म्म अनुष्ठानों में भिन्न समझे। ऐसी अवस्था में क्या कोई इस बात से चकित हो सकता है, कि हिन्दुगण अपनी बहुत सम्वृद्धि के दिनों में भी क्या सचमुच एक जाति (Nation) नहीं बन सकते ? इस में किसी को सन्देह नहीं है, कि हमारे पूर्वजों ने सभ्यता में बहुत सी उन्नति की थी, इस में सन्देह नहीं, कि हिन्दु ज्योतिष, तर्क और दार्शनिक विद्या में निपुण थे, परन्तु इस सब शिक्षा के होने पर भी वह एक " जाति " न बन सके।

सिक्खों का " ग्रन्थ साहब "

सिक्खों के प्रथम गुरु बाबा नानक साहब से लेकर चौथे गुरु तक किसी ने कोई धर्म्म पुस्तक नहीं रची। उन्हों ने जो कुछ थोड़े बहुत भजन रचे थे, वही प्रचलित थे, और बहुत से सिक्ख उन्हीं को गाकर अपना काम चलाते थे। कहा गया है, कि कई लोग इन गुरुओं के नाम से भी कई २ भजन बनाकर प्रचलित कर देते थे। इस से अनेक बार गुरुओं और दूसरों की वाणी का कुछ पता नहीं लगता था। पांचवें गुरु अर्जुन साहब ने

सिक्खों के लिए एक ग्रन्थ रचने की इच्छा की। उन्हों ने पहले अपने सम्प्रदाय के पहले गुरुओं के बहुत से भजन एकत्र किए। फिर उनके साथ अपने भजन भी शामिल किए। उनके भिन्न भारत वर्ष में और जिन २ भक्तों ने भजन रचे थे, इन में से भी उन्हें ने जिन २ के जितने भजन मिल सके, वह भी इकट्ठे किए। और इन सब को इकट्ठा करने पर भजनों की जो पुस्तक तैयार हुई, उसका नाम " ग्रन्थ साहब " रक्खा गया। इस प्रकार ग्रन्थ साहब में जहां कितने ही सिक्ख गुरुओं की वाणी पाई जाती है, वहां सिक्खों के भिन्न और सम्प्रदाय वालों की वाणियां भी वर्तमान हैं। अर्जुन साहिब पांचवें गुरु थे। उनके बाद के तीन गुरुओं की कोई वाणी नहीं, परन्तु नवें गुरु तेग़बहादुर साहब की वाणी ग्रन्थ साहब में मिलती है। दसवें गुरु गोविंद सिंह साहब ने अपना एक ग्रन्थ अलग रचा है। उनकी कोई वाणी आदि ग्रन्थ में नहीं है। पूर्वोक्त गुरुओं के भिन्न ग्रन्थ साहब में और जिन २ सम्प्रदाय के लोगों की वाणियां मौजूद हैं, उनके नाम यह हैं:—

(१) रामानंद जी, (२) त्रिलोचन जी, (३) कबीर जी, (४) रविदास जी, (५) नामदेव जी, (६) पीपा जी, (७) सदना जी, (८) सूरदास जी, (९) सम्मन जी, (१०) मूसन जी, (११) जमाल दास जी, (१२) वेणी

जी, (१३) सैन जी, (१४) भीषण जी, (१५) धन्ना जी, (१६) जयदेव जी, (१७) मीरांबाई जी, (१८) शेख़-फ़रीद जी, आदि ।

इस तालिका में जो नाम दिए गए हैं, उन में से कबीर जी जुलाह थे, रविदास जी चमार थे, नामदेव जी छींवे थे, सदना जी क़साई थे, सैन जी हज्जाम थे, और शेख़ फ़रीद जी मुसलमान थे । इन वाणियों के एकत्र करने में गुरु अर्जुन साहब की उदारता अवश्य प्रशंसनीय है । इन वाणियों में यद्यपि "ईश्वर" के गुण गाने में कुछ सीमा तक एकता पाई जाती है, परन्तु यूं उनके मत विषयक कितने ही प्रकार के कथनों में बहुत विरोधिता वर्तमान है । ऐसा प्रतीत होता है, कि इन वाणियों के एकत्र करने में उस काल की अवस्था के अनुसार संग्रहकर्ता के भीतर केवल यह भाव काम करता था, कि जो भजन परमेश्वर के स्मरण करने में कुछ भी मदद देते हों, वह सब ही कीर्तन करने के योग्य हैं; क्योंकि इस प्रकार के भक्तों का यह विश्वास था, कि परमेश्वर का नाम जपने और भजन कीर्तन करने से ही मनुष्य की मुक्ति हो जाती है । यही कारण था, कि सदना भक्त क़साई का काम करके भी भजन करने से भक्त ही रहता था, और भक्ति इसी में समझी जाती थी, कि कौन कितना ईश्वर का जप अथवा भजन करता है, और बस । इसी

लिए प्रति दिन बहुत से जीवों का वध करके और पापी बनकर भी सदना क़साई ऐसा अच्छा भक्त समझा गया, कि उसकी वाणी ग्रन्थ साहब में दाखिल की गई।

वैज्ञानिक प्रसंग।

" हारबिंजर आफ़ लाईट " नामी सम्बाद पत्र के १ मई सं० १९०४ ई० के अङ्क में अमरीका के एक विख्यात वैज्ञानिक पण्डित प्रोफ़ेसर गेटस का एक लेख छपा है, जिस में उक्त प्रोफ़ेसर ने वर्णन किया है, कि उन्हों ने कुछ पदार्थों से ज्योति की ऐसी किरणें आविष्कार की हैं, कि जो " एक्सरेज़ " से भी सूक्ष्मतर हैं। और उनका यह स्वभाव है, कि जब वह किसी अजीवित पदार्थ के भीतर प्रवेश करती हैं, तो उसकी सारी काया स्वच्छ (transparent) हो जाती है और उस के भीतर का सब कुछ दिखाई पड़ता है; परन्तु जीवित अस्तित्वों के भीतर वह किरणें प्रवेश करके ऐसा नहीं कर सकतीं। और जब तक कोई आकार जीवित रहता है, तब तक उसका साया एक ऐसे परदे (screen) पर पड़ता है, कि जो ख़ास मसाले से उन्हों ने तैयार किया है। एक बार एक चूहे को एक बोतल में डालकर उस पर उन्हों ने उक्त ज्योति की किरणें डालीं, और उनके डालने पर उसका उपरोक्त परदे पर साया पड़ गया। फिर कुछ

देर के बाद जब वह चूहा मर गया, तो वह साया भी फ़ौरन छिप गया। और फिर निर्जीव चूहे का शरीर शीशे की तरह स्वच्छ नज़र आने लगा, कि जो पहले नहीं आता था। फिर चूहे की मृत्यु के बाद शीशे की नलकी में से कुछ धुआं सा उठता नज़र आया और उस परदे पर हूबहू चूहे की शकल का एक नया परन्तु हलका साया दिखाई दिया। इस से प्रतीत हुआ, कि जिस शरीर का अब साया पड़ा है, वह जीवित अस्तित्व है और वह उस मुरदे शरीर से भिन्न है, जो कि अब अलग पड़ा है और अब उस परदे पर अपना वह साया नहीं डाल सकता; कि जो जीवित अवस्था में डालता था। इस परीक्षा से जाना गया, कि चूहे के मरने पर उसकी जीवनी शक्ति ने अपने पहले शरीर के अनुरूप कोई और सूक्ष्म शरीर (कि जिस का साया परदे पर पड़ा था) ग्रहण किया था। फिर इसी प्रोफ़ेसर से जब यह प्रश्न किया गया, कि क्या आप की इस परीक्षा से जीव का अमर होना सिद्ध होता है? तो उस ने उत्तर दिया, कि नहीं। इस से केवल इतना सिद्ध होता है, कि स्थूल देह की मृत्यु के पीछे भी, किसी २ सूक्ष्म आकार के संग जीवन बाक़ी रहता है। अब जो सेवक भगवान् देवात्मा की परलोक विषयक महा अमूल्य शिक्षा से अवगत हैं, उन पर यह विदित होगा, कि इस विषय में

भगवान् देवात्मा जो पूर्णतः सच्ची और अति अनमोल शिक्षा दे चुके हैं, उसी की वैज्ञानिक परीक्षाओं के द्वारा भी अब पोषकता होती जाती है। और हमें निश्चय है. कि ज्यों २ विज्ञान की उन्नति होगी, और सूक्ष्म पदार्थों के पहचानने की इच्छा बढ़ेगी और उसके लिए उपयोगी वैज्ञानिक यंत्र आदि आविष्कार होंगे, त्यों २ भगवान् देवात्मा के बतलाए हुए सत्यों की अधिक से अधिक पोषकता होगी और जो जन प्राचीन शिक्षा के कुसंस्कारों के कारण उनके प्रगट किए हुए तत्त्वों को देखने की आंख नहीं रखते हैं, वह उन्हीं तत्वों को वैज्ञानिक सिद्धान्त बन जाने पर खुशी २ ग्रहण करेंगे।

२६ मई १६०४ ई० के "ट्रिब्यून" में लिखा है, कि डाक्टर मोलियर और कोमर जो हिस्टीरिया रोग की चिकित्सा में विशेष योग्यता रखते हैं, वर्णन करते हैं, कि उन्हों ने कई स्त्रियों की बेहोशी (Htpnotic trance) की अवस्था में देखा, कि वह अपने शरीर के भीतर का हाल बता सकती हैं। एक ने अपने शारीरिक हृदय पिंड में रक्त संचालन की विधि बताई, जो उसे मालूम न थी। एक रोगन ने बताया, कि अमुक जगह एक छोटी सी हड्डी अन्दर दर्द पैदा कर रही है। डाक्टरों ने पीछे से पता निकाला, कि हड्डी का जैसा वर्णन उस रोगन ने किया था, वह ठीक वैसा ही था। इस प्रकार की

घटनाएं यह भली भांत सिद्ध करती हैं, कि जीवात्मा शरीर में रहकर भी शरीर से अलग अपना अस्तित्व रखता है, और शारीरिक आंखों के भिन्न अपनी आन्तरिक दृष्टि शक्ति के द्वारा विशेष २ अवस्थाओं में उन चीज़ों को भी देखता है, कि जिन्हें शारीरिक आंखें नहीं देखतीं।

जापानियों के उच्च गुण।

रूस और जापान का जब से युद्ध प्रारम्भ हुआ है, तब से जापानियों की वीरता और उनके स्वदेश अनुराग आदि के विषय में नाना प्रकार के लेख छपते रहे हैं। ऐसे लेखों में से कुछ लेखों का सार हम नीचे दर्ज करते हैं:—

जापानी राजकुमार।

युवराज को छोड़कर इस समय चार राजकुमार जहाज़रानी का काम सीखकर अफ़सरी के पद पर नियुक्त हैं। इनके ऊपर और कितने ही साधारण जापानी बड़े अफ़सर हैं। यह सब राजकुमार राजवंश के होकर भी अपने से बड़े अफ़सरों की इस प्रकार उत्तमता के साथ आज्ञा पालन करते हैं, कि जिस से किसी देखने वाले पर यह प्रगट नहीं होता, कि उनके भीतर राजवंश सम्बन्धी कोई अहंकार वर्तमान है। दल बद्धता के उच्च

अनुराग के साथ २ आज्ञा पालन अथवा वाध्यता के भाव का उत्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है । जापानियों ने दल बद्धता विषयक अनुराग के साथ आज्ञा पालन के भाव को कहां तक उन्नत किया है, उसका प्रमाण पूर्वोक्त वात से मिल सकता है ।

स्वदेश अनुरागी मां ।

जापान में एक विधवा मां के दो वेटे हैं । बड़ा इन में से पहले फौजी सिपाही और अब रिज़र्विस्ट था । (फ़ौज में रिज़र्विस्ट वह सिपाही होते हैं, जो थोड़ी सी वृत्ति लेकर अपने घर में रहते हैं, और आवश्यक होने पर लड़ाई के लिए बुलाए जाते हैं ।) उसके घर में हुकम पहुंचा, कि लड़ाई के लिए उसकी ज़रूरत है, और वह इतने घण्टों के भीतर हाज़र हो जाए । हुकम पहुंचने पर वह अपने घर में वर्तमान न था, किन्तु घर से वहुत दूर किसी गांव में दवाई वेचने का काम कर रहा था । मां को भी उसका पता न था । हुकम के मिलते ही मां ने लड़ाई के दफ़तर से कुछ घण्टों की अधिक मोहलत लेकर एक ओर अपने दूसरे वेटे को भेजा और दूसरी ओर आप प्रस्थान किया । घर में कुछ रुपया न था । इसलिए उस ने अपने कुछ वरतन वेच डाले, और दोनों मां वेटे ने उसे ढूंढना आरम्भ किया । ढूंढते २ वह किसी गांव में मिल गया । वह फ़ौरन लौटा और

लड़ाई के दफ़्तर में पहुंच गया। जुदा होते समय मां ने अपने सिपाही बेटे को अपने सिर के कुछ बाल काटकर यादगार के लिए दिए, और उनके भिन्न एक पुस्तक भी दी, कि जो सिपाहियों के आचार आदि के विषय में थी, और उसे यह चीज़ें और अपना आशीर्वाद देकर युद्ध के लिए खुशी २ रवाना कर दिया।

स्कूल के लड़के का स्वदेश अनुराग।

जापान के एक गांव में एक लड़का अपनी पढ़ाई के घण्टों के अनन्तर कुछ दिनों से मिठाई बेचा करता था। लोग हैरान थे, कि वह ऐसा क्यों करता है? पूछने पर मालूम हुआ, कि उस ने यह काम इसलिए ग्रहण किया है, कि उसके द्वारा जो कुछ धन लाभ होता है, उसे अपने देश की सहायता के लिए युद्ध फंड में भेजा करता है।

जापानी सिपाहियों का स्वदेश अनुराग।

पोर्ट आर्थर के मुहाने को रोकने के लिए जब कुछ जहाज़ों के डुबोने की आवश्यकता हुई, तो जापानी सेनापति ने प्रायः डेढ़ सौ वीर जापानियों को वहां भेजना चाहा। सेनापति के इरादा ज़ाहर करते ही डेढ़ सौ के स्थान में बीस हज़ार जापानियों ने फ़ौरन दरख्वास्त की, कि उस महा संकट के काम पर हमें भेजा जावे। यह ऐसा भयानक काम था, कि वहां जाकर फिर प्रायः

किसी के जीते जी वापिस आने की आशा नहीं हो सकती थी। परन्तु इस पर भी दो, चार, दस, बीस नहीं, किन्तु बीस हज़ार वीरों ने अपने देश की रक्षा के लिए प्राण देना स्वीकार किया। स्वदेश के हित के लिए कितने बड़े असाधारण त्याग का भाव !!

जो मनुष्य जितना नीच होता है, उतना ही वह स्वार्थ से भरा हुआ होता है। और इसीलिए स्वार्थ से परिपूर्ण नीच जनों के द्वारा किसी समाज वा देश का कोई हित साधन नहीं हो सकता। जो जन जितना स्वार्थ त्याग करता है, वह उतना ही उच्च बनता है, और अपना और औरों का हित साधन करता है। हमारे सामाजिक जनों के भीतर भी स्वार्थ त्याग का जितना भाव बढ़ेगा, उतना ही उनका और समाज का हित साधन होगा।

मेरे रिश्तेदार क्या कहेंगे ?

गत स्वदेश व्रत के अवसर पर भगवान् देवात्मा ने जो उपदेश दिया था, उसके सुनने के अनन्तर एक सेवक ने लिखा :—

"हे भगवन् ! आप के उपदेश के समय मेरे अन्दर कई तरह के भाव जोश मार रहे थे। मैं चाहता था, कि अपने आप को आप के किसी उच्च काम में लगाकर

अपनी ज़िन्दगी को सफल करूं । मेरे लिए बाहर की रुकावटें भी कुछ बहुत नहीं । मेरे कुनबे के लोग ऐसे नहीं, कि जो अपनी ज़रूरतों के लिए मेरे मुहताज हों । परन्तु हाय ! मेरे भीतर से मान और यश का झूठा ख़याल अभी तक दूर नहीं हुआ । मैं सोचने लगा, कि यदि मैं देश के किसी हितकर काम में अपनी ज़िन्दगी ख़र्च करूं, तो मेरे रिश्तेदार क्या कहेंगे ?"

आह, इस देश की कैसी दुर्दशा ! स्वार्थ परता और पाप के दास होकर भारत वासी कैसे रद्दी बन गए !! वह नाना प्रकार के ऐसे नीच कर्म्म कर सकते हैं, कि जिन के द्वारा उनके और औरों के जीवन का विनाश होता रहे, परन्तु ऐसे बुरे कर्म्मों के करने में उन्हें कोई शरम वा रोक मालूम नहीं होती ! वह दिनों दिन बुरे बनते जाएं, लोग भी उन्हें बुरा कहते रहें, तो भी उनका दिल बुराई के पथ में जाने में कोई झिझक वा शरम मालूम नहीं करता, किन्तु जिस में वह अपनी और औरों की भलाई देखते हैं, उसके करने में शरम और रोक मालूम करते हैं । ओह, कब तक ऐसी अवस्था रहेगी !! क्या देव समाज और स्वदेश का तुम पर कोई दावा नहीं ? क्या देव समाज के सम्बन्धी तुम्हारे सम्बन्धी नहीं ? तुम्हें इस बात की परवाह तो हो, कि तुम्हारे पापाचारी और स्वार्थ परायण और देश के लिए कृतघ्न

सम्बन्धी तुम्हारे शुभ के साथी बनने में क्या कहेंगे, परन्तु अपने उन देव समाज के धर्म्म सम्बन्धियों की परवाह न हो, कि वह तुम्हें स्वार्थ परता के साथी देखकर क्या कहेंगे? हाय ! यह अभागा देश अपने जाए हुए पुत्र और कन्याओं को छोड़कर फिर और किन की ओर देख सकता है, और किन से अपने उद्धार की आशा कर सकता है ? देव समाज स्थापक भी तुम्हें पाप जीवन से मोड़कर और शुभ का कुछ न कुछ अभिलाषी बनाकर और किस की ओर आशा की दृष्टि से देख सकते हैं ? क्या थोड़े से स्वार्थ परता और देश के बिगाड़ने वाले सम्बन्धियों की ख़याली आवाज़ तुम्हारे दिल तक पहुंच सकती है, और तुम्हारे हितकर्ता सम्बन्धियों और दुखिया देश की दुख भरी आवाज़ तुम्हारे हृदय को स्पर्श नहीं कर सकती? आह ! कब तक तुम इस पिछली आवाज़ और इस पिछली अपील से अपने हृदय के किवाड़ों को बन्द रक्खोगे ? याद रक्खो, कि तुम्हारे नीच सम्बन्धियों की महा हानिकारक आवाज़ बहुत देर तक तुम्हारे कानों तक नहीं पहुंच सकती। वह कुछ दिन में नष्ट हो जाने के लिए है, वह ऐसी डरावनी नहीं, जैसा कि तुम उसे अपनी मूर्खता से समझ रहे हो। तुम हिम्मत करो, धर्म्म दाता की धर्म्म शक्ति का सहारा लो, और उनके पवित्र और उच्च कार्य्य की महानता को उपलब्ध करो और फिर एक

हुंकार के साथ ऐसे ख़याली डर को दूर करके अपनी उच्च और हितकर आकांक्षा को विजयी होने दो। शुभ और हित का साथ देने में ही तुम्हारा शुभ और हित है। इसी में तुम्हारी वीरता और बहादुरी है। इसी में तुम अपने परिवार, अपने देश और अपनी समाज के लिए सपूत बनते हो। तब हौसला करो, बुरे सम्बन्धियों की बुरी आवाज़ के पीछे मत चलो। अपने सामाजिक सम्बन्धियों और अपने धर्म्म पथ प्रदर्शक की ओर देखो। उन की पवित्र वाणी को सुनो और उनकी शुभ इच्छा को पूर्ण करके गुरुमुख सेवक और सच्चे देश हितैषी बनो।

देव समाज धर्म्म विकासालय के सम्बन्ध में पहली सूचना।

[जीवन पथ, आश्विन सं० १९६१ वि०]

भारत वर्ष का नैतिक और सामाजिक उद्धार बहुत कुछ देव समाज की उन्नति पर निर्भर करता है। नीच लक्ष्य से निकल कर उच्च लक्ष्य को अपना मुख्य लक्ष्य बनाने के बिना उच्च जीवन की उत्पत्ति नहीं हो सकती, और बिना उच्च जीवन में प्रवेश करने के निस्स्वार्थ परहित साधन का भाव भी उत्पन्न और उन्नत नहीं हो सकता। इसीलिए जैसे उच्च लक्ष्य को मुख्य बनाने के बिना किसी आत्मा को उच्च जीवन प्राप्त

नहीं हो सकता, वैसे ही उसके द्वारा औरों में भी स्वार्थ त्याग और पर हित साधन का भाव जाग्रत और उन्नत नहीं हो सकता।

उच्च लक्ष्य और उच्च जीवन की प्राप्ति और उस के विषय में सत्य ज्ञान की शिक्षा के लाभ करने के लिए, यह नितान्त आवश्यक है, कि देव समाज में से कुछ ऐसे आत्मा निकलें कि जो,

(१) उच्च जीवन की नितान्त आवश्यकता अनुभव करते हों, और उसकी प्राप्ति के लिए गाढ़ इच्छा रखते हों।

(२) उच्च जीवन विषयक सब प्रकार के महा दुर्लभ सत्य ज्ञान के लाभ करने की नितान्त आवश्यकता अनुभव करते हों, और उसकी प्राप्ति के लिए गाढ़ इच्छा रखते हों।

(३) उच्च लक्ष्य विहीन होकर और केवल नीच लक्ष्य के अनुगत बनकर अपने भीतर किसी प्रकार तृप्ति वा शान्ति न पाते हों।

(४) उच्च जीवन और उच्च जीवन विषयक महा दुर्लभ सत्य ज्ञान की महिमा को पहचान कर उनके दाता के सम्बन्ध में अपने आप को सब प्रकार से दरिद्र और हीन और असहाय अनुभव करते हों, और इस प्रकार अनुभव जनित सात्विक श्रद्धा का भाव रखते हों।

(५) नीच जीवन से सत्य मोक्ष दाता और उच्च

जीवन के विकास कर्त्ता भगवान् देवात्मा पर पूर्ण रूप से विश्वास कर सकते हों, और उन के सम्बन्ध में अहं वा स्वार्थ जनित कोई दुश्चिन्ता न करते हों ।

(६) सब प्रकार की कपटता को त्याग करना चाहते हों, और सरल भाव से अपना सब हाल ज्यों का त्यों अपने जीवन दाता के सन्मुख वर्णन कर सकते हों ।

(७) अनुगत बनने की सच्ची आकांक्षा रखते हों, और अवज्ञा वा अपराध आदि के हो जाने पर सब प्रकार का आवश्यक दण्ड लेने के लिए तैयार हों ।

(८) महा दुर्लभ उच्च जीवन, और उच्च जीवन विषयक महा दुर्लभ सत्य ज्ञान के लाभ करने के लिए, नीच लक्ष्य और नीच जीवन सम्बन्धी सब प्रकार के आवश्यक त्याग के लिए प्रबल इच्छा रखते हों ।

अब यदि देव समाज में ऐसे आत्मा पाए जाते हों, कि जो अपने आप को उच्च जीवन और उच्च जीवन सम्बन्धी सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूर्वोक्त योग्यताओं के विचार से अधिकारी समझते हों, और क्या अपने उद्धार और जीवनोन्नति के लिए और क्या अपनी समाज और अपने देश की उन्नति में प्रकृत रूप से सेवाकारी होने के लिए, और क्या इस बात के लिए, कि देव समाज स्थापक के अस्तित्व में जिस पूर्णाङ्ग देव जीवन और जीवन सम्बन्धी महा दुर्लभ ज्ञान की सम्पद का

प्रकाश अथवा विकास हुआ है, वह कुल सम्पद उनके स्थूल देह त्याग पर यूंहि चली न जाए, किन्तु जिस समाज और जिस देश के नितान्त आवश्यक हित के लिए उसका प्रकाश हुआ है, उस समाज के हित के लिए कार्य्यकारी बन जाय, वह यदि इस विषय में अपने २ हृदय की अवस्था को प्रगट करने, अथवा देव समाज स्थापक से परामर्श लेने के अभिलाषी हों, तो वह उनकी सेवा में पत्र भेज सकते हैं, अथवा उचित समय में उन से मिलकर बात चीत कर सकते हैं।

नीच और उच्च जीवन धारी आत्मा।

[जीवन पथ श्रावण सं० १९६१ वि०]

अहं संस्कृत शब्द है, इसका अर्थ है "मैं"। पर भी संस्कृत शब्द है; जिस का अर्थ है "और"। मैं और पर एक नहीं। जब तक किसी मनुष्य के हृदय से केवल इस प्रकार की आकांक्षा उत्पन्न होती रहती है, कि "मैं अपनी वासना वा उत्तेजना को चरितार्थ करूं, मैं अपना आराम वा सुख लाभ करूं, मैं अपना फ़ायदा देखूं, इस से दूसरे को चाहे कैसा ही अनुचित दुख मिले, अथवा कैसी ही अनुचित हानि पहुंचे।" तब तक उसके भीतर केवल मैं का अधिकार रहता है। यह मैं का भाव जब तक काम करता है, और मनुष्य अपनी इस मैं के द्वारा

परिचालित होकर अपने किसी सुख वा आराम वा लाभ में किसी और की किसी अनुचित हानि वा उसके दुख को अनुभव नहीं करता और किसी और को अनुचित दुख वा हानि पहुंचाकर भी अपनी एक वा दूसरी प्रकार की तृप्ति ढूंढता रहता है, तब तक वह केवल मैं अर्थात् अहं का ही दास रहता है। इसी अहं की ही महा भयानक दासत्व से नाना प्रकार के पापों और अपराधों और अन्याय अथवा अत्याचारों की उत्पत्ति होती है। यह अहं का दास और पर के सम्बन्ध में पूर्ण अबोधी चाहे किसी धर्म्म मत को मानता हो, चाहे किसी देवता वा देवी वा ईश्वर का इकरार करता हो, चाहे किसी पुस्तक को धर्म्म पुस्तक अथवा ईश्वर की पुस्तक करता हो, चाहे किसी चीज़ का पाठ और पूजन करता हो, चाहे किसी प्रकार का तप वा जप करता हो, वह अवश्य पापाचारी और अपनी दुर्गति से अज्ञानी और विषय लिप्सा अथवा मोह में लिप्त और निम्न श्रेणी का जीव अथवा नीच जीवन धारी आत्मा है।

इस पृथिवी में लाखों और करोड़ों मनुष्य अपने जन्म काल से ही नीच अहं की अवस्था में धीरे २ उन्नत होते हैं। छोटे २ बच्चे बाल्य काल से ही अपने स्वाद वा किसी एक वा दूसरी खाने की वस्तु, किसी एक वा दूसरे खिलोने वा खिलाड़ी बच्चे के पक्षपाती बनकर

अथवा अपनी किसी और वासना के तरफ़दार अथवा प्रतिशोध आदि किसी उत्तेजना के साथी होकर एक २ घर और परिवार के भीतर जिस प्रकार अपने हठ और दुराग्रह का प्रकाश करते हैं, जिस प्रकार अपने माता पिता और भाई बहिन आदि विविध सम्बन्धियों को कई प्रकार से अनुचित क्लेश पहुंचाते हैं, घर की चीज़ों की कई प्रकार से हानि करते हैं, उनकी इन क्रियाओं को सन्मुख लाकर एक तत्वदर्शी मनुष्य देख सकता है, कि किस तरह लाखों और करोड़ों मनुष्य जन्म काल से ही केवल अहं के महा नीच भाव में उन्नत होते रहते हैं; और एक अहं का ही उन सब पर धीरे २ अधिकार बढ़ता जाता है। इसीलिए वह इसी एक नीच अहं के दास बनकर नीच जीवनधारी आत्मा बन जाते हैं। और धर्म्म के नाम से कई प्रकार के मत रखकर और कई प्रकार की फ़िज़ूल क्रियाएं करके भी केवल नीच जीवन-धारी आत्मा ही रहते हैं।

इन नीच जीवनधारी आत्माओं को सन्मुख लाकर प्रश्न हो सकता है, कि क्या कोई उच्च जीवनधारी आत्मा भी होते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है, कि हां, कुछ उच्च जीवनधारी आत्मा भी होते हैं। फिर प्रश्न यह है, कि इन उच्च जीवनधारी आत्माओं की पहचान क्या है ? इसके उत्तर में बताया

जा सकता है, कि जब किसी आत्मा के भीतर कोई ऐसा भाव उत्पन्न और उन्नत हो, कि जिस में वह अपने अहं से निकलकर किसी पर अर्थात् और के किसी उचित अधिकार की परवाह करने के लिए मजबूर हो, और दूसरी ओर किसी और के सम्बन्ध में कोई ऐसा अनुराग अनुभव करता हो, कि जिस के द्वारा वह बिना किसी नीच ग़रज़ के किसी और का कोई न कोई हित साधन करने के बिना रह न सकता हो; तब यह आत्मा अपने ऐसे लक्षणों के द्वारा पहले प्रकार के आत्माओं से अलग पहचाना जाता है और अपने इन लक्षणों के द्वारा यह प्रमाणित करता है, कि वह निम्न श्रेणी अर्थात् नीच जीवनधारी आत्माओं की अवस्था से कुछ ऊपर की अवस्था रखता है, और इसलिए कुछ उच्च जीवनधारी आत्मा बन गया है। यदि इस प्रकार के यह दोनों लक्षण किसी आत्मा में पाए न जावें, अर्थात् एक ओर उस में किसी और की अनुचित हानि वा उसके दुख के सम्बन्ध में कोई बोध मौजूद न हो, और दूसरी ओर पर के सम्बन्ध में कोई ऐसा अनुराग वर्तमान न हो, कि जिस के द्वारा परिचालित होकर वह बिना किसी के हित साधन करने के रह न सकता हो, तब तक उस में उच्च जीवन का कुछ भी आरम्भ नहीं हुआ, और वह कुछ भी उच्च जीवनधारी आत्मा नहीं बना।

हिन्दुओं में मिथ्या कुलभेद के महा भयानक फल।

डाक्टर गणेशप्रसाद विहार के रहने वाले हैं। उन्हों ने इलाहवाद यूनिवर्सिटी से बड़ी से बड़ी परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर योरोप में जाकर कई साल तक शिक्षा लाभ की है। गणित विद्या के यह वहुत वड़े पण्डित हैं। इस विद्या के सम्वन्ध में इन्हों ने आप भी कई तत्व अविष्कार किए हैं। योरोप में रहकर इन्हीं ने जिन वड़ी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर डिगरियां ली हैं, वह ऐसी डिगरियां हैं, कि जिन को प्राप्त करके इन्हों ने उस देश में भारत वासियों का वहुत वड़ा गौरव स्थापन किया है। ऐसे वहुत वड़े विद्वान का अपने देश में कुशल पूर्वक लौटना हमारे देशी जनों के लिए वहुत वड़े हर्ष का कारण होना चाहिए था, परन्तु सिवाय कुछ जनों के उनके वहुत से ज्ञाति जनों ने अपने महा भयानक कुसंस्कार के कारण उन्हें अपना नहीं समझा। एक ओर जहां उनके पिता और कुछ और ज्ञाति जनों ने उन से कुछ प्रायश्चित कराके अपनी ज्ञाति में मिला लेने की चेष्टा की है, वहां दूसरी ओर उनके और हज़ारों ज्ञातीय जनों ने वड़ी २ सभाएं करके यह व्यवस्था दी है, कि वह उन की विरादरी से खारिज किए जावें, क्योंकि वह समुद्र पार जाकर योरोप में रहकर और वहां के लोगों के साथ खान पान रखकर धर्म्म भ्रष्ट हो

गए हैं। इन हिन्दुओं के विचार में झूठ, प्रवंचना, चोरी, ठगी, डकैती, व्यभिचार आदि कर्म्म पाप कर्म्म नहीं, और उनका कर्ता कोई हिन्दु धर्म्म से भ्रष्ट और पतित नहीं होता; इसीलिए वह उनकी ज्ञाति में शामिल रहता है। परन्तु खान पान अवश्य ऐसा कर्म्म है, कि जिस की विधि में कुछ खुल्लम खुल्ला अधिक अन्तर आने से मनुष्य ऐसा धर्म्म भ्रष्ट हो जाता है, कि फिर वह ज्ञाति में रहने के योग्य नहीं रहता। ओह! कितनी बड़ी मूर्खता और धर्म्म के विषय में कितनी बड़ी अज्ञानता!! इस घटना पर अखबार बंगाली के सम्पादक अपनी आलोचना करके यह वर्णन करते हैं, कि अगर कोई हिन्दु चोरी वा डकैती में पकड़ा जाकर और अपने अपराध के लिए सज़ा पाकर समुद्र पार अण्डमन द्वीप में (जिस को काला पानी भी कहते हैं) भेज दिया जावे, और फिर वह छूटकर अपने घर को वापिस आवे, तो वह अपनी जाति में शामिल हो सकता है, परन्तु डाक्टर गणेशप्रसाद जैसा जन जो विद्या लाभ के लिए योरोप में गया और जिस ने अपनी विद्या और बुद्धि के द्वारा उस देश में भारत वासियों का गौरव प्रतिष्ठित किया, वह अपनी बिरादरी में नहीं रह सकता। कैसा अन्याय!

एक और चिन्ता शील पत्र सम्पादक इस प्रकार लिखते हैं:—

"It is Truth alone—Truth in speech, thought and action—that can give character and stamina to a nation Socially or politically or in the religious sphere the modern educated Hindoo's life is a mass of inconsistencies which sometimes run into glaring falsehoods."

(भावार्थ)

"यह केवल सत्य का ही अनुकरण है—सत्य वचन में, सत्य चिन्ता में और सत्य कार्य्य में—कि जो किसी जाति को उच्च चरित्र और बल दे सकता है। क्या सामाजिक और क्या राजनैतिक और क्या धर्म्म विषयक बातों में वर्तमान हिन्दुओं की ज़िन्दगी इतनी असंगत है, कि वह कई अवस्थाओं में भयानक मिथ्यापन की अवस्था को पहुंची हुई है।"

बेशक; सत्य और मिथ्या एक नहीं, और इसीलिए यदि सत्य को ग्रहण करने और उसके अनुसार चलने से भलाई आ सकती हो, तो यह प्रत्यक्ष है, कि मिथ्या के ग्रहण और अनुगत्य से भलाई और शक्ति नहीं आ सकती। परन्तु और जातियों को छोड़कर हिन्दु ऐसी अवस्था में पहुंचे हुए हैं, कि यह मिथ्या रूपी विष को ही अपने प्रति दिन का भोजन बना चुके हैं। वह चाहे इस से नष्ट ही होते जाएं, परन्तु एक पक्के नशाई की

तरह उसे त्यागना नहीं चाहते। और तो और कितने ही कहलाने वाले धर्म्म सम्प्रदाय मिथ्या को ही आधार बनाकर अपने २ मतों का प्रचार करते हैं। इस से बढ़-कर मनुष्य आत्माओं की अन्धता और क्या हो सकती है ? नहीं हो सकती। इसीलिए सत्य जिस का महा लक्ष्य हो, उसका साथ देने के स्थान में यह मिथ्या के अनुगत धर्म्म २ की झूठी पुकार मचाकर भी उलटा उसे सब प्रकार से सताने और हानि पहुंचाने में ही तृप्ति लाभ करते हैं।

सेवको भारी भ्रान्ति से बचो।

(जीवन पथ, कार्तिक सं० १६६१ वि०)

जैसे किसी २ स्कूल में एक २ जन जो दफ़तरी अथवा चपरासी होता है, उसके भीतर स्कूल में रहकर और उस में लड़कों को विद्याभ्यास करते और शिक्षकों को पढ़ाते देखकर भी, आप विद्याभ्यास करने अथवा विद्वान बनने की कोई आकांक्षा नहीं होती; वैसे ही किसी सच्चा धर्म्म समाज में भी जहां अधर्म्म से मोक्ष और धर्म्म भावों के जाग्रत करने के लिए सच्चे जीवन दाता की ओर से कार्य्य हो रहा हो, ऐसे बहुत से मनुष्य मिलते हैं; कि जो यद्यपि कई एक बड़े २ पापों से तो विरत पाए जाते हैं, परन्तु उन में धर्म्म अर्थात्

उच्च जीवन के लाभ करने के लिए कोई आकांक्षा नहीं पाई जाती। वह एक सच्ची और जीवन्त समाज के मेम्बर होकर भी धर्म्म अभिलाषा से विहीन रहकर दिन व्यतीत करते हैं। कैसी शोचनीय अवस्था ! कैसा दुखदाई दृश्य !! देव समाज के सेवको ! तुम सब भली भांत विचार करो और देखो, कि तुम्हारी अवस्था क्या है।

यह सच है, कि भगवान् देवात्मा के शक्तिमय धर्म्म उपदेशों को सुनकर कितने ही जनों के भीतर अपने जीवन और इसके भिन्न अपनी जाति और अपने देश के हित साधन के लिए आकांक्षा जाग्रत हुई है। इस आकांक्षा से परिचालित होकर समय २ में कितने ही जनों ने अपने आप को देव समाज के महा शुभकर कार्य्य के लिए सम्पूर्ण रूप से भेंट भी किया है। कितनों ने सम्पूर्ण रूप से भेंट तो नहीं किया, परन्तु फिर भी अपना थोड़ा वा बहुत समय इस महान कार्य्य के लिए अर्पण किया है। किन्तु अत्यन्त शोक का विषय है, कि उन में से बहुतों के भीतर जो प्रबल वासनाएं वर्तमान थीं, उन्हों ने अवसर पाकर उन पर फिर अधिकार लाभ कर लिया। और उनके भीतर पूर्व्वोक्त उच्च लक्ष्य विषयक जो आकांक्षा जाग्रत हुई थी, वह दुर्बल होने के कारण फिर दब गई, और कितनों के भीतर से धीरे २ बिलकुल

मर गई। जिस का फल यह हुआ, कि कुछ जन अपनी नीच वासनाओं की तृप्ति न देखकर बहुत शीघ्र ही समाज से दूर हो गए अथवा दूर कर दिए गए! और कुछ ऐसे जन जो अपेक्षाकृत कम नीच हृदय रखते थे, वह यद्यपि समाज से अलग नहीं हुए, और समाज की साधारण सेवकों की कुल शरतों को पूरा करके उसके मेम्बर और कई अवस्थाओं में अच्छे सहायक भी बने रहे, परन्तु वह भी पूर्वोक्त उच्च लक्ष्य पर स्थिर न रह सके। यहां तक कि कुछ जन जो लगातार सेवाकारी भी रहे, वह भी उच्च जीवन मूलक किसी उच्च आकांक्षा वा भाव के द्वारा परिचालित होने के स्थान में केवल अथवा बहुत कुछ अपनी वासनाओं के द्वारा ही परिचालित होकर कार्य्य करते रहे। इस से कार्य्य तो अवश्य हुआ, परन्तु जैसी कि आशा करनी चाहिए, उनका कार्य्य क्या उनके लिए और क्या औरों के लिए उच्च जीवन दायक प्रमाणित नहीं हुआ। कई २ सेवकों के इसी अवस्था में वर्षों के वर्ष व्यतीत हो गए, और उनके द्वारा समाज के विविध कामों में बहुत कुछ सहायता भी मिली, परन्तु उच्च जीवन के विचार से क्या उनका और क्या उनके द्वारा औरों का कुछ हित साधन नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है, कि इस प्रकार के सेवक उच्च जीवन

विषयक उच्च लक्ष्य को भली भान्त और लगातार पकड़ न सके, और उसके जाग्रत रखने और उन्नत करने के लिए जिस प्रकार के साधनों की आवश्यकता है, उनको या तो ग्रहण न कर सके, या ग्रहण करके लगातार जारी न रख सके; इसीलिए पतन हो गया। और इसीलिए वह समाज का काम वर्षों तक लगातार करने के अनन्तर भी उच्च जीवन की उच्च सीढ़ियों पर चढ़ने के योग्य न हुए। स्कूल के दफ़तरी और चपरासी जैसे स्कूल में रहकर और स्कूल का काम करके भी विद्या विहीन रहते हैं, वैसे ही यह भी उच्च जीवन और उस के विकास से खाली रह गए। कैसी शोचनीय अवस्था! कैसा हृदय विदारक दृश्य!! कैसी बड़ी अन्धता!!! कैसी जीवन पथ से भ्रष्टता!!!!

अब सोचो कि जो जन आप जीवन पथ से भ्रष्ट हों, अथवा कुछ दूर उस पर चलकर और फिर अपनी नीच वासनाओं की झपट और उनके अधिकार में आकर पथभ्रष्ट हो गए हों, वह क्या किसी सच्ची धर्म्म समाज के परिचालक हो सकते हैं? कदापि नहीं। क्या जिन जनों ने अधर्म्म मूलक नाना प्रकार की नीच गतियों के विषय में न कोई ठीक ज्ञान और न उन से उद्धार लाभ किया हो, वह देव समाज जैसी अद्वितीय धर्म्म समाज के परिचालक बन सकते हैं? क्या वह जन जिन में या

तो उच्च जीवन आरम्भ ही नहीं हुआ, अथवा आरम्भ हो कर मर चुका है, अथवा केवल अंशमात्र में वर्तमान है, देव समाज जैसी अद्वितीय धर्म्म समाज के आदर्श हो सकते हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं। तब कैसे मूढ़ और अन्धे हैं वह सेवक, जो ऐसे जनों में से किसी एक वा दूसरे के साथ भ्रान्ति मूलक अनुराग सूत्र में बन्ध-कर अपने सच्चे और पूर्णाङ्ग जीवन के आदर्श अर्थात् भगवान् देवात्मा को ही भूल जाएं। और सब से बढ़कर एक मात्र उनके अनुरागी और विश्वासी और अनुगत होने के स्थान में किसी और जन के अधिक अनुरागी और विश्वासी और अनुगत बन जाएं? और क्या इस से बढ़कर वह लोग मूढ़ और नीच नहीं, कि जो सेवकों के सन्मुख से जीवन के सच्चे और पूर्ण आदर्श और रक्षक और नेता भगवान् देवात्मा को हटाकर उनके स्थान को आप अधिकार करने की चेष्टा करते हों? इस प्रकार की मूढ़ता और अन्धता और नीचता जितनी शीघ्र दूर हो सकती हो, उतनी शीघ्र दूर हो, क्योंकि वह जैसे पूर्व्वोक्त प्रकार के सेवकों के लिए महा हानि-जनक है, वैसे ही समाज के लिए भी।

नीच लक्ष्यधारी आत्मा।

साधारण मनुष्यों में नीच लक्ष्य और इसीलिए पाप का इतना प्यार वर्तमान है, कि चाहे जिधर निगाह फेर कर देखो, उधर ही इस पृथिवी के नाना सम्प्रदायों में लाखों और करोड़ों जन ऐसे दिखाई देंगे, कि जो विविध प्रकार के पापों में लिप्त पाए जाते हैं। केवल वही जन, जो अपने अपराध के कारण पकड़े जाकर जेल में भेजे जाते हैं, दुराचारी नहीं, किन्तु उनके भिन्न लाखों और करोड़ों और जन जो जेल में नहीं भी जाते विविध प्रकार के पाप और दुराचार करते रहते हैं। कितने ही मजिस्ट्रेट ऐसे मौजूद हैं, कि जो हर रोज़ रिश्वतें लेते हैं, मुक़दमों के फ़ैसले करने में अन्याय करते हैं, सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा ठहराते हैं, बदचलनी करते हैं, यहां तक कि कोई असहाय परन्तु नेक चलन स्त्री उनके यहां किसी मुक़दमे में फंसकर आ जाए, तो उसके भी सतीत्व को नष्ट करने के लिए सदा तैयार रहते हैं, नशों का सेवन करते हैं, फिर भी वह मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त होने और बड़ी तनख़्वाह अथवा धनी होने के कारण लोगों में भली भांत सन्मान पाते हैं, बड़ी २ सभाओं में बहुत आदर के साथ निमंत्रित होते हैं, यहां तक कि उन में से कितने ही एक वा दूसरी मज़हबी सोसाइटी के भी शिरोमणि और नेता बनाए

जाते हैं, और वह प्रतिष्ठित, माननीय और भद्र जन आदि के नाम से पुकारे जाते हैं। कितने ही कमसरियट के गुमाश्ते और कितने ही बारकमास्टरी के अफ़सर और ठेकेदार और कितने ही वकील, डाक्टर और सौदागर वा अन्य पेशे वाले जो बहुत बददयानती से धन कमाते हैं, और कुछ उन में से जो झूठी खुशामद और धन आदि के द्वारा रायबहादुर और खान बहादुर आदि की उपाधियां भी लाभ कर लेते हैं, हज़ारों और लाखों लोगों में बहुत सन्मान् की दृष्टि से देखे जाते हैं, और बड़े प्रतिष्ठित और जेन्टिलमैन अर्थात् शरीफ़ आदमी कहलाते हैं। परन्तु इन बड़े २ भलेमानस और शरीफ़ जेन्टिलमैन कहलाने वालों की तुलना में एक २ गुंडा वा डाकू वा जुआरिया जो कई और बातों के विचार से चाहे उनकी अपेक्षा अच्छा भी हो, वह धन हीन अथवा अपने काम के बदनाम होने के कारण लोगों में जैसे एक ओर वह इज़्ज़त और सन्मान् लाभ नहीं करता, जो उपरोक्त जन लाभ करते हैं, वैसे ही उनकी न्याईं लोगों में शरीफ़ भलामानस और जेन्टिलमेन भी नहीं कहलाता। इस कुल तत्व को सन्मुख लाकर एक तत्व-दर्शी मनुष्य यह भलीभांत उपलब्ध करता है, कि जब तक किसी कहलाने वाले गुंडे वा कहलाने वाले भले मानस का लक्ष्य नीच ही रहता है अर्थात् धन, मान,

बड़ाई, उपाधि, पद और शारीरिक सुख और प्रतिशोध आदि की तृप्ति ही उनका मुख्य उद्देश्य रहता है, तब तक उनके जीवनों की गति नीच ही रहती है और उन में पाप और दुराचार के विचार से भी केवल अधिक वा कम दर्जे का ही अन्तर रहता है। यदि हम किसी हस्पताल में जाकर देखें, कि एक कमरे में जो कई एक बीमार पड़े हुए हैं, उन सब को ही बुखार चढ़ा हुआ है, अर्थात् किसी को १०२, किसी को १०३, किसी को १०४ और किसी को १०५ दर्जे का बुखार है, तो जैसे उनके सम्बन्ध में यह कह सकते हैं, कि यद्यपि इनके ज्वर के दर्जे में अवश्य कुछ २ अन्तर है, परन्तु वास्तव में वह सारे के सारे ही ज्वरग्रस्त हैं, वैसे ही इस संसार में जो जन केवल अपनी वासनाओं और उत्तेजनाओं की तृप्ति ढूंढने में ही रत हैं, और केवल उन्हीं की तृप्ति को अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य समझते हैं, उनके एक वा दूसरे प्रकार के पाप वा दुराचारों में अवश्य अन्तर हो सकता है, और एक प्रकार के पापों में भी कितनों में दर्जे का अन्तर हो सकता है, परन्तु वह सभी अपने नीच लक्ष्य और इसीलिए नीच गतियों के विचार से एक ही राह के मुसाफ़िर होते हैं। ऐसे जन चाहे अपनी तरह के लोगों में भलेमानस, शरीफ़, आदि भले नाम से पुकारे जाते हों, और चाहे गुण्डे आदि किसी

हुए नाम से, परन्तु वास्तव में वह सब एक ही नीच लक्ष्य के अवलम्बी होते हैं ।

नीच लक्ष्य रखकर कोई आत्मा सत्य धर्म्म अथवा उच्च जीवन लाभ नहीं कर सकता। देव धर्म्म के विना दुनिया में जितने धर्म्म मत प्रचलित हैं, उन में से कोई ऐसा नहीं, कि जिस में उच्च लक्ष्य, उच्च जीवन और उच्च गतियों और नीच लक्ष्य, नीच जीवन और नीच गतियों के फलों आदि के विषय में कोई सत्य शिक्षा पाई जाती हो। इस जीवन विषयक तत्व ज्ञान के न होने से पृथिवी के नाना प्रकार के सम्प्रदाय एक दूसरे की तुलना में अपनी २ श्रेष्ठता की झूठी डींग मारकर भी प्रकृत जीवन पथ से भ्रष्ट पाए जाते हैं। और करोड़ों मनुष्य उच्च लक्ष्य के स्थान में केवल नीच लक्ष्य के अनुगत होकर अपने जीवन की अमूल्य पूंजी को रात दिन विनष्ट करते हैं। ऐसा हो, कि नीच और उच्च लक्ष्य विषयक ज्ञान की ज्योति अधिक से अधिक फैले और उसके फैलाने के लिए योग्य आत्मा उत्पन्न हों, और देव समाज के सेवकों को अधिक से अधिक अपनी अवस्था का बोध हो।

रायपुर ज़िला अम्बाला में उपदेश।

(जीवन पथ, मार्गशिर सं० १९६१ वि०)

१३ नवम्बर सं० १९०४ ई० को प्रातः काल ७ बजे भगवान् देवात्मा ने अपने सेवकों और श्रद्धालुओं को अपने उपदेश से कृतार्थ किया। इस उपदेश में उन्हों ने प्रकाशित किया, कि सारी प्रकृति में दो प्रकार के दृश्य देखे जाते हैं। जहां रौशन तस्वीरें हैं, वहां काली तस्वीरें भी हैं। और यह दोनों एक नहीं। इस प्रकृति के चार बड़े विभाग हैं, अर्थात् भौतिक जगत्, उद्भिद् जगत, पशु जगत् और मनुष्य जगत् । इन चारों जगतों में ही दोनों प्रकार की तस्वीरें हैं। एक मकान ऐसा है, जिस में क़लई और रंग हुआ २ है, और एक और मकान है, कि जिस की दीवारों पर गौवर की पाथियां चिपटी हुई हैं, यह दोनों एक नहीं। उद्भिद् जगत् में एक ओर गेहूं आदि के पौदे हैं, कि जिन से मनुष्य का शरीर पलता है, और दूसरी ओर धतूरे आदि के पौदे भी हैं, कि जिन का विष मनुष्य की मृत्यु का कारण होता है। पशु जगत् में गौ, भैंस, घोड़ा, गधा और बकरी आदि हितकारी पशु भी हैं, और शेर, भेड़िया और सांप आदि की क़िस्म के हिंसक और हानिकारक पशु भी हैं। जहां ऐसे पशु भी हैं, कि जो केवल औरों को खाकर जीते हैं, वहां ऐसे पशु भी हैं, कि जो औरों

की सेवा करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य जगत् में भी दोनों प्रकार के मनुष्य हैं। झूठे, धोखेबाज़, निर्दयी, चोर और डाकू आदि किस्म के मनुष्य हैं, कि जो दूसरों को हानि पहुंचाकर खुशी हासल करते हैं, और ऐसे मनुष्य भी हैं, कि जो दूसरों के हित और सुख के लिए एक वा दूसरी प्रकार का त्याग स्वीकार करते हैं। नेचर में जहां खुदग़रज़ी है, वहां पर सेवा भी है। एक २ चिड़िया जो सख्त गरमी के दिनों में हांपती हुई कहीं से कोई दाना उठाकर लाती है, और आप उसे न खाकर अपने बच्चे को खिलाती है, यह नेचर में पर के लिए त्याग के भाव का प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। चिड़िया अपने बच्चों से कोई दुनियावी ग़रज़ नहीं रखती, कि यह बड़े होकर मेरी यह वा वह सेवा करेंगे, किन्तु केवल वात्सल्य भाव से ही उसकी पालना करती है। तब प्रकृति में दोनों प्रकार के दृश्य वर्तमान हैं, अर्थात् विनाश-कारी भी और विकासकारी भी। अब यह मनुष्य के लिए है, कि उन्हें पहचानकर अपने लिए चाहे विनाश-कारी पथ अवलम्बन करे और चाहे विकासकारी।

मनुष्यों में योग्यता होने से उच्च संग के प्रभावों से बहुत परिवर्तन आ सकता है। देव समाज में ऐसे सेवक हैं, कि जो संगत में आने से पहले शिकारी थे, व्यभिचारी थे, राशी और ठग थे, कपटी और छली थे,

इत्यादि २; परन्तु देव धर्म्म प्रवर्तक की ज्योति और शक्ति के कार्य्य से उनके भीतर की यह नीचता दूर हुई है, और उसके स्थान में कई एक सद्भाव उनके भीतर उत्पन्न हुए हैं। तब नेचर के इन नियमों को तुम लोग पहचानो और जो पूर्ण धर्म्मावतार तुम्हें मोक्ष और जीवन दान देने के लिए प्रगट हुआ है उसकी शरण लेकर उसके इस महा दान को लाभ करने के योग्य बनो।

फिर भगवान् देवात्मा ने ईश्वर के कल्पित विश्वास की भी बहुत अच्छी हक़ीक़त ज़ाहर की। उन्हों ने बहुत से दृष्टान्तों के द्वारा दिखलाया, कि नेचर में एक दूसरे के विरुद्ध ऐसे दृश्य वर्तमान हैं, कि यदि उन सब को उत्पन्न करने वाला ईश्वर को माना जावे, तो वह ईश्वर ऐसा बन जाता है, कि जिस के भीतर कोई बुद्धि नहीं है। एक बच्चा जो अभी मां का दूध पीता है, उसे सांप डसकर मार देता है, उधर मां के स्तनों से ईश्वर की इच्छा के अनुसार दूध भी जारी रहता है, और इधर ईश्वर की ही आज्ञा से सांप उस बच्चे को मारने का काम भी कर देता है। क्या यह कोई अक़्लमन्दी और हिकमत की बात है? इसी सिलसिले में उन्हों ने कर्म्मवादियों अर्थात् पुनर्जन्म के मानने वालों के विश्वास की हक़ीक़त भी ज़ाहर की, कि अगर यह कहा जावे, कि ईश्वर किसी मनुष्य को शेर वा सांप की यूनि में इस

लिए भेजता है, कि उसे उसके कर्म्मों का दण्ड दिया जावे, तो प्रश्न यह है, कि ईश्वर का यह दण्ड देना उस मनुष्य के सुधार के लिए है, या उसे और बिगाड़ देने के लिए है। यह सच है, कि जो शेर या सांप बनकर जैसे अपने कर्म्मों से औरों का नाश करता है, वैसे ही अपना भी। तब ईश्वर के दण्ड देने का बुरे के भिन्न कौनसा भला उद्देश्य पूरा हुआ ?

१४ नवम्बर सं० १९०४ ई० की प्रातः काल को ७ बजे के समय भगवान् देवात्मा ने एक और सभा की और उस में एक हितकर उपदेश दिया। इस उपदेश में उन्हों ने एक २ सेवक को देव समाज में आने से जो नाना प्रकार के उच्च अधिकार प्राप्त होते हैं, उन का वर्णन किया, यथा :—

(१) जिस महा दुर्लभ ज्ञान की यहां शिक्षा मिलती है, वह कहीं नहीं मिलती। यह ज्ञान शिक्षा नेचर के सम्बन्ध में है, आत्मा के सम्बन्ध में है, उसकी नीच और उच्च गतियों के सम्बन्ध में है, और नाना यज्ञों के सम्बन्ध में है, इत्यादि २।

(२) समाज में रहकर एक २ सेवक मानो किले में रहता है। किले में रहने से यह मुराद है, कि उसके भीतर की प्रकृति और विनाशकारी सम्बन्धों से उसके विनाश के लिए जो गोलियां चलती हैं, उन से रक्षा

पा सकता है। कितने ही जन जो इस क़िले से निकले वा निकाले गए हैं, वह दिनों दिन नीच बनते गए हैं।

(३) इस क़िले में रहकर न केवल उन पापों से एक २ सेवक बचा रहता है, कि जिन से बचकर वह इस में प्रवेश करता है, किन्तु और भी कितने ही पापों से धीरे २ उद्धार पाने का अवसर पाता है।

(४) समाज के उपकारी आत्माओं से दुख, बीमारी और विपद आदि में एक दूसरे को सहायता मिलती है।

(५) योग्यता होने पर बहुत से नीच गति विनाशक बोध और उच्च गति विकासक अनुराग लाभ करने का अवसर मिलता है।

(६) नाना प्रकार की कुरीतियों से बचने का अवसर मिलता है।

(७) कितने ही पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को विद्या का दान मिलता है।

(८) ऐसी बिरादरी मिलती है, कि जिस में पहली बिरादरी की तुलना में विवाह के लिए अच्छे वर और कन्या मिल सकते हैं; और पुरानी बिरादरी की तुलना में बहुत कम ख़र्च से विवाह हो जाते हैं। इत्यादि २।

फिर सेवकों की ज़िम्मेवारी के सम्बन्ध में भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया, कि जो जन समाज में प्रवेश करते हैं, उन्हें यह समझना चाहिए, कि उन्हें इसलिए समाज

में लिया गया है, कि वह अपने और औरों के हित के लिए यत्न करेंगे। इसके विरुद्ध किसी को इसलिए समाज में ग्रहण नहीं किया गया, कि वह अपनी नीचता को समाज में फैलाएगा, और यदि वह किसी कुल वा धन वा पद आदि के विचार से " बड़ा " ख़याल किया जाता हो, तो वह अपने किसी साथी सेवक को इसलिए घृणा करेगा, कि वह किसी ऐसे विचार से छोटा समझा जाता है। प्रत्येक सेवक को समाज के भीतर बहुत नम्र होकर रहने की आवश्यकता है। आकड़ और अहंकार रखकर वह अपना कुछ भला नहीं कर सकता। इसी प्रकार सेवकों को अपनी राय को यथा आवश्यक औरों की राय के आगे भेंट करके वाध्यता के अत्यन्त हितकर नियम के ग्रहण करने की आवश्यकता है, क्योंकि उस के विना किसी सोसाइटी का काम नहीं चल सकता। शोक कि हमारे देश में इस प्रकार की शिक्षा कभी प्रचलित नहीं हुई! जापानियों में इस वाध्यता के भाव ने विकसित होकर उन्हें किस क़दर शक्तिशाली बना दिया है। कुछ दिन हुए जापान के एक अफ़सर ने अपने सिपाहियों को कहा, कि मैं अगर मारा जाऊं, तो मुझ से नीचे का अफ़सर कमांड करेगा, वह अगर मारा जाए तो उस से नीचे का कमांड करेगा, और जब वह मर जाए तो उसके नीचे का कमांड करेगा, यहां तक

कि अगर दो सिपाही भी रह जाएं, तो जिस का दर्जा बड़ा है, वह हुकम देगा, और दूसरा मानेगा। हमारे देश में कुनवे और विरादरियां हैं; परन्तु कोई एक दूसरे की नहीं सुनता। गत सेवक व्रत पर जिन छै महा पापों* का वर्णन किया गया था, वह बहुत से सेवकों में भरे हुए हैं। ईर्षा, द्वेष और कलंकप्रयोग आदि उनके भीतर वर्तमान हैं। उन से दश मोटे २ पाप अवश्य छूट गए हैं, परन्तु उन छै पापों के पापी समाज में बहुत नीचता फैलाते हैं। उन से सब को उद्धार पाने की आवश्यकता है। उन से उद्धार पाकर ही उनका अपना सच्चा भला हो सकता है, और वह समाज के हितकर अंग बन सकते हैं। इसके भिन्न प्रत्येक सेवक को यह भी सोचना चाहिए, कि समाज की उन्नति के लिए मैंने क्या किया है? केवल नियत दान देदेना काफ़ी नहीं। और समाजों में भी लोग चन्दा दे देते हैं, और हमारी समाज में भी कई बाहर के लोग दान करते हैं। यह देखने की आवश्यकता है, कि क्या मैंने समाज की उन्नति के लिए कोई नया श्रद्धालु वा सेवक बनाया है, अथवा अपने धन वा अपनी धरती वा विद्या वा उपदेशों आदि से समाज की कोई सेवा की है?

---

* अर्थात्, ईर्षा, कलंक प्रयोग, निन्दा, अहं जनित दुश्चिन्ता, द्वेष, अबाध्यता।

शिष्य सेवक के लक्षणों के सम्बन्ध में भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया कि :—

(१) शिष्य के भीतर अपने गुरु के सम्बन्ध में सत्य मूलक गाढ़ विश्वास की आवश्यकता है।

(२) नीच जीवन से मोक्ष और उच्च जीवन की प्रबल आकांक्षा की आवश्यकता है।

(३) पर हित साधन की आवश्यकता है।

(४) मूल सम्बन्धी के सम्बन्ध में गाढ़ श्रद्धा और अनुराग की आवश्यकता है। जैसे सांसारिक सम्बन्धियों का दुख सुख दिल को छूता है, वैसे ही उनका दुख सुख दिल को छूए, इत्यादि २।

इस सिलसिले में पूजनीय भगवान् ने फ़रमाया, कि अपने पहले तजरुबे को सदा सन्मुख रखना चाहिए और देखना चाहिए कि मैं उनकी शरण में आकर अब तक बेहतर बना हूं, वा बुरा बना हूं। मुख़ालफ़ों के दमझांसे में आकर अपने साक्षात् तजरुबे के विरुद्ध गुमराह नहीं बनना चाहिए, और उस ब्राह्मण की मिसल नहीं होना चाहिए, कि जो बकरी लिए जाता था, और कुछ ठगों ने उसकी बकरी को कुत्ता ज़ाहर करके उस से वह बकरी ठग ली थी। गुरु के प्रति गाढ़ विश्वास, अनुराग और उनके अनुगामी होने से ही शिष्य के

भीतर वह ज्योति और शक्ति आ सकती है, जो उन में है, और वह उच्च बोध और अनुराग मिल सकते हैं, जो उन में वर्तमान हैं ।

भगवान् देवात्मा की सत्य धर्म्म शिक्षा ।

(जीवन पथ, वैशाख सं० १९६२ वि०)

" आत्मानं सततं रक्षेत् " देव धर्म्म प्रवर्तक की यह शिक्षा है, कि केवल नीच वासनाओं की तृप्ति और नीच सुखों के लिए न जीवो, और उन्हें अपने जीवन का लक्ष्य न बनाओ; नहीं तो नाना प्रकार की नीच गतियों को प्राप्त होकर और अपनी शक्ति को धीरे २ खोकर और नाना सुखों के भागी बनकर एक दिन अपने आत्मा समेत बिलकुल नष्ट हो जाओगे । आत्मा को मुख्य जानो और उसके जीवन के सम्बन्ध में उदासीन मत रहो, किन्तु उसके विनाश और विकास के सम्बन्ध में नीच और उच्च गतियों का अति दुर्लभ सत्य ज्ञान लाभ करके और जीवन स्रोत से जुड़कर जीवन लाभ करने का उपाय करो । उन से मोक्ष दायक उच्च घृणा शक्तियों को लाभ करके नीच गतियों से मोक्ष पाओ । विकासकारी अनुराग शक्तियों को लाभ करके उच्च अथवा धर्म्म जीवन में विकास लाभ करो । ऐसी अवस्था में पहुंचने से तुम्हें जो शान्ति और विविध प्रकार का

आनन्द वा रस मिलेगा, वह जैसे अति उच्च और पवित्र होगा, वैसे ही वह तुम्हारे आत्मा के लिए भी सब प्रकार से हितकर होगा। फिर अन्य सब सुख जो उच्च जीवन के विरोधी न हों, वह भी तुम्हारे लिए हितकर बन जाएंगे। नहीं तो केवल नीच वासनाओं और नीच सुखों के पीछे जाकर और नीच गति परायण बनकर जब एक दिन तुम अपने सारे अस्तित्व का ही नाश कर लोगे, तो फिर कभी भी तुम न कोई सुख पा सकोगे, और न कोई रस। इसीलिए कहा गया है, कि "आत्मानं सततं रक्षेत्" अर्थात् अपने आत्मा के जीवन की सदा रक्षा करनी चाहिए। सच्चे और पूर्ण धर्मावतार और जीवन दाता के शरणापन्न होकर उनकी जीवन-दायिनी ज्योति और शक्ति के लाभ करने से, प्रत्येक अधिकारी आत्मा को उपरोक्त मोक्ष और उच्च जीवन की प्राप्ति हो सकती है।

(जीवन पथ, ज्येष्ठ सं० १९६२ वि०)

" धर्मो रक्षति धार्म्मिकम् " अर्थात् धर्म्म धार्म्मिक की रक्षा करता है। धार्म्मिक कौन? जो किसी धर्म्म सम्बन्धी नियम की पालना करता है और किसी धन, वा शारीरिक सुख, वा मान, वा बड़ाई आदि के लालच वा किसी भय में पड़कर उसे परित्याग नहीं करता। सब लालचों में धन, मान और बड़ाई का लालच मनुष्यों

पर प्रायः बहुत अधिकार रखता है, और उन्हें नाना प्रकार के पापों में प्रवृत्त होने के लिए तैयार करता है। जीविका आदि के लिए धन कमाने की आवश्यकता हो सकती है, परन्तु मनुष्य को कोई ऐसी जीविका वा वृत्ति ग्रहण नहीं करनी चाहिए, जो धर्म्म के विरुद्ध हो, और उस से उसके अपने अस्तित्व वा किसी और को किसी प्रकार की हानि पहुंचती हो। उसे यह पूरा २ विश्वास रखना चाहिए, कि धर्म्म के नियमों की रक्षा करके बखूबी रोज़ी चल सकती है, और परिश्रमी मनुष्य भूखा नहीं मरता।

धर्म्म और अधर्म्म सम्बन्धी जब दो रास्ते वर्तमान हैं, और दोनों के फल आत्मा के लिए एक नहीं, किन्तु जुदा २ हैं, अर्थात् धर्म्म के फल जीवन प्रद, कल्याण-कारी और उच्च सुखकारी और अधर्म्म के फल जीवन विनाशक और हानिकारक और अन्त में दुखदाई हैं, तो फिर जिसे सत्य धर्म्म विषयक ज्योति मिली हो, उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है, कि वह धर्म्म पथ के ग्रहण करने में वृथा अविश्वास और सांसारिक पदार्थों के लालच और भय में पड़कर धर्म्म को परित्याग न करे, किन्तु दृढ़ और अटल विश्वास रखकर केवल धर्म्म का साथ दे, और फिर उस को खुद अपने ही तजरुबे से मालूम हो जाएगा, कि धर्म्म का साथ देने से धर्म्म भी उनका

साथ देता है, और यह वचन, कि " धर्म्मों रक्षति धार्म्मिकम् " सर्वदा प्रत्येक देश और प्रत्येक स्थान और प्रत्येक मनुष्य के लिए सत्य प्रमाणित होता है।

हाल में एक दस वर्ष का लड़का हैज़े से मर गया है। कहा जाता है, कि वह बीमार होने से आठ दस दिन पहले से कई दिन की बासी और बिगड़ी हुई पंजीरी और मैदे के बासी और ख़राब लड्डू खाता रहता था। इन बासी और ख़राब चीज़ों के लगातार खाने और बहुत खा जाने से उसके पेट को सख़्त हानि पहुंची। हैज़े के जीवाणु उत्पन्न हुए, और इन विनाशकारी जीवाणुओं ने उस बालक के जीते जागते शरीर का थोड़ी सी देर में ख़ातमा कर दिया। बच्चा मीठे के लालच में अपनी ज़बान को बेशक तृप्ति देता रहा, परन्तु उसके द्वारा अपने जीवन्त शरीर का नाश कर बैठा। एक २ मक्खी शहद के लालच में जब उसके खाने के लिए किसी शहद के बर्तन पर जा बैठती है, तो वह मूर्ख उस में फंसकर और उड़ने की योग्यता खोकर और फिर तड़प २ कर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। मनुष्यात्मा भी जब जीवन विषयक तत्व ज्ञान से अन्धा होकर और वासनाओं की तृप्ति के लालच में फंसकर उन में से किसी के भी अधीन हो जाता है, तो उसके आत्मा का भी यही हाल होता है। धन अथवा नाम और इज्ज़त आदि के लालच में फंसकर लाखों

आत्मा विनष्ट होते हैं। एक २ धन का लालची धन की तृष्णा को इस क़दर बढ़ा लेता है, कि उस पर अपना अधिकार रखने और उसका स्वामी बने रहने के स्थान में उलटा उसे अपने ऊपर अधिकार देकर उसी का दास बन जाता है। और फिर दास बनकर हर रोज़ उसी की सेवा में अपने आत्मा और शरीर को अर्पण कर देता है। और जिस प्रकार एक बहुत बड़ा शराबी नशे का दास होकर लगातार उसी को चाहता है और उसी के नशे में मस्त रहता है, उसी प्रकार यह धन का नशई भी उसी चिन्ता और उसी के ही कार्य्य में, जहां तक सम्भव हो, लिप्त रहना चाहता है। परन्तु इस सब का फल क्या होता है? उसका आत्मा जीवन दायक उच्च लक्ष्य, उच्च संगत, उच्च चिन्ता और उच्च विचार आदि से वंचित रहकर धीरे २ अपनी जीवन प्रद शक्ति को खोता जाता है, और उसके आत्मा में नीचता के जीवाणु उत्पन्न होकर उसके जीवन की पूंजी को खोते चले जाते हैं; और जिस प्रकार क्षयी रोग से धीरे २ शरीर की अथवा घुन के खाते रहने से लकड़ी की अवस्था हो जाती है, उसी प्रकार उसका आत्मा धन अथवा किसी और वासना वा उत्तेजना के अधिकार में रहकर धीरे २ विनष्ट होता चला जाता है। देव समाज में आकर यदि इस महा दुर्लभ और अमूल्य ज्ञान ज्योति

के द्वारा किसी आत्मा के आन्तरिक नेत्र न खुलें, और वह विनाश के विश्वव्यापी नियम के देखने और पहचानने और उस से मोक्ष लाभ करने की आकांक्षा के लाभ करने के योग्य न बने, तो उस से बढ़कर और अभागा कौन हो सकता है? सचमुच अमृत सरोवर के निकट रहकर जो जन केवल विष खाता रहता हो, और अमृत को न पहचानकर विष का ही लालची बनता हो, वह यदि महा अभागा और अन्धा नहीं, तो और कौन हो सकता है?

परोपकार वा परसेवा के साधन।

[जीवन पथ, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन सं० १९६८ वि०]

शारीरिक सेवा।

(१) किसी अधिकारी भूखे को अन्न देना अथवा भूखों के लिए सदाव्रत लगाना।

(२) किसी प्यासे को जल पिलाना, वा प्यासों के लिए छबील लगाना।

(३) किसी अधिकारी वस्त्रहीन को वस्त्र देना।

(४) किसी अधिकारी का कपड़ा सी देना।

(५) किसी अधिकारी के मैले वस्त्र धो देना।

(६) किसी अनाथ बच्चे की पालना करना और

उसकी नाना आवश्यकताओं में सहाय करना।

(७) अनाथों के लिए अनाथालय स्थापन करना।

(८) किसी निर्धन रोगी की मुफ़्त चिकित्सा करना।

(९) किसी रोगी को उसके दामों से दवाई ख़रीद कर ला देना।

(१०) किसी रोगी को किसी हस्पताल आदि से दवाई ला देना।

(११) किसी निर्धन रोगी को अपने पास से दवाई ख़रीद कर ला देना।

(१२) रोगियों के लिए कोई औषधालय खोलना।

(१३) अधिकारी रोगियों की शुश्रूषा करना।

(१४) किसी अधिकारी थके मांदे की मुट्ठी चापी करना।

(१५) गर्मी के दिनों में यथावश्यक किसी अधिकारी को पंखा करना।

(१६) सरदी के दिनों में यथावश्यक किसी अधिकारी के लिए आग की अंगीठी जलाकर देना।

(१७) गर्मी के दिनों में मामूली पानी के सिवाय यथावश्यक बरफ़, शरबत, सोडा, लेमोनेड आदि से किसी अधिकारी की सेवा करना।

(१८) आवश्यकता के अनुसार किसी अधिकारी के स्नान के लिए गर्म, ठंडा वा ताज़ा जल मौजूद करना।

(१९) किसी अधिकारी मुसाफ़िर वा अतिथी के ठहरने के लिए मकान का इन्तिज़ाम कर देना।

(२०) कोई ऐसी सराय वा धर्म्मशाला बना देना, जिस में अतिथी और मुसाफ़िर लोग आराम के साथ ठहर सकें।

(२१) कोई ऐसा कुआं वा तालाव खुदवा देना, जिस के जल से साधारण लोग लाभ उठा सकें।

(२२) उपरोक्त प्रकार की आवश्यकताओं में यथा सामर्थ्य धन से सहाय करना।

(२३) किसी अधिकारी जन की कोई और आवश्यक शारीरिक सेवा अथवा किसी का एक वा दूसरा काम पूरा कर देना, अर्थात् बाज़ार से सौदा ला देना, चारपाई बिछा देना, बिछोना बिछा देना, पानी भर देना, वर्तन साफ़ कर देना, इत्यादि २।

(२४) एक वा दूसरी हितकर वस्तु किसी अधिकारी जन को दान वा उपहार में देना।

मान्सिक सेवा।

(१) किसी मूर्ख वा विद्याहीन को विद्या पढ़ाना।

(२) सामाजिक वा अन्य जनों के लिए कोई विद्यालय वा महा विद्यालय स्थापन करना।

(३) किसी विद्यालय वा महा विद्यालय में धन के द्वारा सहायता करना।

(४) किसी विद्यालय वा महा विद्यालय में विद्या दान देने के लिए अपने आप को भेंट करना।

(५) लोगों में विद्या अनुराग उत्पन्न करने के लिए उन्हें उपदेश देना अथवा इस विषय में कोई निबन्ध लिखना।

(६) मानसिक शिक्षा प्रणाली को उन्नत करने के लिए उपाय सोचना।

(७) विविध प्रकार की विद्याओं अथवा विज्ञान, शिल्प और कला आदि की उन्नति में सहाय करना।

(८) जो लोग विविध प्रकार के कुसंस्कारों में फंसे हुए हैं, उनके उन कुसंस्कारों को दूर करने के लिए यत्न करना, अथवा उन्हें कोई हितकर परामर्श देना।

सामाजिक संशोधन।

(१) नशेदार चीज़ों का सेवन, जुआ, बचपन का विवाह, विवाहों और मृतक संस्कार पर अपव्यय, विवाहों में गन्दे गीत गाना, विधवाओं पर नाना प्रकार के अत्याचार और स्यापा आदि नाना प्रकार की कुरीतियों के दूर करने के लिए यत्न करना।

(२) वृथा वाद विवाद, अनुचित मुक़दमे बाज़ी, परस्पर अनुचित फूट आदि के दूर करने के लिए चेष्टा करना।

(३) लोगों को अपनी बातचीत और उपदेश आदि से इन बुराइयों से बचने के योग्य बनाना।

(४) जो लोग इस प्रकार का काम करते हैं, उनको अपने तन, मन और धन से सहायता करना।

(५) ऐसी पुस्तकें और ऐसे पत्र (रिसाले) और अखबार लिखना कि जिन में ऐसी बुराइयों के बुरे फलों का वर्णन हो।

(६) ऐसी पुस्तकों और पत्रों आदि के बेचने में सहाय करना।

(७) ऐसी पुस्तकों और रिसालों को ख़रीद कर मुफ़्त बांटना।

(८) ऐसी पुस्तकों और रिसालों के छपवाने में धन से सहायता करना।

*आध्यात्मिक सेवा।

(१) भगवान् देवात्मा की देव ज्योति और देव तेज के द्वारा अपने भीतर नाना प्रकार की नीच गति विनाशक घृणा शक्तियों और उच्च गति विकासक अनुराग शक्तियों को लाभ करके औरों के भीतर उनको उत्पन्न करने के लिए यत्न करना।

(२) ऐसे परम हितकर काम के लिए अपने जीवन

---

* आध्यात्मिक सेवा, शारीरिक, मानसिक आदि सब सेवाओं से मुख्य सेवा है, जो लोग इस सेवा में अपनी शक्तियों को खर्च करते हैं। वह सब से बढ़कर अपने जीवन को विकसित और सफल करते हैं।

की समस्त शक्तियों को भेंट करना।

(३) जो लोग ऐसा काम कर रहे हैं, उनको तन, मन, धन और धरती आदि के द्वारा सहायता करना।

(४) आध्यात्मिक जगत् के सूर्य्य भगवान् देवात्मा और उनकी स्थापन की हुई देव समाज की महिमा का प्रचार करना, और लोगों के अन्तर ऐसे जीवन दाता गुरु और उनकी हितकर समाज के लिए श्रद्धा का भाव और उनके साथ जुड़ने की अभिलाषा उत्पन्न करना।

(५) ऐसे निबन्ध और पुस्तकें आदि लिखना और छापना कि जिन के पाठ से लोगों के अन्तर सच्चे धर्म्म जीवन लाभ करने की आकांक्षा उत्पन्न हो, अथवा जिन के पाठ से भगवान् देवात्मा की अद्वितीय धर्म्म शिक्षा को जानने का उन्हें अवसर मिले।

(६) ऐसी पुस्तकों को बेचना।

(७) ऐसी पुस्तकों को ख़रीद कर अधिकारी जनों में मुफ़्त बांटना।

(८) ऐसी पुस्तकों के छपवाने में विविध प्रकार की सहायता करना।

(९) धर्म्म प्रचार के सर्व्वोच्च कार्य्य के लिए लोगों से दान इकट्ठा करना।

(१०) ऐसे सच्चे कार्य्य के लिए कोई मन्दिर वा आश्रम बनवा देना वा ऐसे मन्दिर वा आश्रम के बनने

में सहायता करना।

(११, अधिकारी जनों के साथ उनके धर्म्म पथ में सहाय होने के लिए पत्र व्यवहार रखना।

(१२) विशेष २ सम्बन्धियों और मित्रों आदि के आध्यात्मिक हित के लिए अथवा विशेष २ क्षेत्रों में देव समाज के कार्य्य की उन्नति के लिए मंगल कामना का साधन करना।

पशु जगत् के सम्बन्ध में।

(१) गौ, बैल, भैंस, घोड़े, ऊंट, खच्चर, भेड़, बकरी आदि हितकर पशुओं के लिए अपने आहार में से प्रति दिन कुछ भाग उनके हित के लिए निकालना।

(२) प्यासे पशुओं को पानी पिलाना।

(३) सुन्दर पक्षियों आदि को चोगा और पानी देना।

(४) कोई ऐसा कुंड वा तालाब आदि बनवाना, जहां से हितकर पशुओं को पानी पीने का अवसर मिल सके।

(५) हितकर पशुओं के वास स्थान को साफ़ और ठीक अवस्था में रखना।

(६) उन्हें उन की अवस्था का विचार करके स्नान कराना।

(७) उनकी स्वास्थ्य का विचार करके उन्हें आव

श्यक व्यायाम कराना ।

(८) उनके शरीर को मलना और साफ़ रखना ।

(९) उनके शरीर पर हाथ आदि फेरकर उन्हें प्यार करना ।

(१०) गर्मी के समय उन्हें छाया में रखने का प्रबन्ध करना । सर्दी के समय उनकी आवश्यकता के अनुसार उन्हें धूप में अथवा किसी ऐसे मकान में रखने का प्रबन्ध करना, जहां उन्हें सर्दी न लगती हो ।

(११) उनकी रोगी अवस्था में आवश्यक चिकित्सा का प्रबन्ध करना ।

(१२) लूले, लंगड़े और वृद्ध पशुओं की रक्षा और सहायता के लिए पशुशाला स्थापन करना ।

(१३) यदि वह आपस में लड़ रहे हों, तो उन्हें लड़ने से हटा देना ।

(१४) हितकर पशुओं की हिंसक पशुओं से रक्षा करना ।

(१५) हितकर पशुओं की नसल को बढ़ाना ।

(१६) औरों के भीतर पशुओं की सेवा का भाव उत्पन्न करना, और जीव हत्या और मांसाहार के पाप से लोगों में घृणा उत्पन्न करना ।

उद्भिद् जगत् के सम्बन्ध में ।

(१) ऐसे पौदे लगाना जो सुन्दर पत्ते रखते हों

अथवा सुन्दर पुष्प, फल और छाया आदि देते हों।

(२) ऐसे पौदों को पानी देना।

(३) उन के लिए अच्छी मट्टी और खाद बहम पहुंचाना।

(४) पौदों और उनके गमलों को धोकर साफ़ करना और गमलों को यथावसर रंगना।

(५) पौदों की किआरियों की मट्टी को यथावश्यक खोदकर नरम करना।

(६) पौदों की अवस्था के अनुसार सख़्त सर्दी और सख़्त धूप से उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना।

(७) पौदों के पास जो निकम्मी घास उग आती है, उसे निकाल देना।

(८) एक मौसम के पौदों के शेष हो जाने पर उन के स्थान में नए पौदे लगाना।

(९) पौदों के ज़रूरी बीजों को सम्हाल कर रखना और उन्हें मुनसिब मौसम में बोना।

(१०) पौदे अथवा उनके बीज औरों को दान करना।

(११) अच्छे २ फूलों वा फलों को औरों को उपहार म देना।

(१२) उद्भिद् जगत् प्रसूत अनाज, फल, तरकारियं और वस्त्र आदि अधिकारी जनों को दान करना।

(१३) उद्भिद् जगत् प्रसूत औषधियां दान करना।

(१४) पौदों की नसल को बढ़ाना ।

(१५) उद्भिद् जगत के सम्बन्ध में अपने ज्ञान को उन्नत करके औरों के ज्ञान को उन्नत करना ।

(१६) औरों के भीतर उद्भिद् जगत् की सेवा का भाव पैदा करना ।

भौतिक जगत् के सम्बन्ध में ।

(१) स्वास्थ्य-प्रद और सुन्दर मकान बनवाना ।

(२) अपने मकान के फर्श, दीवारों और छत्त आदि को साफ़ रखना ।

(३) जहां कहीं से मकान टूट जाए, उस की मुरम्मत कराना ।

(४) मकान के ज़रूरी हिस्सों में लेपन आदि करना वा कराना ।

(५) जिन दीवारों को लीपना और पोतना आवश्यक हो, उन्हें लीपना और पोतना ।

(६) जिन दीवारों पर क़लई और रंग आदि कराना आवश्यक हो, उन पर क़लई और रंग आदि कराना ।

(७) गर्मी के दिनों में मकान के जिन हिस्सों में पानी का छिड़काव करना आवश्यक हो, वहां छिड़काव करना वा कराना ।

(८) यथावश्यक मकान को मुख़तलिफ़ अच्छे प्रभाव डालने वाली छवियों और उक्तियों आदि से सुसज्जित

करना वा कराना।

(९) मकान में ताज़ी हवा और रौशनी के आने के लिए द्वार और खिड़कियां और रौशनदान आदि बनवाना और उन्हें यथावश्यक खोलना और बन्द करना।

(१०) मैला पानी आदि निकलने के लिए मकान में जो नालियां हों, उन्हें धोकर साफ़ करना।

(११) मलमूत्र की जगहों को पानी आदि से धोकर साफ़ रखना, और वहां पर बदबू को दूर करने वाली फ़िनाइल आदि वस्तु छिड़कना।

(१२) अपने गृह के धातु और मट्टि आदि के बरतनों और अपनी और भौतिक चीज़ों को साफ़ रखना।

(१३) अपनी सब भौतिक चीज़ों को तरतीब की अवस्था में रखना।

(१४) जिस जल और वायु को सेवन करना हो, उसे जहां तक सम्भव हो शुद्ध रखना।

(१५) धन को उचित रूप से कमाकर उसका दान आदि के द्वारा उचित व्यवहार करना।

(१६) भौतिक जगत् के सम्बन्ध में अपने और औरों के ज्ञान को बढ़ाना, और औरों के भीतर भौतिक जगत् के सम्बन्ध में उपरोक्त भाव उत्पन्न करना।

———

विविध हितकर शिक्षा।

(जीवन पथ, आश्विन सं० १९६१ वि०)

१—केवल अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए जो जन किसी प्रकार का काम करता है, वह काम उसका केवल स्वार्थ मूलक होने से उसके आत्मा के लिए किसी प्रकार कल्याणकारी नहीं होता; अर्थात् आत्मा में उच्च जीवन को उत्पन्न नहीं करता। इसलिए प्रत्येक उच्च जीवन अभिलाषी आत्मा के लिए यह आवश्यक है, कि वह अपने नीच स्वार्थ को त्याग कर अपनी समाज की पुष्टि और उन्नति के लिए एक वा दूसरे प्रकार का शुभ काम किया करे। देव समाज के सेवक अपने २ भीतर विचार करके देखें, कि वह अपनी समाज के किस २ विभाग के सम्बन्ध में क्या २ कुछ सेवा अथवा काम कर सकते हैं। समाज के जिन कम से कम चार बड़े अंगों में कोई सेवक अपनी ओर से काम करके सेवाकारी बन सकता है, वह यह हैं :—

(१) देवसमाज, देवसमाज बालक हाई स्कूल, देवसमाज बालिका विद्यालय और देव समाज प्रेस आदि के लिए दान अथवा चन्दा इकट्ठा करना।

(२) देव समाज के स्कूलों अथवा स्थानीय अन्य सेवक सेविकाओं के लिखने, पढ़ने और विद्या लाभ करने में सहायक होना।

(३) देव समाज स्थापक और देव समाज की महिमा और उनके कार्य्य आदि का वर्णन करके अपने पारिवारिक जनों, अपने वाकिफ़ों और अन्य लोगों में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना और उन्हें देव समाज के श्रद्धालु और सेवक बनने के लिए तैयार करना, और पहले श्रद्धालु और सेवकों की उन्नति के सम्बन्ध में किसी प्रकार की योग्यता रखने पर उपदेश आदि का काम करना।

(४) देव धर्म्म सम्बन्धी शिक्षा के किसी विषय का सत्य ज्ञान रखने पर उसके सम्बन्ध में कोई ऐसा निबन्ध वा ऐसी पुस्तक लिखना, कि जो समाज की उन्नति के लिए हितकर हो।

२—जैसे आप किसी की चोरी करना पाप है, वैसे ही किसी और से चोरी कराना अथवा जान बूझकर चोरी का माल मोल लेना वा किसी और प्रकार से चोरी के काम में मदद करना भी पाप है। जैसे किसी का आप व्यभिचार करना पाप है, वैसे ही किसी और से व्यभिचार कराना अथवा किसी ऐसे काम में मदद देना भी पाप है। जैसे किसी का आप जुआ खेलना पाप है, वैसे ही जुआरियों को अपने घर वा किसी और स्थान में बिठाना वा इस काम में मदद करना भी पाप है। जैसे नशे के लिए किसी नशेदार चीज़ का खुद

सेवन करना पाप है, वैसे ही ऐसी चीज़ों को नशे के लिए किसी और को देना अथवा उन्हें बेचना वा मोल लेना भी पाप है। इस प्रकार जैसे मांस और अण्डे वा उन की बनी हुई चीज़ें आप खाना पाप है, वैसे हि यह चीज़ें औरों को खाने के लिए देना वा दिलाना भी पाप है। देव समाज के सेवकों को उपरोक्त विषयों के सम्बन्ध में भली भांत ध्यान रखना चाहिए और अपनी प्रतिज्ञाओं के पालन करने के निमित्त उन्हें ऐसे कार्य्यों से जहां आप बचे रहने की नितान्त आवश्यकता है, वहां औरों की खातर भी उन में सहायक होने के सम्बन्ध में भली भांत चौकस रहना चाहिए। यदि नासमझी से किसी जन से इस प्रकार का कोई दोष होता हो, तो उसे ततकाल हि उस को त्याग कर देना चाहिए।

३–मनुष्य के आत्मा में जो विविध प्रकार की वासनाएं और उत्तेजनाएं वर्तमान हैं, वह यद्यपि उसके धर्म्म पथ में सहाय हो सकती हैं, परन्तु केवल उन्हीं की तृप्ति ढूंडने से कोई मनुष्य अपने जीवन की रक्षा नहीं कर सकता, और अपने आप को नहीं बचा सकता। इसीलिए जिन लोगों का मुख्य लक्ष्य धर्म्म अर्थात् उच्च जीवन की प्राप्ति न हो, किन्तु धन, मान, बड़ाई, प्रशंसा, उपाधि और पद आदि का लाभ करना ही मुख्य उद्देश्य हो, उन के आत्माओं का (चाहे वह कैसे ही

भलेमानस कहलाते हों और मज़हब के नाम से कैसी ही गप्पें मारते हों) धीरे २ क्षय होना और इस लोक अथवा परलोक में पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाना लाज़मी है। इसी प्रकार धर्म्म विषयक कोई सत्य ज्ञान अथवा किसी उचित पुस्तक का पाठ, अथवा किसी उपदेश का श्रवण अथवा उसका औरों के सन्मुख व्याख्यान यद्यपि उचित विधि के द्वारा धर्म्म जीवन के उत्पन्न करने में सहायकारी बन सकता है, परन्तु धर्म्म जीवन से वंचित रहकर और केवल उन्हीं का साधन करके कोई मनुष्य अपने आत्मा की रक्षा नहीं कर सकता और विनाश से मोक्ष नहीं पा सकता।

उपरोक्त तत्व का प्रकृत ज्ञान हो जाने पर प्रत्येक मनुष्य इस सत्य को भली भांति उपलब्ध कर सकता है, कि जिस प्रकार खाने के बर्तन यद्यपि खाना पकाने और खाना खाने में अवश्य सहाय हो सकते हैं, परन्तु वह आप किसी मनुष्य की खुराक नहीं बन सकते, और खुराक बनकर किसी को ज़िन्दा नहीं रख सकते, इसी प्रकार नीच लक्ष्य की तुलना में उच्च जीवन को मुख्य लक्ष्य बनाने और उच्च जीवन लाभ करने के बिना कोई मनुष्य धर्म्म के नाम से किसी प्रकार के पाठ, पूजन, उपदेश आदि का साधन करके अपने आत्मा की रक्षा नहीं कर सकता, और विनाश से मोक्ष नहीं पा सकता।

स्वार्थ परता।

(जीवन पथ, भाद्रपद सं० १९६२ वि०)

साधारण मनुष्य पहले पहल जब इस पृथिवी में जन्म लेता है, तो वह केवल स्वार्थ परायण होता है। स्वार्थ परायण होना क्या? अपनी किसी वासना वा उत्तेजना के द्वारा परिचालित होकर केवल उसकी तृप्ति चाहना, और इस तृप्ति के ढूंढने में किसी और की हानि वा पीड़ा आदि की परवाह न करना। ऐसी अवस्था में वह अपने चारों ओर जो २ सामान देखता है, उन में से जिस २ से उसकी अपनी तृप्ति होती हो, वह उसकी ओर आकृष्ट होता है; और अपने आप को तृप्त करना चाहता है। इस स्वार्थ साधन में जब तक उसके भीतर कोई पाप बोध उत्पन्न न हो, तब तक वह स्वभावतः स्वेच्छाचारी रहना चाहता है। और जिस प्रकार एक शेर अथवा भेड़िया भूखा होकर अपनी भूख की तृप्ति के लिए किसी जानवर की ओर लपकता है, और उसे मारकर खा जाना चाहता है, और खा जाता है; और अपनी इस तृप्ति के साधन में उस निर्दोष जानवर को पीड़ा और प्राण हानि की परवाह नहीं करता, उसी प्रकार ऐसा मनुष्य जो केवल स्वार्थ का जीवन रखता है और जिस में पाप बोध नहीं, वह अपने चारों ओर क्या मनुष्य समाज में, क्या पशुओं में, क्या उद्भिद्

और भौतिक जगत् में, जहां कहीं ऐसा सामान मालूम करता है, कि जिस से उसकी एक वा दूसरी वासना अथवा उत्तेजना की तृप्ति होती हो, उस से अपनी तृप्ति करना चाहता है, और ऐसा करने में किसी पाप वा अपराध की परवाह नहीं करता। वह नेचर में पैदा होकर नेचर के हरएक विभाग को और उसके हरएक सामान को अपने काम में लाने अर्थात् अपनी तृप्ति के लिए समझता है; परन्तु आप नेचर के किसी विभाग में काम आ जाने के लिए अपने भीतर कोई ज़रूरत अथवा आकांक्षा अनुभव नहीं करता। इसीलिए ऐसा मनुष्य स्वभावतः स्वार्थ परायण अर्थात् स्वेच्छाचारी, डाकू और दरिन्दा होता है। इस समय हरएक देश में हज़ारों, लाखों और करोड़ों मनुष्य ऐसे मौजूद हैं, जो इस प्रकार की स्वार्थ मूलक दरिन्दों वाली ज़िन्दगी बसर करते हैं, और वह ऐसी ज़िन्दगी बसर करने के लिए उसी तरह लाचार है, जिस तरह एक शेर वा भेड़िया किसी बकरी को खा जाने में अपने आप को लाचार देखता है।

अब ऐसे लोग, जो अपनी विविध प्रकार की नीच ख़्वाहिशों की बहुत ज़बरदस्त ताक़तों के ग़ुलाम हैं, नाम के लिए वह चाहे कोई मत वा मज़हब रखते हों, चाहे किसी प्रकार का साधन अर्थात् पूजा, पाठ, भजन आदि करते हों, चाहे किसी प्रकार का वेष रखते हों, चाहे

किसी ईश्वर वा देवता को मानने वा उसके दर्शन करने का दम भरते हों, चाहे कैसा ही धन वा मान रखते हों, वह ज़रूर दरिन्दे हैं, अर्थात् उनका दिल दरिन्देपन के खासे से भरा हुआ है। बाहर के दण्ड अथवा शारीरिक किसी तकलीफ़ अथवा बदनामी के डर से अथवा किसी २ वासना के अभाव वा उसकी अत्यन्त कमी से, वह चाहे एक वा दूसरे प्रकार के पापों, दुराचारों और जुर्मों में मुबतला न हों, तो भी वह अपनी प्रकृति के विचार से ज़रूर स्वार्थ परायण होते हैं—ज़रूर दरिन्दे अर्थात् हिंसक पशु की न्याईं होते हैं। यही वह अवस्था है, कि जिस से सब प्रकार के अधर्म्म की उत्पत्ति होती है। यही वह अवस्था है कि जिस में, मनुष्य स्वभावतः नेचर के सर्व्व कल्याणकारी विकास के नियम की ओर से अज्ञान, उदासीनता अथवा बग़ावत की अवस्था में रहता है, और महा भयानक अज्ञान के अन्धकार में ग्रस्त अथवा नेचर के विविध सम्बन्धों में अपनी नीच गतियों का दास रहता है, और अपनी जीवनी शक्ति को खोकर और तरह २ के दुख का आप भागी बनकर और औरों को भागी बनाकर और २ नीच होता जाता है और एक दिन अपने अस्तित्व को खोकर बिलकुल नष्ट हो जाता है।

कैसी भयानक अवस्था! इस अवस्था से निकलने

के लिए नेचर में केवल दो उपाय पाए जाते हैं। एक यह कि कोई मनुष्य विकास के क्रम में पड़कर अपनी पैदायश में ही बाज़ भावों के ऐसे बीज रखता हो, कि जो अनुकूल अवस्था में प्रस्फुटित होकर उसे एक वा दूसरे सम्बन्ध में हितकर गति के द्वारा जोड़दें; और वह अपनी गति में जहां एक ओर कुछ न कुछ स्वार्थ परायण जीवन से उद्धार लाभ कर सके, वहां दूसरी ओर नेचर के परम कल्याणकारी विकास के नियम के साथ कुछ न कुछ मेल स्थापन करके अपने एक वा दूसरे सम्बन्ध में भलाई करने और भलाई लाने के योग्य बन सके। यह एक उपाय है। परन्तु ऐसे सात्विक जीवन-धारी भी अत्यन्त दुर्लभ् हैं। दूसरा उपाय यह है, कि साधारण जनों में से जिन २ के भीतर इस प्रकार की कुछ योग्यता आई हो, कि जो एक वा दूसरे सम्बन्ध में अपनी किसी नीच गति का बोध प्राप्त कर सकते हों, और किसी एक वा दूसरे उच्च भाव को अपने भीतर से प्रस्फुटित करके सच्चे सेवाकारी बन सकते हों, उन में ऐसे बोधों और अनुरागों के उत्पन्न और उन्नत करने के लिए उन तक देवात्मा के देव प्रभाव साक्षात् रूप से पहुंच सकें, वा इन प्रभावों को प्राप्त करने वाला कोई और बोधी और दयावान पुरुष उन्हें कृपा पात्र समझकर देवात्मा की देव ज्योति और तेज उन तक

पहुंचाए। अब तुम लोग अपनी २ अवस्था पर विचार करो, और मालूम करो कि तुम अपनी २ पैदायश के विचार से किस प्रकार के आत्माओं में से हो ? क्या तुम खुद अपने जन्म काल से ऐसी योग्यता लेकर जन्मे थे, कि जिस में तुम्हें समय के अनुसार विना देवात्मा को देवज्योति और देव तेज के एक वा दूसरे प्रकार के पाप का बोध होता गया है, और तुम अपने आप अपनी स्वार्थ परायण अवस्था अथवा दरिन्द्र पन की हालत से धीरे २ उद्धार पाते गए, और अपने भीतर से अपने आप एक वा दूसरे हितकर उच्च भावों को उत्पन्न और उन्नत करके अपने विविध सम्बन्धों में सेवाकारी बनते चले गए हो ? और यदि यह बात न हो, जैसा कि नहीं है, तो फिर तुम विना देवात्मा की ज्योति और शक्ति लाभ करने के क्योंकर नीच स्वार्थ की महा विनाशकारी अवस्था से उद्धार लाभ कर सकते हो ? और क्योंकर स्वार्थ से निकल कर अपने हित-कर्ताओं और अपनी समाज आदि के लिए सेवाकारी बन सकते हो ?

खूब याद रक्खो, कि नेचर में विनाश और विकास के नियम अटल हैं। तुम उन से अज्ञानी और उदासीन रहकर उनके असरों से बच नहीं सकते। स्वार्थ परायण रहकर तुम नेचर के विकासकारी नियम को पालन नहीं

करते; किन्तु उसके विरुद्ध चलकर नेचर के प्रत्यक विभाग के सम्बन्ध में हानिकारक प्रमाणित होते हो, और इसीलिए विनाश के नियम को पूरा करते हो, और जब तुम नेचर में जन्म लेकर और उसके एक अंग वा अंश होकर उसके विकास में सहायकारी अथवा सेवा-कारी नहीं बन सकते, किन्तु अपने स्वार्थ के बस होकर उलटा हानिकारक बनते हो, तो फिर तुम स्वार्थ परायण रहकर अपने अस्तित्व की रक्षा और उन्नति के नियम को भंग करते हो, और इसीलिए तुम अपने अस्तित्व की रक्षा की कदापि आशा नहीं कर सकते। क्या तुम इस तत्व के देखने के लिए काफ़ी ज्योति रखते हो? अगर रखते हो, तो तुम फिर स्वार्थ परायण नहीं रह सकते। तुम्हारे लिए अपने महा शत्रु स्वार्थ को घृणा करके, उसे त्याग करना और अपने परम हितकर्ता गुरु और अपनी समाज आदि के सम्बन्ध में कर्तव्य परायण और सेवा-कारी बनना आवश्यक हो जाता है।

मैं धर्म्म साधनों के लिए अपने हृदय को किस रीति से तैयार किया करूं?

(जीवन पथ, ज्येष्ठ सं० १९६३ वि०)

जैसे रोटी पकाने से पहले तवे का गरम होना ज़रूरी है, वैसे हि साधन से पहले साधक के लिए

भगवान् देवात्मा की ज्योति और शक्ति के लाभ करने के निमित्त हृदय का तैयार करना भी ज़रूरी है। यह हृदय की तैयारी क्योंकर की जाती है ? इस प्रश्न के उत्तर में जो बातें जाननी आवश्यक हैं, वह यह हैं :—

पूजनीय भगवान् की छवि के सन्मुख अथवा किसी ऐसे स्थान में जहां उनके चरण पड़े हों, अथवा पड़ते हों, अथवा किसी ऐसी वस्तु पर जिस का उनके श्री चरणों से स्पर्श हुआ हो, अपने सिर को रखकर प्रणाम के द्वारा दीन भाव उत्पन्न करना चाहिए; अर्थात् इस प्रकार सिर रक्खे हुए अपने भीतर बार २ यह प्रार्थना करनी चाहिए, कि "हे जीवन ज्योति के भण्डार ! मैं ज्योति विहीन हूं, तुम ज्योति दाता हो। मुझे तुम्हारी ज्योति की आवश्यकता है। मैं तुम्हारी ज्योति का मुहताज हूं; मुझे तुम्हारी ज्योति प्राप्त हो। हे देव शक्तियों के भण्डार ! मुझ तक तुम्हारी शक्ति पहुंचे। उस से मेरी आत्मिक हित आकांक्षा जाग्रत और उन्नत हो। मैं अपना हित चाहूं, और तुम्हें पूर्ण हितकर्ता रूप में उपलब्ध करूं। जिस से मेरे हृदय का आकर्षण तुम्हारी ओर हो, और मेरे अन्य वासना मूलक आकर्षण मेरे हृदय को तुम से परे अथवा विमुख न करें।" इसप्रकार उतनी देर तक लगातार चिन्तन करते रहना चाहिए, जब तक चित स्थिर न हो जाए, और हृदय नम्र और

सरस होकर देव ज्योति और तेज का आकांक्षी न बन जाए। जब इस प्रकार हृदय की अवस्था हो जाए, कि एक ओर वह अपने आप को जीवन दायक-ज्योति और तेज का मुहताज अनुभव करके दीन, दरिद्र, कंगाल वा भिखारी का रूप धारण करे, और दूसरी ओर स्थिर होकर जीवन दायिनी देव ज्योति और तेज का सच्चा आकांक्षी बने, तब वह किसी सात्विक धर्म्म भाव यथा, विश्वास, श्रद्धा, प्रेम, कृतज्ञता, सेवा, भेंट आदि के उत्पन्न करने के निमित्त जिस २ स्तोत्र, पाठ, विचार, संगीत, प्रार्थना आदि के करने की आवश्यकता है, उसके ठीक तौर से करने की योग्यता लाभ करता है, और अपने साधन को फल दायक बना सकता है। और जैसे तवा चूल्हे पर रहकर जब काफ़ी गरम हो जाता है, तब वह रोटी को भली भांत सेंक पहुंचाकर पका देने की योग्यता लाभ करता है, वैसे हि ऐसा हृदय उन सब साधनों के पूरा करने की योग्यता लाभ करता है, कि जिन के पूरा होने से साधन सफल होता है।

मैं अपने धर्म्म साधनों की सफलता वा निष्फलता को क्योंकर जान सकता हूं ?

साधन के समय जब तक यह लक्षण उत्पन्न न हों, तब तक उसे सफल न समझना चाहिए। यथा :—

(१) पाठ और विचार के समय आत्मा के भीतर

ज्योति अवतीर्ण हो, और साधक की अवस्था के अनुसार उसके भीतर उसके कल्याण के लिए जिस २ सत्य का प्रकाशित होना आवश्यक है, वह भली भान्त प्रकाशित हो, और वह इस ज्योति में सब से पहले अपने ज्योति दाता के सम्बन्ध में अपने किसी अपराध, वा पाप वा अपनी किसी उदासीनता वा नीचता को देख सके।

(२) अपने किसी अपराध, वा पाप, वा उदासीनता, वा नीचता के लिए सचमुच घृणा और दुख अनुभव करे।

(३) उनकी किसी महानता को उपलब्ध करके उन के प्रति श्रद्धा की लहर को अपने हृदय में उत्पन्न होता अनुभव करे, और उस का अपूर्व रस लाभ करे। और लोगों के सन्मुख उन की महिमा के गाने के लिए सच्ची आकांक्षा और उसके गाने में परम सुख अनुभव करें।

(४) उनके शिव वा हित रूप को उपलब्ध करके उनके प्रति अपने भीतर प्रेम की धार निकलती हुई अनुभव करे, और उसके पवित्र उछ्वास से गदगद और उच्च आनन्द से मस्त हो जाए। उसका हृदय उछलने लगे और अपने जीवन दाता के चरणों से जा लिपटे और उसके हितकर नशे से भर जाए।

(५) उसके सम्बन्ध में जो २ पाप वा अपराध वा

उदासीनता आदि दिखाई दे, उस अ सके विकार को दूर करके उनके साथ अपने सम्बन्ध को मेल की अवस्था में लाने की सच्ची आकांक्षा उत्पन्न हो।

(६) उनकी प्रसन्नता और निकटता लाभ करने के लिए जिस २ प्रकार की शुद्ध भेंट वा सेवा करनी आवश्यक है, उस के पूरा करने की सच्ची आकांक्षा उत्पन्न हो।

(७) उन से जो २ बात छिपाकर रखता हो, उस से घृणा पैदा हो, और उनके आगे सरल रूप से सब कुछ बता देने की आकांक्षा उत्पन्न हो।

(८) उन मे उच्च जीवन विषयक महा अमूल्य देव प्रभावों को पाकर उन्हीं को अपना सर्व्वस्व और सर्व्वोच्च सम्बन्धी अनुभव करता हो, और उनके लिए सब प्रकार से सेवाकारी और आज्ञावह बनने में हि अपना पूर्ण हित देखता हो।

यह थोड़े से मोटे २ लक्षण हैं, कि जिन के द्वारा हरएक साधक अपने साधनों की सफलता वा निष्फलता की परीक्षा कर सकता है।

प्राकृतिक सुन्दर उद्भिद् और भौतिक दृश्यों के दर्शन के सम्बन्ध में।

(जीवन पथ, मार्गशिर सं० १९६५ वि०)

भगवान् देवात्मा ने अपनी साप्ताहिक विविध सूचनाओं में उपरोक्त विषयक पर कभी २ जो भाव प्रकाशित किए हैं, वह उन में से उद्धृत करके नीचे लिखे जाते हैं:—

३ अगस्त सं० १९०८ ई० की सूचना में लिखा है:—

वर्षा के हो जाने से इन दिनों चारों तरफ़ बहुत सबज़ी पैदा हो गई है। मेरे सामने का पहाड़ हरी २ घास, झाड़ियों और किसी २ जगह बड़े २ वृक्षों से बहुत सुशोभित दिखाई देता है। बीच २ में छोटे २ निकट और दूर के गाओं के मकानात, और कहीं २ किसी देवी आदि के मन्दिर इस पर्व्वत की सब्ज़ भूमि के बीच में चमकते नज़र आते हैं। इसी पर्व्वत का कुछ भाग जो पान की शकल में कटा हुआ है, मेरे प्यारे इंडिया के रूप की याद दिलाता है। मेरे अपने आश्रम में बहुत सी सब्ज़ घास और बाज़ झाड़ियों के भिन्न नाना प्रकार के और कसरत से फूलदार पौदे उगे हुए हैं, जिन में कितने हि इन दिनों फूल दे रहे हैं। सूर्य्यमुखी के कितने हि पौदे जो अपने २ कद के विचार से मुझ से भी कुछ ऊंचे हैं, पीले रंग के गोल २ और चमकदार फूलों से भरे हुए बहुत हि मनोहर असर

डालते हैं। यदि मैं फ़ोटोग्राफ़र होता, तो इन में से बाज़ पेड़ों का फ़ोटो खैंचता, और वह निश्चय बहुत सुन्दर होता।

गुलाब के भी कितने हि पौदे फूल दे रहे हैं, पहाड़ी और मैदानी मोतिया के पौदों में फूल निकल रहे हैं। ज़ीनिया के फूल भी बहुत से खिले हुए हैं। (मेरे आश्रम के) पश्चिमी बरामदे के पास हि गुलाबांस का एक बहुत बड़ा झाड़ है, कि जिस में हर रोज़ बहुत कसरत से फूल निकलते हैं। इसी बरामदे के दोनों तरफ़ बरामदे की छत से हरे २ फ़रनों के ख़ूबसूरत पौदों की दो टोकरियां हवा के झकोलों से झूलती रहती हैं। मकान के दोनों तरफ़ दो हिस्सों में जो छोटे २ से खेत हैं, उन में से एक तरफ के खेत ख़ासकर बहुत अच्छी हालत में हैं। कहीं एक दो कियारियों में पोदीना ख़ूब ज़ोरशोर से लहलहा रहा है। कहीं उस में से गुज़रकर ख़ुदरौ फूट की कई बेलें फैली हुई हैं. जिन में कहीं २ पीले फूल निकले हुए हैं, और कहीं २ छोटी ककड़ियां लगी हुई हैं, कि जो थोड़े दिनों में पककर फूट बन जाएंगी। परन्तु आशा करनी चाहिए, कि हमारे आश्रम में कोई फूट न डालेंगी। किसी कियारी में गेंदा भरा हुआ है। किसी में मकई के कुछ पौदे, कहीं भिंडीतोरी के कुछ पेड़, कहीं करेले, कहीं आलू, कहीं लोबिया, और कहीं उड़द-मूंग के पौदे

उगे हुए हैं। बाज़ जगह कुछ कद्दू और तोरियों की बेलें हैं, और कितनी हि खाली जगहों में ज़रदालु और आड़ू, अंजीर, सेव और नाशपाती आदि के छोटे २ पौदे भी लगे हुए हैं।

बरसात का मोसम है। प्रायः एक महीने से शायद हि कोई ऐसा दिन गया होगा, जिस दिन कुछ बारिश न हूई हो। ठंडा और शुद्ध और कभी धीमी २ और कभी ज़ोर से हवा चलती रहती है। चारों ओर पहाड़ों पर और कभी २ मेरे मकान के क़रीब तक सफ़ेद, नीले और काले बादल खेलते फिरते हैं। किसी २ समय और किसी २ दिन इन बादलों के बुख़ारात धुन्द वा कुहिर की शकल में इस क़दर चारों ओर छा जाते हैं, कि फिर उन में से सामने के कोई और पहाड़ भी कुछ दिखाई नहीं देते, और कितनी हि मुसलमान औरतें जैसे बुरक़े में छिप जाती हैं, वैसे हि इन खुशनमा पहाड़ों के अच्छे २ चेहरे कुछ देर के लिए मानो बुरक़े में लुक जाते हैं। मैदान की निसबत यहां बारिशें बहुत होती हैं। अतरसों एक रात को प्रायः दो बजे रात से जो बारिश शुरू हुई थी, वह कल कोई ३२, ३३ घण्टे के बाद खतम हुई। इस लगातार बारिश से जैसी कि आशा करनी चाहिए, हमारे आश्रम के कई कमरों की दीवारों का कहीं २ से पलस्तर गिर गया है। उसके भिन्न

कुछ और भी छोटी मोटी हानि हुई है। अगर बारिशों से इस प्रकार की कोई हानि न हुआ करे, तो क्या अच्छा हो।

पिछली मंगल की शाम को जिस समय सूर्य्य छिप रहा था, और वह मेरे सामने के पर्व्वत की ओट में चला गया, उस समय का नज़ारा बहुत हि अजीब था। पहाड़ की चोटी पर और उन से नीचे, और कितनी दूर तक सूर्य्य की किरणों ने पहुंचकर अपने लाल रंग से इस हरे पहाड़, नीले आकाश, और सफ़ेद और भूरे बादलों के साथ मिलकर बहुत मनोहर दृश्य पैदा कर दिया था! बादलों के कितने हि छोटे २ टुकड़ों में किरणों का जो लाल और निहायत चमकदार रंग फूट रहा था, और जो आग के जलते हुए अंगारों के समान प्रज्ज्वलित था और बीच २ में से कितनी हि जगहों में से आसमान का जो नीला रंग दिखाई देता था, और पहाड़ की धार पर हरे २ और ऊंचे २ वृक्षों की एक टेढ़ी कतार जो दूर तक जा रही थी, और उसकी सब्ज़ भूमि आदि ने मिल मिलाकर इस सूर्य्यास्त के समय को ऐसा विचित्र बना दिया था, कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। उसे देखकर मेरे भीतर यह ख़याल पैदा होता था, कि यदि मेरे पास रंगों का ब्रुश सहित एक अच्छा बक्स होता, एक बोर्ड पर कुछ अच्छा मोटा

काग़ज़ चढ़ा होता, और मैं इस समय के दृश्य की वैसी कापी कर सकता, तो वह ऐसी सुन्दर और मुग्धकर होती, कि मैं उसे शिमले की " आर्ट गैलरी " (शिल्प प्रदर्शनी) में भेजकर अवश्य कोई पारितोषक लाभ करता ! मैं इस विलक्षण छवि के नीचे अंग्रेज़ी में यह शब्द ख़ूबसूरत हरफ़ों में लिखता :—

"Sunset at Solon"

अर्थात " सोलन में सूर्य्यास्त "

२४ अगस्त की सूचना में लिखता हूं:—

" ...... पिछले सनीचर को मैंने और आश्रम के कई जनों ने प्रातः काल के समय एक ऐसा मनोहर और सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखा, कि जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था। मेरे आश्रम की पहाड़ी से कुछ नीचे से शुरू होकर दक्षिण की ओर जो पर्व्वत श्रेणी फैली हुई है, उसकी बहुत बड़ी घाटी में प्रायः एक हि ऊंचाई पर कुहिर के भर जाने से पानी की न्याई एक बहुत बड़ी झील सी बन गई थी, कि जो दूर २ तक फैली हुई दिखाई देती थी, और उसके नीचे के कितने हि वृक्ष और खड्ड और गांओं के घर आदि छिप गए थे, और कहीं २ से जैसे स्वच्छ जल में कोई तले को पड़ी हुई वस्तु दिखाई देती है, वैसे हि कितनी हि झाड़ियां आदि चीज़ें दिखाई देती थीं। यह मेरे हृदय के लिए

ऐसी आकर्षणीय प्रतीत होती थी, कि जी चाहता था, कि मैं उस में छलांग मारकर कूद पड़ूं और तैरने लगूं। कुछ देर यह झील दिखाई देती रही। फिर धीरे २ सूर्य्य के उत्ताप से घुल २ कर लुप्त हो गई।

२१ सितम्बर सं० १६०८ ई० की सूचना में लिखा है :—

पर्व्वताश्रम में इन दिनों फूलों की खूब बहार है। चंबेली खिलती है। पहाड़ी मोतिया, जिरेनियम, और गुलाब के कितने हि पौंद भी खूब फूल दे रहे हैं। ज़ीनिय के फूल भी बहुत अरसे से खिले हुए हैं। ईश्क़पेचा की तीन तरह की बेलों से प्रति दिन सुबह को लाल आसमानी और बैंगनी रंग के कई २ तश्तरियां भरकर फूल निकलते हैं। गेंदे के बहुत से पौदे अपने फूलों की जुदा बाहर दिखला रहे हैं। एक गेंदे का बड़ा झाड़ नीचे से लेकर ऊपर तक जिस क़दर फूलों से लदा हुआ है, उन की संख्या तीन सौ से कम न होगी, और वह बहुत हि सुन्दर दिखाई देता है। एक डेलिए के पौदे में कई दिन से कलियां लगी हुई हैं, और उन में से अब एक कली फूल की सूरत में विकसित हो गई है। अच्छा सुन्दर फूल है। डेलिए का यह पहला फूल है, जो इस मौसम में हमारे आश्रम में खिला है। इस फूल के कितने हि और पौदे भी तैयार हो रहे हैं। इसके

भिन्न नरगिस की जो गांठें लगाई गई थीं, उन में भी बहुत से पौदे फूटकर निकल हैं और कोई २ उन में से डेढ बालिश्त के लगभग ऊंचे हो गए हैं, परन्तु उनके फूल देने में अभी बहुत देर मालूम होती है। परसों सुबह एक जन ने अपने गांव से लाकर मुझे नरगिस के फूलों का एक छोटा सा गुलदस्ता उपहार दिया था। वह मेरे खाने की मेज़ पर रक्खा हुआ है और अभी तक अच्छी हालत में है। आश्रम में फ्रांसबीन, भिंडी-तोरी, चिकनी तोरी, लोबिया, घीया कद्दू और मटर और टमैटो अर्थात् अंग्रेज़ी बैंगन आदि की क़िस्म से कई प्रकार की भाजियां भी उत्पन्न हुई हैं और कितने दिनों से मेरी रसोई में काम आती हैं।

श्राद्ध विषयक साधन।

(जीवन पथ, मार्गशिर सं० १९६५ वि०)

[श्रीमती सहायवती के देहान्त के अनन्तर उनके श्राद्ध विषयक अनुष्ठान के दिन भगवान् देवात्मा के उपदेश का सार]

इस पृथिवी में एक काल वह था, कि जब मनुष्य इतना अज्ञानी था; कि उसे यह पता न था, कि मृत्यु से क्या अभिप्राय है। उस काल में जब उसका कोई सम्बन्धी मरता था; तब वह केवल इतना जानने के योग्य

था कि मेरा अमुक सम्बन्धी आंखें निकाले वा बन्द किए हुए मुंह खोले वा बन्द किए हुए चुपचाप पड़ा है—वह बोलता नहीं, खाता पीता नहीं, चलता फिरता नहीं और बस ! इसीलिए उसके मृतक शरीर को न वह गाड़ता था, और न जलाता था, किन्तु अपने घर में अथवा घर से बाहर किसी वृक्ष आदि पर सुरक्षित रखता था, और बीच २ में उस पर हाथ फेरकर प्यार भी करता था। इस से ऊपर की अवस्था में पहुंचकर स्वप्न आदि में किसी सम्बन्धी को देखकर उसे मालूम हुआ, कि स्थूल शरीर किसी और के द्वारा हिलता जुलता, बोलता चालता और विविध काम काज करता है, और वह " और " जब उसे छोड़ देता है, तब वह फिर किसी काम का नहीं रहता। इस ज्ञान को प्राप्त होकर, उस ने उसे भूमि में गाड़ना आरम्भ किया, और वह भी अधिकतर इस खयाल से, कि कहीं उसका कोई दुष्ट सम्बन्धी उसे आकर तंग न करे। इस विश्वास को प्राप्त होकर कि मनुष्य शरीर छोड़कर भी किसी रूप में रहता है, और किसी के लिए हानिकारक और किसी के लिए सहायक बनता है, उस ने दोनों प्रकार के देह त्यागी आत्माओं को खुश और अपने ऊपर संतुष्ट करने के लिए उन्हें खाने पीने आदि की वह चीज़ें देनी शुरू कीं, कि जो उन्हें पसन्द थीं। इसीलिए जिन पशुओं का वह आप मांस खाया करता

थी, उन्हीं को उस ने उन्हें भी बलि देनी आरम्भ की, और इस प्रकार बलि वा क़ुर्बानी की प्रथा प्रचलित हुई। वह यह विश्वास करता था, कि बलि वा भेंट देने से अमुक देह त्यागी मेरे किसी रोग को दूर कर देगा, अथवा लड़ाई आदि में मेरी कोई और सहाय करेगा। काली, मनसा, नैना, ज्वाला आदि नाना देवियों पर अब तक बकरों आदि की जो बलि चढ़ती है, वह उसी काल की प्रथा है, जो अब तक चली आती है।

हज़ारों वर्षों तक शारीरिक अवस्था के भिन्न जिन मनुष्यों को आत्मा के सम्बन्ध में भले वा बुरे का कुछ ज्ञान नहीं हुआ, उन्हों ने विशेष २ देह त्यागी आत्माओं से या तो अपनी रक्षा वा सहाय पाने के लिए, या अपने स्नेह के प्रकाश में उन्हें प्रसन्न करने, के लिए खाने पीने आदि की चीज़ें भेंट धरना आवश्यक ..। हिन्दुओं में किसी सम्बन्धी की मृत्यु के अनन्तर "आचार्य्य" को बुलाकर उसके द्वारा अंत्येष्टि क्रिया करने की जो रसम अब तक जारी है, उस में देह त्यागी के पिंड, जल और अन्य खाने की चीज़ें, और पलंग, तकिए तोशक, बरतन, जूते, छतरी आदि नाना अन्य चीज़ें दी जाती हैं, कि जो शरीर की आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखती हैं, और आत्मा के जीवन से जिन का कुछ सम्बन्ध नहीं। ईसाइयों के बाज़ फिरक़ों और

ब्राह्मों आदि में देहत्यागी के भले के लिए ईश्वर से कुछ प्रार्थना करने का भाव पाया जाता है। और यद्यपि ईश्वर विश्वास तो मिथ्या है, परन्तु फिर भी यदि कोई मनुष्य किसी अपने सम्बन्धी वा अन्य मनुष्य के भले के लिए हृदय गत किसी भाव से परिचालित होकर कुछ आकांक्षा कर सकता हो, तो वह आकांक्षा अवश्य हितकर होती है। परन्तु ईश्वर वादियों के एक और नए सम्प्रदाय के संस्थापक ने एक काल में श्राद्ध और तर्पण को ईश्वर की ओर से आवश्यक और उचित बताकर भी, दूसरे समय में पुराने आचार्य्यों और पुरोहितों के हाथों से रक्षा पाने की धुन में उन्हें उसी ईश्वर की ओर से मूल से हि अनावश्यक ठहरा दिया। ईश्वर कल्पित जो हुआ, उसके नाम से कोई मनुष्य जो जी चाहे कह सकता है, और वह आप उसका कोई खंडन् नहीं कर सकता। इन सब नाना सम्प्रदायों की तुलना में देव समाज में जहां एक ओर उस एक मात्र विज्ञान-मूलक सत्य धर्म्म की शिक्षा दी जाती है, कि जो आत्मा की सच्ची गठन और उसके जीवन के बनने, बिगड़ने, विकसित और विनष्ट होने के सम्बन्ध में सच्चा ज्ञान देता है, वहां इस समाज में नाना पारिवारिक अनुष्ठानों के सम्बन्ध में भी सत्य और हितकर शिक्षा दी जाती है। इस सत्य शिक्षा के अनुसार :—

(१) जबकि मनुष्य का मुख्य उद्देश्य अपने आत्मा को नीच गतियों से मोक्ष और उच्च जीवन में विकास लाभ करना है, तब इस उद्देश्य के अनुसार उसके लिए यह भी आवश्यक है, कि वह धन, सम्पद, घर, पशु, मनुष्य आदि किसी वस्तु को अपना मुख्य लक्ष्य न बनावे और उनका अनुरक्त होकर और उनके मोह में फंसकर अपने आत्मा के जीवन की हानि न करे। इसीलिए देव धर्म्म की शिक्षा के अनुसार जहां एक ओर किसी सम्बन्धी की मृत्यु पर कई बातों के विचार से उचित सीमा तक शोक करना आवश्यक है, वहां दूसरी ओर अति शोक और स्यापा आदि करना, और अपने शरीर और मस्तिष्क को कई प्रकार के वृथा और हानिकारक क्लेश पहुंचाना उचित नहीं है।

(२) शोक के दिनों में देह त्यागी के धर्म्म भावों वा सद्‌गुणों पर विशेष रूप से चिन्तन करना और उन से लाभ उठाना, और उन्हें सन्मुख लाकर उस के प्रति अपने हृदय में सात्विक वा सद्‌भाव उत्पन्न करना आवश्यक है।

(३) उसके साथ अपने सम्बन्ध की अवस्था पर विचार करना और यदि उसके प्रति कोई पाप वा अत्याचार, वा अन्याय किया गया हो, अथवा साध्य होने पर कोई कर्तव्य पूरा न किया गया हो, उसे अपने

सन्मुख लाने और यथा सम्भव ऐसे साधन से दुखी होने, अश्रुपात करने, और अन्य प्रकार से हानि परिशोध के द्वारा अपने विकारों से पवित्र होने की आवश्यकता है।

(४) उसके आत्मिक हित के लिए हृदय गत किसी सच्चे भाव से परिचालित होकर मंगल कामना करने की आवश्यकता है।

शोक सभाओं में उपरोक्त सत्यों के अनुसार जहां तक सत्य साधन होते हैं, वहां तक वह साधन जैसे एक ओर देह त्यागी आत्मा के लिए कल्याणकारी होते हैं, वैसे हि दूसरी ओर साधन कर्ताओं के लिए भी। दान सब अनुष्ठानों में कल्याणकारी होता है।

धन और धरती के दासों की दैनिक कामना।

(जीवन पथ, मार्गशिर सं० १९६६ वि०)

धन और धरती के हज़ारों दास प्रति दिन अपने इन दोनों प्रभुओं के सम्बन्ध में मानो अपनी इस प्रकार की मनों कामना प्रगट करते हैं :—

हे धन! हे धरती! हम ने होश सम्भालने के बाद से तुम्हारी प्राप्ति के लिए जो व्रत ग्रहण किया था, उसका हम ने पूरी वफ़ादारी से पालन किया है। तुम्हारी प्राप्ति के लिए हम ने प्रति दिन अपने शारीरिक

ज़रूरत है ?

४—देवात्मा में सत्य और हित के सर्व्वाङ्ग अनुराग और असत्य और अहित के सम्बन्ध में सर्व्वाङ्ग वैराग भावों से क्या अभिप्राय है, अर्थात् उसकी यह देव शक्तियां क्या हैं, और उनका क्या कार्य्य है, कि जिन के विचार से उसका आविर्भाव मनुष्य मात्र में एक अद्वितीय आविर्भाव है ?

पुरोहिताई के विषय में पूजनीय भगवान ने फ़रमाया, कि यह पुरोहिताई किसी भी समाज के लिए बहुत भयानक चीज़ है, इसलिए वह इस देव समाज के अन्दर कदापि घुसने नहीं देंगे। इस बुराई के प्रति वह

(१) देव समाज का काम करने वालों में घृणा उत्पन्न करके उन्हें उस से चौकस रख के,

(२) साधारण सेवकों में उसकी बुराई का प्रचार करके और उनके भीतर भी उसका बोध पैदा करके, और

(३) समाज की गठन में ऐसे नियम रख के कि जो इस बुराई की जड़ काटने वाले हों, आदि

ऐसे सब आवश्यक उपाय ग्रहण करेंगे, कि जिन से यह सांघातिक प्लेग देव समाज में न घुस सके और न बढ़ सके।

फिर देव समाज के कर्म्मचारियों और उप कर्म्म-

हृदय में तुम्हें यथेष्ट रूप से दान करके अपने आत्मा के कल्याण करने की कोई आकांक्षा तक नहीं रही। इस से बढ़कर तुम्हारे प्रति मोह और शुभ के प्रति हमारे वैराग्य भाव का और क्या प्रमाण हो सकता है? तब बेशक वह दिन आए, जब हमारा यह शरीर खूब ठंढा होकर काष्ट और पत्थर की न्याईं अचेतन पड़ा हुआ हो। बेशक वह दिन आए, जब हमारा आत्मा तुम से जबरन जुदा किए जाने पर और तुम्हारे साथ मोह के बन्धन से बन्धे होने के कारण खूब तड़पे और दुख पावे, और हमारा अधोगति प्राप्त आत्मा अधम वा किसी नीच लोक के विनाशकारी प्रभावों में रहकर धीरे २ नष्ट हो, और नाना प्रकार के दुख भोगे, परन्तु हम तुम्हारे सच्चे दास होकर और सदा के लिए दासत्व के व्रती होकर तुम्हें किसी परोपकार के काम में प्रचुर रूप से दान नहीं कर सकते।

देव समाज के परिचालक हमारे जाति जनों में धर्म्म विषयक सत्य ज्ञान और उच्च जीवन का प्रचार करने और मिथ्या मतों और अन्य नाना पापों और बुराइयों से उन्हें मुक्त करने, विकासालय और विद्यालय सम्बन्धी नाना हितकर संस्थाओं के उन्नत करने के निमित्त तुम दोनों के दान के लिए हम से चाहे कैसी हि हृदय गत अपील करते हों, परन्तु हम तुम्हें उनके ऐसे महा

हितकर काम के लिए यथेष्ट मात्रा में दान नहीं कर सकते। हम ने तुम्हें किसी शुभ वा पुण्य साधन के लिए उपार्जन नहीं किया, और इसीलिए हम तुम्हारे द्वारा न तो अपना और न किसी और का शुभ साधन करना आवश्यक समझते हैं। हम शुभ को नहीं चाहते। इसीलिए हम तुम्हें अपनी ऐसी सन्तान् के पास छोड़ जाना चाहते हैं, कि जो या तो हमारी तरह तुम्हें किसी शुभ काम के लिए यथासाध्य खर्च न करे या यदि खर्च करे तो बेशक बुरे कामों में खर्च करे, क्योंकि हमारी इसी में सब से बढ़कर तृप्ति है। इसके भिन्न और किसी में नहीं। ऐसा हो, कि हमारी इस तृप्ति के साधन में किसी उच्च आत्मा का सद् उपदेश वा शुभ उत्पादक कोई उच्च प्रभाव रोक न बने, और तुम्हारे साथ हमारा शुभ-विहीन अथवा अशुभ-उत्पादक जो मोह बन्धन स्थापन हो चुका है, वह किसी के द्वारा कभी शिथिल न हो। और तुम किसी अद्वितीय धर्म्मावतार के महान धर्म्म कार्य्य में किसी प्रशंसनीय रूप से काम में न आओ, और ऐसे कार्य्य में सहायक बनकर इस देश वा जगत् का कोई विशेष हित साधन न करो। हम पूर्ण दासों की तुम्हारे सम्बन्ध में एक मात्र यही आकांक्षा और यही कामना है।

[यदि हमारे देश में धन धरती के सम्बन्ध में उपरोक्त प्रकार की कामना करने वाले सैकड़ों जन विद्या

मान न होते तो आज देव समाज की नाना संस्थाओं का महा हितकर काम जो धन धरती के अभाव से बहुत कुछ रुका पड़ा है, वह इस अवस्था में न होता, किन्तु इस से बहुत अधिक उन्नत दशा में होता]

देव समाज के प्रबन्ध विषयक कार्य्य परिचालन के सम्बन्ध में एक विशेष सभा।

(सेवक, कार्तिक सं० १६७४ वि०)

भगवान् देवात्मा ने ३० सितम्बर सं० १६१७ ई० को साढ़े नौ बजे सवेरे कर्म्मचारियों की एक ख़ास सभा कराई, जिस में उन्हों ने देव समाज का प्रबन्ध विषयक कुल काम परिषद् के सपुर्द करते समय उनके दायत्व के विषय में इस प्रकार वर्णन किया :—

"मैंने इस समय तुम को इसलिए अपने पास बुलाया है, कि मैं तुम्हें विधि पूर्व्वक इस बात की सूचना दूं, कि मैं अपने शरीर की रोगी और अत्यन्त दुर्बल अवस्था आदि कई कारणों से देव समाज के प्रबन्ध विषयक काम का बोझा और अधिक उठाने के योग्य नहीं रहा, इसलिए मैं अब लाचार होकर तुम पर इस सारे काम का भार डालता हूं, और चाहता हूं, कि तुम न केवल ख़ुशी २ इस काम को अपने हाथ में लो, किन्तु उसके पूरा करने के लिए जिन कर्तव्य और बाध्यता विषयक

भावों की नितान्त आवश्यकता है, उनकी आवश्यकता को भी भली भांत अनुभव करो, और उनके सम्बन्ध में अपनी २ कमी को देखकर उनकी प्राप्ति के लिए भली भांत आकांक्षी बनो।

देव समाज के अन्य विभागों के भिन्न इन सब से ऊपर और बहुत बढ़कर कुल समाज की रक्षा और उन्नति के लिए जिन परिचालक भावों की आवश्यकता है और उसके प्रबन्ध विषयक कामों के सम्बन्ध में तुम्हारे हृदयों में जिन बहुत बड़ी ज़िम्मेवारी के भावों के विकसित होने और इस ज़िम्मेवारी के भाव की उन्नति के साथ तुम्हारे लिए अपने २ अनुचित अहं (मैं) और सुख आदि के त्याग की आवश्यकता है, उसके विषय में मैं विशेष रूप से तुम्हारा ध्यान फेरना चाहता हूं।

कर्तव्य बोध वह बोध है, कि जिस के विकसित होने पर मनुष्य जैसे एक ओर किसी सम्बन्ध में अपने उचित अंगीकारों वा अपनी ज़िम्मेवारी के किसी काम को ठीक समय पर और भली भांत पूरा करने के लिए अपने हृदय में ज़ोरदार प्रेरणा अनुभव करता और उसे पूरा करके हि आराम वा शान्ति पाता है, वैसे हि दूसरी ओर उस में अपनी ओर से कभी किसी त्रुटि के होने पर और उसके द्वारा उस सम्बन्ध में किसी प्रकार की किसी हानि के पहुंचने पर अपने हृदय में बहुत आघात,

कष्ट और आत्मिक जीवन का ज्ञान रखने पर आत्मा के जीवन की हानि अनुभव करता है; और इसीलिए उस के पूरा करने में अपने प्रत्येक सुख और अबाध्यता विषयक भाव को त्याग करना चाहता है, और त्याग करता है। ऐसा जन अपने कर्तव्य के पूरा करने के सम्बन्ध में किसी मज़दूर की तरह नहीं चलता और वह इस प्रकार के हिसाब नहीं लगाता, कि अब दिन का समय है वा रात का। अब वर्षा हो रही है वा धूप है। अब मैं राज़ी हूं या बीमार हूं। अब मुझे काम करते हुए बहुत घण्टे हो गए हैं या थोड़े। अब मैं आराम की हालत में हूं या तकलीफ़ में। अब मेरे पारिवारिक जनों में से कोई बीमार है वा नहीं; किन्तु वह केवल यह देखता है, कि जब तक मेरे लिए अपने कर्तव्य कर्म्म का पूरा करना असम्भव न हो; तब तक उसका पूरा करना मुझ पर लाज़मी है। याद रक्खो, कि किसी सच्चे फ़र्ज़ वा कर्तव्य के पालन से रह जाना केवल तभी जायज़ हो सकता है, कि जब उसका पूरा करना असम्भव हो, अन्यथा प्रत्येक फ़र्ज़ के पूरा करने के लिए यह लाज़मी है, कि उसका पालन कर्ता और सब गौण आकर्षणों से इतना ऊपर हो, कि उन में से कोई उसे उसके पूरा करने से रोक न सके।

मैंने खुद क्या अनुकूल और क्या प्रतिकूल सब

हालतों में और प्रत्येक सम्बन्ध में अपना आवश्यक कर्तव्य पालन किया है, और यद्यपि उसके पालन करने में मैं अपने शरीर के विचार से अनेक बार अत्यन्त विपद् की अवस्था में पहुंच गया हूं, और कई बार बड़े२ सांघातिक रोगों में भी ग्रस्त हो गया हूं, तरह २ के महा भयानक कष्टों और दुखों और अज़ाबों में से गुज़रा हूं, तथापि ऐसी किसी हालत में मैंने अपने आवश्यक कर्तव्य को नहीं छोड़ा। यह महा श्रेष्ट चीज़ है, जिस की तुम सब को बहुत बड़ी ज़रूरत है।

जिस दशा में कुल समाज के परिचालन का भार परिषद् के ज़िम्मे है, तब यदि किसी विभाग के परिचालन का काम ठीक न चले, वा उसकी उन्नति न हो, तो फिर उसका ज़िम्मेवार सिवाए परिषद् के और कौन हो सकता है? कोई नहीं। इसलिए देव समाज की पूर्ण रक्षा और उसकी यथेष्ट रूप से उन्नति के लिए देवसमाज की परिषद् के भिन्न और कोई पूर्णत: दाई (ज़िम्मेवार) नहीं हो सकता।

जैसे हमारे इन्डिया के सुयोग्य वायसराय हमारे बादशाह के जानशीन होकर परन्तु हमारे बादशाह के निवास स्थान से हज़ारों कोस दूर रहकर भी अपने हृदय में इस प्रकार का कर्तव्य बोध रखते हैं, कि वह इन्डिया की कुल इन्तज़ामिया हकूमत के सम्बन्ध में सब प्रकार

की ख़बर और उस पर अपनी निगरानी रखते हैं और उसके सम्बन्ध में वह अपना जो २ कुछ फ़र्ज़ समझते हैं; उसे पूरा करना चाहते और करते हैं ; और उसके लिए उन्हें जो कुछ कष्ट उठाना पड़े, वा कोई परिश्रम करना पड़े, वा लोगों की नुक़तेचीनी का सामना करना पड़े, तो वह अपने कर्तव्य पालन के निमित्त उस सब को स्वीकार करने की सामर्थ्य रखते हैं, और बादशाहत के फ़ायदे में अपनी "मैं" और अपने सुख की नाना कामनाओं को त्याग करते हैं, वैसे हि देव समाज के परिचालकों को देव समाज की रक्षा और उन्नति के सम्बन्ध में कर्तव्य बोधी होकर अपने वासना मूलक प्रत्येक सुख और "मैं" मूलक प्रत्येक हठ वा दुराग्रह और अबाध्यता का त्याग करने के योग्य होना चाहिए।

याद रक्खो, कि कोई घड़ी तभी ठीक चल सकती है और ठीक समय बता सकती है, जब कि उसका हर एक पुर्ज़ा ठीक चले। इसी प्रकार तुम्हें सोचना चाहिए, कि जब तुम सारी देव समाज की मैशीन में बन्धे हुए हो, तब तुम न्याय रूप से कुल मैशीन के मक़सद के मवाफ़िक़ हि अपनी कोई क्रिया कर सकते हो, और उस मक़सद के ख़िलाफ़ न्याय रूप से तुम कोई क्रिया नहीं कर सकते।

कई यूरोपियन और एमेरीकन क़ौमों ने कर्त्तव्य और वाध्यता विषयक भावों के सम्बन्ध में जो कुछ उन्नति की है, उस से उनकी शक्ति वा सामर्थ्य बहुत बढ़ गई है, इसीलिए वह अपनी बड़ी २ इन्स्टीटयूशनों को भली भांत चलाने के योग्य बन गए हैं; परन्तु हमारे देश में इन भावों का बहुत अभाव है। औरों को छोड़कर हमारी अपनी समाज में हि जहां एक तरफ़ एक २ कर्म्मचारी तक इन बोधों से बहुत कुछ शून्य है, वहां दूसरी तरफ़ वह इतना घमंडी है, कि किसी बड़े से बड़े जन से भी अपनी किसी अनुचित क्रिया वा गति के ख़िलाफ़ कुछ सुनना वा किसी से ऐसे विषय में दीनता पूर्व्वक कुछ जानना वा कुछ सीखना अथवा बोध पाना नहीं चाहता। स्मरण रक्खो, कि हाथ उठाकर वा हाथ जोड़कर वा सिर झुकाकर सलाम वा प्रणाम करने का नाम दीनता नहीं है। मेरे अपने सामने ऐसे किसी प्रणाम की कोई क़ीमत नहीं; किन्तु कर्त्तव्य और वाध्यता आदि उच्च भावों की महिमा को पहचान कर और उनके धारण कर्त्ता में उनकी सच्ची महिमा को उपलब्ध करके उनके सन्मुख सिर झुकाना दीनता है।

यदि तुम समाज के अच्छे अंग बनोगे, तो उस से जहां समाज की रक्षा और उन्नति होगी, वहां तुम भी उच्च बनोगे; और उसके इतिहास में ऐसा दृष्टान्त छोड़

जाएंगे, जो औरों को बेहतरी की ओर धक्का देने का कारण होगा।

काम करने वालों के लिए विशेश उपदेश।

[सेवक, माघ सं० १९७४ वि०]

भगवान् देवात्मा ने १४ जनवरी सं० १९१९ ई० को कर्म्मचारियों और सेवक सेवकाओं को अपने श्री चरणों में बुलाकर चार निहायत कल्याणकारी और शक्तिशाली उपदेश प्रदान किए। भगवान् देवात्मा ने इन उपदेशों में और कई ज़रूरी विषयों में ज्योति देने और अधिकारी दिलों में अपना देव तेज संचार करने के भिन्न मुख्य रूप से जिन चार निहायत ज़रूरी विषयों में अपना अद्वितीय दान दिया, वह यह हैं :—

१—पुरोहिताई (प्रीसट हुड) क्या है और वह धर्म्म को लेकर नाना देशों में कैसे पैदा हुई और वह कैसे २ महा भयानक फल पैदा कर रही है ?

२—देव समाज के भीतर इस भयानक रोग के घुसने की सम्भावना और उस के दूर करने के कार्य्यगत उपाय।

३—देव समाज के प्रत्येक कर्म्मचारी और उप कर्म्मचारी के भीतर अन्य सेवकों के सम्बन्ध में किस २ प्रकार की योग्यताओं के पैदा होने की

ज़रूरत है ?

४—देवात्मा में सत्य और हित के सर्व्वाङ्ग अनुराग और असत्य और अहित के सम्बन्ध में सर्व्वाङ्ग वैराग भावों से क्या अभिप्राय है, अर्थात् उसकी यह देव शक्तियां क्या हैं, और उनका क्या कार्य्य है, कि जिन के विचार से उसका आविर्भाव मनुष्य मात्र में एक अद्वितीय आविर्भाव है ?

पुरोहिताई के विषय में पूजनीय भगवान ने फ़रमाया कि यह पुरोहिताई किसी भी समाज के लिए बहुत भयानक चीज़ है, इसलिए वह इस देव समाज के अन्दर कदापि घुसने नहीं देंगे। इस बुराई के प्रति वह

(१) देव समाज का काम करने वालों में घृणा उत्पन्न करके उन्हें उस से चौकस रख के,

(२) साधारण सेवकों में उसकी बुराई का प्रचार करके और उनके भीतर भी उसका बोध पैदा करके, और

(३) समाज की गठन में ऐसे नियम रख के कि जो इस बुराई की जड़ काटने वाले हों, आदि

ऐसे सब आवश्यक उपाय ग्रहण करेंगे, कि जिन से यह सांघातिक प्लेग देव समाज में न घुस सके और चढ़ सके।

फिर देव समाज के कर्म्मचारियों और उप कर्म्म-

चारियों में किस २ प्रकार की योग्यताओं के उत्पन्न होने की आवश्यकता है, उसके विषय में जो बहुत सी ज़रूरी बातें पूजनीय भगवान् ने बयान कीं, उन में से कुछ यह हैं :—

१–वह धर्म्म प्रचार के प्रोग्राम के साथ २ अपने जीवन की नियमित प्रणाली अपने सामने रखते हों, और उसके अनुसार एक वा दूसरी निम्न शक्ति के अनुचित अधिकार से उद्धार लाभ करने और एक वा दूसरे उच्च भाव को उत्पन्न और उन्नत करने के लिए अपने जीवन दाता सत्य देव के देवरूप तक पहुंचने और उनके देव प्रभावों को लाभ करने की कुछ न कुछ योग्यता रखते हों, और उन प्रभावों को जहां तक सम्भव हो, अपनी योग्यता के अनुसार प्रति दिन लाभ करने की चेष्टा करते हों।

२–वह अपने क्षेत्र के सेवकों और सेवकाओं को अपने साथ जोड़कर उनका और अपना आत्मिक नाश करने के स्थान में जीवन दाता सत्य देव के देवरूप के साथ जोड़ने और उनके साथ उनका आत्मिक सम्बन्ध पैदा करने और बढ़ाने वाले श्रद्धा, आकर्षण और कृतज्ञता आदि उच्च भावों में से किसी एक वा कई के उत्पन्न वा उन्नत करने की न्यूनाधिक योग्यता रखते हों।

३—वह अपने आत्मा को अपने जीवन दाता के देवरूप का आश्रित और उनके देव प्रभावों का सदा भिखारी और अपने मंडल वा क्षेत्र के सेवकों वा सेवकाओं का केवल आत्मिक सेवाकारी भृत्य अनुभव करते हों, और वहां के सेवकों और सेवकाओं के दुख सुख और उनकी एक वा दूसरी विपद वा उलझन में उनके लिए हमदर्दी का भाव रखते हों और न केवल उन में से किसी को किन्तु उनके भिन्न किसी मनुष्य को कभी और किसी सूरत में घृणा न करते हों और किसी के सम्बन्ध में द्वेष वा ईर्षा का भाव न रखते हों और उनके साथ अपनी तरफ़ से अपने दिल में सदा सद्भाव रखते हों और उन से फट न जाते हों, और उन्हें अपनी वा अपने पारिवारिक जनों की एक वा दूसरे प्रकार की वासनाओं की तृप्ति की सामग्री न समझते हों और न बनाते हों।

४—वह अपने मंडल वा क्षेत्र के सेवकों वा सेवकाओं की किसी क्रिया से—यहां तक कि उनकी किसी अनुचित क्रिया से भी—उनके दुश्मन न बन जाते हों, इत्यादि २।

फिर देवात्मा में मनुष्य जगत् के विकास क्रम में जिन अद्वितीय देव शक्तियों का विकास हुआ है—कि

जो देव शक्तियां दुनियां के किसी मनुष्य के भीतर प्रगट नहीं हुई—उनकी वर्तमानता के सबूत के विषय में उन्हों ने फ़रमाया, कि नेचर में हम किसी भी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु से उसके गुणों के परस्पर अन्तर के विचार से हि पहचनते और पहचान सकते हैं, इसके बिना कदापि नहीं। यदि किसी ज़मीन के टुकड़े में चार पौदे वा वृक्ष खड़े हुए हों, कि जिन में से एक का नाम आम और दूसरे का नाम कीकर, तीसरे का नाम आक और चौथे का नाम धतूरा हो, तो हम विचारवान होकर प्रत्येक वृक्ष के पत्तों, फलों और फूलों को ग़ौर से देखेंगे और मालूम करेंगे, कि आया उन सब के भीतर जो जीवनी शक्तियां वर्तमान हैं, वह सब इन वृक्षों से एक हि शकल वा सूरत के पत्ते, फूल वा फल बनाकर हमारे सामने पेश करती हैं वा उन में अन्तर है ? अवलोकन करने से मालूम हो जाएगा, कि उन सब के पत्तों, फूलों और फलों में ज़रूर अन्तर मौजूद है और इसलिए वह सब एक हि नाम से नहीं पुकारे जा सकते। वह चारों हि वृक्ष अपने २ अन्दर से अलग २ प्रकार के पत्ते, फूल और फल निकालते हैं। एक हि प्रकार की ज़मीन, वायु और रौशनी में रहकर भी वह अपने २ अन्दर की जीवनी शक्तियों में फ़र्क रखने के कारण अलग २ गुणों का प्रकाश करते हैं। इसलिए उन में से आम का वृक्ष जिस प्रकार

के पत्ते, फूल और फल अपने अन्दर से निकालता है, उस प्रकार के बाक़ी के तीन वृक्षों में से कोई नहीं निकालता और कभी भी नहीं निकाल सकता। नेचर ने इन सब में सदा के लिए यह फ़र्क़ रक्खा हुआ है। अर्थात् आम कभी कीकर, आक और धतूर के पौंदे के से पत्ते, फूल और फल नहीं पैदा कर सकता। और कीकर, आक और धतूरे के पौंदे कभी भी आम के से पत्ते, फूल और फल अपने वजूद से नहीं निकाल सकते। अब जिस तरह प्रत्येक जन चाहे वह मूर्ख हो वा विद्वान परन्तु विचार शील हो, इन वृक्षों में नेचर के दिए हुए इस असली फ़र्क़ को भली भांत देख सकता है, इसी तरह वह देवात्मा के आत्मा में नेचर ने जिन विशेष और अद्वितीय देव शक्तियों को प्रगट और विकसित किया है, उनके विशेष और अद्वितीय फलों को भी अपनी आंखों से देख सकता है। वह साफ़ देख सकता है, कि इन देव शक्तियों को पाकर उन्हों ने उनकी सिद्धि के लिए जिस २ प्रकार का त्याग किया है, और इस त्याग के द्वारा [illegible] अन्दर जिस अद्वितीय देव ज्योति और देव तेज [illegible] विकसित किया है और ऐसी ज्योति में आत्मा के सूक्ष्म रूप, उसकी गठन और उसके पतन और मौत के विषय में जो अटल सत्य देखे हैं और सत्य धर्म्म की हक़ीक़त और उसकी पहचान के नियम

बताए हैं, और सारी दुनिया में केवल कल्पना और झूठ पर स्थापित धर्म्म की जो अत्यन्त हानिकारक शिक्षा जारी थी और है, उसकी हकीकत देखी और दिखलाई है, और सच्चे और झूठे उपास्य, सच्ची और झूठी पूजा वा उपासना, सच्चा पुण्य और पाप, सच्ची और झूठी मोक्ष, सच्चे वा झूठे धर्म्म साधनों आदि का भेद प्रगट किया है, और धर्म्म की बुनयाद को कल्पना और झूठी गप्पों से अलग करके नेचर के सच्चे और अटल नियमों और वाकयात पर स्थापित किया है, और अपनी इस अद्वितीय देव ज्योति और अपने अद्वितीय देव तेज के द्वारा सैकड़ों आत्माओं की ज़िन्दगी में जिस प्रकार की आश्चर्य्य जनक तबदीलियां पैदा की हैं, वह सब डंके की चोट से इस बात की घोषणा करती हैं, कि यह सब प्रकार के फल इस दुनिया में कभी और किसी मनुष्य ने पैदा नहीं किए, क्योंकि देवात्मा के सिवाए दुनिया के किसी मनुष्य में उन देव शक्तियों का ज़हूर नहीं हुआ, कि जिन के द्वारा यह सब फल प्रगट हुए।

भगवान् का यह सारा उपदेश डेढ़ घण्टे से भी ज़्यादा देर तक रहा और इस में एक २ वार धर्म्म जगत् के झूठे मतों और उनकी पाप मूलक शिक्षा के लिए अत्यन्त घृणा और सचाई और भलाई के लिए प्यार

का प्रकाश करते समय उनका चेहरा अजीब तरह से रौशन हो जाता था और वर्तमान जनों पर इसके विशेष उच्च प्रभाव पड़ते थे, और भगवान् देवात्मा अपनी शारीरिक पीड़ा को बिलकुल भूल जाते थे। इन चार उपदेशों के भिन्न १६ जनवरी को जबकि कई कर्म्मचारी और उप कर्म्मचारी आदि अपने २ इलाके में देव धर्म्म का प्रचार करने के लिए जाने वाले थे, तब पूजनीय भगवान् ने उन्हें फिर अपने समीप बुलाकर एक और अत्यन्त मूल्यवान् उपदेश दिया और उन्हें अपने जीवन और देव समाज के काम के सम्बन्ध में ग़ैर मामूली जोश और उच्च वलवलों से भर दिया। भगवान् देवात्मा के इस विशेष संग्राम से उनके तुच्छ सेवकों के भीतर जिस क़दर आप उच्च बनने और औरों को उच्च बनाने के लिए ग़ैर मामूली उत्साह पैदा हो गया है, इस से ऐसी उम्मीद पड़ती है, कि जीवन दाता का यह परिश्रम देव समाज के इतिहास में एक नया अध्याय खोलने वाला प्रमाणित होगा।

महोत्सव के बाद अति कल्याणकारी उपदेश।

(सेवक, फाल्गुण सं० १९७५ वि०)

(१) २१ दिसम्बर सं० १९१८ ई० की प्रातः काल को जब कि उनके सैकड़ों सेवक सेवकां और श्रद्धालु

महोत्सव के निराले उच्च प्रभावों और लाभों से उपकृत होकर अपने २ घरों को वापिस जाने के लिए तैयार थे, तब भगवान् देवात्मा ने देवालय के सेहन में आकर उन्हें दर्शन दिए और उन्हें अपना शुभाशीर्वाद प्रदान करने के भिन्न अपनी ओर से एक संक्षिप्त परन्तु तेजस्वी उपदेश भी दिया; जिस में उन्हों ने बताया, कि यह महोत्सव इस पृथिवी में एक सच्चा और अद्वितीय तीर्थ स्थापन हुआ है, कि जिस पर पहुंचकर हर एक अधिकारी आत्मा जो हित लाभ करता है, उसका दृष्टान्त इस पृथिवी में कहीं नहीं है, और इस महोत्सव पर पहुंचने के लिए वह जिस क़दर ख़र्च करता है, या जो कोई तकलीफ़ उठाता है, उसकी यहां पहुंचकर जैसी सफलता होती है, वह किसी और तरह से नहीं होती और नहीं हो सकती। देवात्मा के जन्म महोत्सव पर पहुंचना प्रत्येक देवसमाजी का विशेष और बड़ा कर्तव्य है। देवात्मा ने जो देव समाज स्थापन्न की है, वह भी इस दुनिया में एक अद्वितीय हितकर समाज है। इस को प्यार करो और उस को अपना समझो और अपनी इस प्यारी समाज और उसकी इन्स्टीट्यूशनों की उन्नति के लिए अपने तन, अपने मन और अपने धन का त्याग करना अपना बहुत बड़ा अधिकार और मनुष्य जन्म की सफलता समझो।

(२) ३० दिसम्बर १६१८ ई० को जब कि कई कर्म्मचारी और उप कर्म्मचारी अपने २ क्षेत्रों में काम करने के लिए रवाना होने वाले थे, तब पूजनीय भगवान् ने उन्हें अपने मिलने के कमरे में बुलाकर व्रतधारी कर्म्मचारियों की ज़रूरत और उनके लक्षणों के विषय में एक निहायत ज़ोरदार उपदेश दिया, और बताया, कि देव समाज को अपने प्रत्येक विभाग के लिए सच्चे व्रतधारी और सेवाकारी आत्माओं की अत्यन्त आवश्यकता है, और वह ऐसे आत्माओं के हासिल करने के लिए सख्त व्याकुल हैं।

(३) १ जनवरी सं० १६१६ ई० को प्रातः काल को उन्हों ने लाहौर निवासी कर्म्मचारियों और उप कर्म्मचारियों को अपने समीप बुलाकर बताया, कि उन्हें अपने निज के साधनों अथवा सेवा विषयक कामों के विषय में जो कुछ मुशकिलात मालूम हुई हों, उन्हें वह उन पर प्रगट करके उन से आवश्यक सहाय ले सकते हैं। इस पर एक साधक के इस प्रश्न पर कि "किसी के लिए हानि परिशोध के साधनों को कितने अरसे तक करते रहने की ज़रूरत है।" भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया, कि इसके लिए कोई ख़ास मयाद नियत नहीं हो सकती, बल्कि उसकी मयाद हानि कर्ता की हानि की मिक़दार और इस हानि की गहराई और उस

के बुरे नतीजों पर निर्भर करती है, और इसीलिए किसी प्रकार के सच्चे और पूर्ण हानि परिशोध के लिए जिन दो बड़ी २ बातों का पूरा होना ज़रूरी है, वह यह हैं, कि

प्रथम—किसी जन ने अपनी जिस किसी बुरी या नीच क्रिया से किसी दूसरे जन की किसी क़िस्म की हानि की हो, उसका सच्चा बोध उत्पन्न होने पर वह उसके लिए क्षमा प्रार्थना से लेकर अपने अपराध वा पाप की हानि के अनुसार वह सब दण्ड और सेवा आदि विषयक साधन ग्रहण करे, कि जिन का ग्रहण करना उचित और आवश्यक हो; और उन्हें तब तक जारी रक्खे, जब तक हानि प्राप्त जन की हानि वा पीड़ा, जहां तक हालात में सम्भव हो, दूर की जा सकती है, वहां तक वह दूर हो जावे।

द्वितीय—उस ने अपनी जिस नीच शक्ति के वशिभूत होकर कोई हानिकारक क्रिया की हो, उसके बुरे रूप को सन्मुख लाकर वह तब तक उसके प्रति अपने भीतर घृणा और दुख अनुभव करने वाले साधन जारी रक्खे, जब तक उस नीच शक्ति के अधिकार से उसका उद्धार न हो जावे, और फिर उसका वह नीच भाव उस से ऐसी नीच क्रिया न करा सके।

(४) २ जनवरी को भगवान् देवात्मा ने घमंड से मोक्ष लाभ करने की आवश्यकता का वर्णन करने के

अनन्तर आत्मा की मृत्यु की हक़ीक़त के सम्बन्ध में बहुत कुछ बतलाया, और इस विषय में उन्हों ने अपने कई जिरेनियम के गमले मंगवाकर उपस्थित जनों के सामने रक्खे और बताया, कि उन्हों ने कुछ काल हुआ, उन गमलों में पहले पहल जिरेनियम की कुछ कटी हुई क़लमें गाड़ी थीं और फिर उन गमलों में मुनासिब मिक़दार में पानी डलवाते रहे हैं। उन क़लमों में जो जीवनी शक्तियां थीं, वह कईयों में काफ़ी ताक़तवर, कईयों में बहुत ताक़तवर और कईयों में कमज़ोर और कईयों में बहुत कमज़ोर थीं। रौशनी और हवा और ताप और नमी के असरों ने उन में उक्साने का काम शुरू किया। जिन में काफ़ी ताक़त या बहुत ताक़त थी, वह उस उक्साहाट से हरकत में आई और उन्हों ने अपना २ काम शुरू किया, और अपने २ अमल से धीरे २ अपनी २ क़लमों की वाज़ गाठों के चशमों में से पत्तों को निकालना शुरू किया, फिर उनको धीरे २ बढ़ाकर मौजूदा शकल में ले आई और जिन क़लमों में कमज़ोर जीवनी शक्तियां थीं, उन्हों ने अपनी २ गाठों में से कोई २ पत्ता बनाया, लेकिन उनके बनाने का काम उनकी कमज़ोरी की वजह से बन्द हो गया, और वह आख़िरकार अपनी कमज़ोरी की वजह से अपनी २ क़लम को पौदे की शकल में न ला सकने के कारण मर गई और जो बहुत कमज़ोर थीं,

वह ऐसा कोई भी अमल न कर सकीं, अर्थात् वह कोई एक पत्ता तक न बना सकीं, और उनकी कलमें धीरे २ सड़ने लगीं; और उनकी जीवनी शक्तियां आखिरकार बिलकुल मर गईं। इन सच्ची और ज़िन्दा मिसालों को दिखलाकर भगवान् देवात्मा ने यह तत्व प्रगट किया, कि कोई भी जीवनी शक्ति चाहे वह किसी पौदे की हो, चाहे पशु की, चाहे मनुष्य की, जब शुरू में हि इस क़दर कमज़ोर हो, कि वह अपने लिए कोई ज़िन्दा जिस्म न बना सकती हो, या अपने नीच भावों या अपनी नीच क्रियाओं आदि के कारण इस क़दर कमज़ोर हो जावे, कि वह फिर अपने लिए कोई नया ज़िन्दा जिस्म बनाने के योग्य न रहे, तो फिर वह खुद भी बिना ज़िन्दा जिस्म के ज़िन्दा नहीं रहती, और इसलिए फिर वह हमेशा के लिए मर जाती है, और उसकी मौत के साथ हि उसके हर क़िस्म के बोधों का ख़ात्मा हो जाता है। क्योंकि किसी पौदे, या पशु, या मनुष्य की जीवनी शक्ति बिना ज़िन्दा जिस्मानी गठन के जी नहीं सकती और इसीलिए जब वह अपने रहने और अपने काम में लाने के लिए किसी ज़िन्दा जिस्म के बनाने के अयोग्य हो, तब वह बिलकुल नष्ट हो जाती है।

(५) ३ जनवरी को भगवान् देवात्मा ने इस आख़री

मज़मून के विषय में फिर यह बतलाया, कि किसी जन में पहले जड़ पदार्थों में शक्ति के उपलब्ध करने के लिए यथेष्ट योग्यता हो तो फिर उसे विचार विषयक साधनों के एक काल तक करने से जब उस शक्ति की उपलब्धि होने लगे, अर्थात् उस में स्थूल जड़ से ऊपर सूक्ष्म शक्ति का कुछ बोध पैदा हो जाए, तब फिर धीरे २ ऐसे साधन के बढ़ाने से वह अपने आत्मा के सूक्ष्म रूप और उसके जीवन और उसकी मृत्यु की उपलब्धि भी कर सकता है। किसी मनुष्य को ऐसी उपलब्धि केवल किसी उपदेश को सुनकर नहीं होती, बल्कि ज़रूरी शर्तों के साथ साधन शील बनने से हासिल होती है।

एक अति हितकर सभा।

(सेवक, वैशाख सं० १९७६ वि०)

यह सभा २ मार्च सं० १९१९ ई० को पूजा के साधन के बाद की गई थी और वह अधिकतर कालिजों के विद्यार्थियों के हित के लिए थी, कि जिस में बहुत से ग्रेजूएट, अंडर ग्रेजूएट और कुछ और सेवक और श्रद्धालु भी शामिल थे। इस सभा में पूजनीय भगवान् ने इस तत्व की व्याख्या की, कि मनुष्य अपनी भाव शक्तियों के द्वारा हि परिचालित होकर अपने विविध सम्बन्धों में अपनी नाना प्रकार की भली वा बुरी क्रियाएं

करता है, और उसका शरीर और उसकी मान्सिक शक्तियां उसके भावों के हाथ में मानो औज़ार का काम देती हैं। इसकी व्याख्या में भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया, कि मान्सिक शक्तियों की उन्नति से यद्यपि एक वा दूसरे विचार से मनुष्य के ज्ञान का ख़ज़ाना बढ़ जाता है, और उसकी बुद्धि भी पहले की अपेक्षा तेज़ हो जाती है, परन्तु यह उसकी समझ भी उसके दिल के नीच वा उच्च भावों के अधिकार में होकर हि चलती है। इसीलिए हम देखते हैं, कि एक हि कालिज में पढ़ने वाले और एक हि धर्म्म मत से सम्बन्ध रखने वाले और एक हि बोर्डिंग में रहने वाले विद्यार्थियों में से एक जन तम्बाकू पीता है और दूसरा नहीं पीता, एक अपने साथी विद्यार्थियों की चीज़ें चुरा लेता है और दूसरा नहीं चुराता, एक अपनी ख़ास वासना की तृप्ति के लिए वह बुरे और हानिकारक कर्म्म आदि करता है, कि जो उसके और कितने हि साथी लड़के करते हैं, परन्तु एक और विद्यार्थी उन बुरे कर्म्मों से बचा हुआ है। एक २ ग्रेजूएट मुनसिफ़ वा एक्सट्रा अस्सिटेन्ट कमिशनर वा डिसट्रिक्ट जज आदि होकर और यह जानकर भी, कि रिश्वत लेना क़ानून के विचार से अपराध है, फिर भी आप रिश्वत लेता है, और अपराधी सावत होने पर जेल में भी जाता है। इसी प्रकार और क्रियाओं का हाल

है, और यह सब कुछ इसलिए होता है, कि मनुष्य अपने हृदय के भावों के द्वारा परिचालित होकर एक वा दूसरे प्रकार का कोई विचार वा कार्य्य करता है। इस लिए जब तक मनुष्य के हृदय को उसकी नाना प्रकार की नीच गतियों से इसी दुनिया में सच्ची मोक्ष देने और उस में उच्च भाव उत्पन्न और उन्नत करके उसे उच्च और श्रेष्ठ बनाने के लिए जिन विशेष शक्तियों की ज़रूरत है, वह नेचर के इन्तज़ाम से किसी आत्मा के द्वारा प्रगट न हों, तब तक इस वा उस धर्म्म समाज के अपने मत वा पूजा वा पाठ आदि के तरीके केवल यही नहीं कि इस ज़रूरत को पूरा नहीं कर सकते, किन्तु मनुष्यों के भीतर के निहायत घृणित और हानिकारक ख़मीर के द्वारा उनके आत्माओं के नाश का कारण बनते हैं। देवात्मा में देव शक्तियों के आविर्भाव के द्वारा सारी दुनिया की यह बहुत बड़ी और सख़्त ज़रूरत पूरी हुई और हो रही है, और अधिकारी आत्मा उन के देव प्रभावों को पाकर जिस २ दर्जे उन्हें ग्रहण करने के योग्य हुए हैं, उन में उसी दर्जे की निहायत आश्चर्य्य जनक तबदीलियां आई और आ रही हैं। जिन नौ-जवानों को देव समाज में शामिल होने का विशेष और निहायत मुबारिक अधिकार मिला है, उन्हें अपने इस अधिकार की महिमा पर विचार करना चाहिए और

उस से जहां आप अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिए, वहां अपने साथी विद्यार्थियों और अपने सम्बन्धियों को भी अपनी तरफ़ से बार २ प्रेरणा करके उन्हें देव समाज की उच्च संगत में लाने और उनका सब से बड़ा भला करने की कोशिश करनी चाहिए।

एक अति हितकर उपदेश का संक्षिप्त सार।

(सेवक श्रावण सं० १९७७ वि०)

लाहौर में १८ एप्रिल सं० १९२० ई० की सभा में पूजनीय भगवान् ने प्रायः एक घण्टा तक जो निहायत ज़ोरदार उपदेश दिया था, उस में उन्हों ने मनुष्य के बच्चों में जन्म काल से लेकर धीरे २ आकर्षण वा कशश और विकर्षण वा घृणा के भाव का जिस तौर से प्रकाश शुरू होता और फिर धीरे २ बढ़ता जाता है, उस के विषय में बहुत से दृष्टान्त दिए। फिर यह बताया, कि जो आकर्षण वा विकर्षण कभी २ किसी ख़ास हालत में प्रकाश पाते हैं, वह जब बढ़ते २ किसी जन में इतने प्रबल हो जाते हैं, कि जिस में वह उनके द्वारा परि-चालित होने में अपने आप को मजबूर पाता है, और उनके विरुद्ध जा नहीं सकता, तब वह पहली अवस्था में अनुराग और दूसरी अवस्था में विराग वा वैराग के भाव कहलाते हैं। फिर इसके बाद उन्हों ने फ़रमाया,

कि यद्यपि दुनिया में मज़हब के नाम से तरह २ के विश्वास वा ईमान जारी हैं, और उनके जारी करने वालों ने तरह २ के देवों और देवतों की (जिन में ईश्वर, वा ख़ुदा वा अल्ला वा गाड कहलाने वाला देवता भी शामिल है) एक वा दूसरे तौर से पूजा भी प्रचलित की है। और उन्हें इन्हों ने अपने अनुयाइयों के लिए माबूद वा उपास्य भी बताया है; परन्तु सत्य धर्म्म की शिक्षा जिस का आत्मा के सच्चे रूप और उसके जीवन के बनने वा बिगड़ने के तत्वों वा सत्य ज्ञान से सम्बन्ध है, उसका कहीं निशान नहीं मिलता। एक २ मनुष्यात्मा :—

(१) जिस ख़ौफ़नाक अन्धेरे से घिरा हुआ है, और उसी अन्धेरे के कारण अपने अस्तित्व के बारे में पूर्णतः अज्ञानी और अबोधी पाया जाता है।

(२) मिथ्या वा झूठ पर स्थापित विविध प्रकार के अक़ीदों में फंसा हुआ है, और मिथ्या पर स्थापित नाना प्रकार की क्रियाएं कर रहा है।

(३) नीच अनुरागों के अधिकार में है और उनके इस अधिकार के कारण अपने और अन्य मनुष्यों और पशुओं आदि के लिए हानिकारक बना हुआ है।

(४) नीच घृणाओं से भरा हुआ है, और उनके

सबब से अपने विविध सम्बन्धों में फटा हुआ होकर उनका और अपना तरह २ का नुक़सान कर रहा है।

उस के इन चारों प्रकार के रोगों के कारण विविध जगतों में निहायत ख़ौफ़नाक तबाही फैली हुई है। इस तबाही के बढ़ाने में तो दुनिया के कहलाने वाले नाना मज़हब भाग ले रहे हैं; परन्तु उसके घटाने के लिए जिन विशेष शक्तियों की आवश्यकता है, वह न केवल उन शक्तियों किन्तु उनके ज्ञान से भी शून्य हैं।

प्रचलित कहलाने वाले मज़ाहब वा धर्म्म सम्प्रदायों के बानियों ने मनुष्य के मरने के अनन्तर तो किसी अगली दुनिया में उसके बुरे और भले कर्म्मों के फलों की ख़याली गप्पें फैलाई हैं, परन्तु जिस आत्मिक अन्धकार में मनुष्यात्म फंसे हैं, और झूठ पर स्थापित जिन विविध प्रकार के अक़ीदों और पाप मूलक क्रियाओं में लिप्त हैं, और नीच अनुरागों और नीच घृणाओं से प्रेरित होकर अपने और औरों के लिए अति हानिकारक तबाही का हेतु बन रहे हैं, उनके भीतर उस विशेष प्रकार की ज्योति के पहुंचाने और उस विशेष प्रकार के तेज के संचार करने के पूर्णतः अयोग्य हैं, कि जिन के द्वारा एक तरफ़ इसी दुनिया में किसी मनुष्य को अपने आत्मा और आत्मिक जीवन की हक़ीक़त का सच्चा ज्ञान मिल

सके और वह अपनी विविध प्रकार की नीच गतियों के भयानक नतीजों को भयानक वा बुरे रूप में देख सके, और उनके लिए घृणा और दुख अनुभव करके जहां तक उसके लिए सम्भव हो, इन से सच्ची मुक्ति वा नजात लाभ कर सके; और दूसरी तरफ़ किसी भले काम के लिए अपने दिल में कोई जीवन दायक उच्च आकर्षण अनुभव कर सके, और उसके बदले में नाम और इज़्ज़त आदि की आकांक्षा न रखकर उस भले काम को उसका अनुरागी बनकर अपने हाथ में ले सके और उसे लगातार पूरा कर सके और उसके लिए अपने तन, मन और धन आदि को अर्पण कर सके। हां आत्माओं में इस प्रकार का कुल परिवर्तन लाने के लिए जिस देव ज्योति और देव तेज की आवश्यकता थी और है, उसका प्रकाश और कार्य्य उन कहलाने वाले माबूदों वा उपास्यों वा उनका प्रचार करने वाले जनों की ज़ात से जैसे इस से पहले कभी ज़हुर में नहीं आया था, वैसे अब भी नहीं आ रहा। और उनके द्वारा जैसे पहले किसी को सत्य धर्म्म का ज्ञान नहीं मिला था, वैसे हि अब भी नहीं मिल रहा। नेचर के विकास क्रम में मनुष्य जगत् की इन कुल सच्ची ज़रूरतों के पूरा करने के लिए हि देवात्मा का प्रकाश हुआ है।

वही देवात्मा मनुष्य मात्र के लिए सच्चे धर्म्म के

शिक्षक और गुरु और मोक्ष और विकास कर्ता उपास्य देवता हैं, और उनके सिवाए और कोई नहीं। इसके बाद फिर उन्हों ने यह तत्व भी प्रगट किया, कि यद्यपि देवात्मा की देव ज्योति और उनके देव तेज को पाकर किसी भी अधिकारी आत्मा में एक वा दूसरी सीमा तक अवश्य अति आश्चर्य्य उच्च परिवर्तन उत्पन्न होता है, परन्तु जब तक किसी मनुष्य के हृदय में अपनी मोक्ष और अपने विकास के लिए आकांक्षा न जागे, और वह इन अंगों में देवात्मा की शुभ कामनाओं के साथ मेल पैदा न करे, तब तक उसकी बेहतरी का और सिलसिला जहां तक आगे चल सकता था वा चल सकता है, वह नहीं चलता।

अति हितकर सभाएं।

(सेवक, आश्विन सं० १९७७ वि०)

२३ मई सं० १९२० ई० की सभा।

इस सभा में भगवान् देवात्मा ने मनुष्यात्मा की चार प्रकार की पतनकारी गतियों का बयान करने के बाद बताया, कि मनुष्य जगत् की प्रत्येक छोटी वा बड़ी हस्ती और उसके प्रत्येक गाओं, नगर और शहर में विविध प्रकार की टकराहट जारी है, और मनुष्य अपने से नीचे के जगतों को छोड़कर खुद अपने हि जगत के

लिए नाना प्रकार से हानिकारक और दुखदाई बन रहा है। इसके बाद भगवान् देवात्मा ने मनुष्य जगत् में एक खास सीमा तक बदअमनी के दूर करने और अमन के क़ायम करने के लिए विविध प्रकार की हकूमतों का जिस तरह से सिलसिला शुरू हुआ और वह हकूमतें वा गवर्नमेंटें लोगों की अवस्था के अनुसार जिस २ प्रकार की थीं, उनका ज़िकर किया। और फिर जो गवर्नमेन्ट किसी क़ायदे वा क़ानून की बिना पर क़ायम होती है, जैसा कि हमारे देश में ब्रिटिश गवर्नमेंट है, उसकी हक़ीक़त बताकर भगवान् ने प्रगट किया, कि यद्यपि हमारी ब्रिटिश गवर्नमेंट में भी कई प्रकार की बड़ी२ त्रुटियां मौजूद हैं, कि जिन के उचित उपायों के द्वारा धीरे २ दूर होने की ज़रूरत है, तथापि इस गवर्नमेन्ट के द्वारा हमारे देश को जिस इलम की रौशनी मिली है, और मज़हबी आज़ादी के भिन्न ख़यालात के प्रकाश आदि की बेवहा बरकतें लाभ हुई हैं; उनके विचार से वह हमारी बहुत क़दरदानी और शुकरगुज़ारी के लायक़ है। फिर उन्हों ने बताया, कि यद्यपि हमारे देश वासियों के लिए गवर्नमेंट से अपने सच्चे हकूक़ मांगना और उसके किसी बुरे क़ानून में तरमीम वा उसकी मन्सूख़ी चाहना वा उसके किसी अफ़सर के किसी अत्याचार को रोकना वा उसके लिए सज़ा चाहना बेशक उचित

और ठीक है, और ऐसी बातों के विषय में जल्से करना वा अपने भाव के प्रकाश में प्रस्ताव स्थिर करना और एक प्रबल आम राय पैदा करके उसका नैतिक प्रभाव उस पर डालना न केवल उचित किन्तु ज़रूरी है, और इस प्रकार का एजीटेशन बिलकुल ठीक है; तथापि "नानकोपरेशन अर्थात् गवर्नमेंट से सम्बन्ध त्याग" की पालिसी इख़्तयार करना और उसकी बिना पर कोई ऐसी एजीटेशन करना कि जिस में गवर्नमेन्ट की उन बुनयादी ताक़तों की भी जड़ें उखाड़ने की तजवीज़ें पेश की जाती हों, कि जिन के बिना कोई और किसी प्रकार की अपनी वा विदेशी गवर्नमेन्ट क़ायम हो नहीं सकती, कदापि ठीक नहीं है, और इस प्रकार की पालिसी इख़लाक़न जायज़ नहीं है। इस गुमरही से हमारे देश वासियों को बचने और बचाने की नितान्त आवश्यकता है। इन्डियन नेशनल कांग्रेस ने अपने क़ायम होने के दिन से समझदार और नेक लोगों की रहबरी में रहकर जिस प्रकार का कान्स्टीट्यूशनल एजीटेशन जारी रक्खा था और जिस के द्वारा उस ने अब तक गवर्नमेन्ट के कई क़ानूनों की मन्सूख़ी और उसकी गठन में बहुत बेहतर इसलाह की है, उसी प्रकार के जायज़ एजीटेशन के तरीक़ को सदा काम में लाना उचित है। और अपने देश के वा अपनी क़ौम के तरफ़-

दार बनकर वा किसी मज़हबी पक्षपात से प्रेरित होकर किसी ग़ैर क़ौम, वा ग़ैर देश वा ग़ैर मज़हब के लोगों से घृणा करना वा उनके विषय में घृणा फैलाना, वा अपने किसी भी मतलब के लिए झूठ घड़ना और उस का प्रचार करना वा कोई और बुरा तरीक़ा इख़्तयार करना जैसे एक तरफ़ रुहानी भलाई के फ़ायदे के विरुद्ध है, वैसे हि देश की सच्ची भलाई के भी विरुद्ध है।

३० मई सं० १९२० ई० की सभा।

इस सभा में आत्म तत्व शिक्षक परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया, कि नेचर के विकास के क्रम में मनुष्य जगत् में दर्जे बदर्जे जिस २ प्रकार के बोध उत्पन्न हुए हैं, उनके विचार से वह चार हिस्सों में विभक्त हो सकता है :—

(१) माता के गर्भाशय में यद्यपि मनुष्यात्मा अपने लिए एक नाना अंग विशिष्ट जीवित शरीर निर्म्माण कर लेता है, और वहां वह अपनी आंख, नाक, कान आदि ज्ञान दायनी इन्द्रियां भी बना चुकता है, तथापि उनके द्वारा वह किसी प्रकार का बोध लाभ करने के योग्य नहीं होता, और वहां पर वह क्या शरीर और क्या आत्मा के और क्या किसी और प्रकार के ज्ञान के विचार से पूर्ण अन्धकार वा बेसुद्धि वा अज्ञानता की अवस्था में होता है।

(२) जब वह अपने शरीर को पूर्ण करके माता के पेट से निकल कर इस पृथिवी में आता है, और यहां की वायु में सांस लेता और यहां के सूर्य्य की रौशनी में आंखें खोलता है और माता वा किसी और के दूध से प्रतिपालित होता है, तब इस दुनिया में आकर उस में कई प्रकार के मानसिक बोध जाग्रति और उन्नति लाभ करते हैं, और इन बोधों के साथ २ वह सुख और दुख का बोधी होकर जो कुछ उसे सुख दायक महसूस हो, उसका अनुरागी और तरफ़दार और जो कुछ उसे दुख दायक महसूस हो, उस से घृणाकारी बनता है। यह दूसरी प्रकार की दुनिया है, कि जो ख़ुदग़रज़ी की दुनिया कहलाती है, कि जिस में क्या मूर्ख, क्या विद्वान, क्या धनवान और क्या निर्धन सभी तरह के लोग अपने सुख को वा अपने किसी सुख दायक सम्बन्ध वा सामान को मुख्य रखते हैं।

(३) इस दूसरी दुनिया में आने और रहने के बाद जब किसी २ मनुष्य में इस प्रकार के भाव वा बोध उत्पन्न होते हैं, कि जिन में से किसी के पैदा हो जाने पर वह अपने भीतर अपने किसी उपकारी वा और मनुष्यों वा जीवों की किसी प्रकार की भलाई वा सेवा करने के लिए प्रेरणाएं अनुभव करता है, और इस मत-लब के लिए अपने रुपए, अपनी जायदाद और अपनी

शारीरिक वा मानसिक शक्तियों को खर्च करके सुखी होता है, और ऐसा करने में अपने किसी नीच अनुराग की तृप्ति नहीं चाहता और नहीं ढूंढता, तब वह अपने इन सात्विक बोधों के विचार से जिस दुनिया में दाखिल होता है, वह तीसरी प्रकार की अर्थात् सात्विक दुनिया कहलाती है। ऐसा मनुष्य यद्यपि सात्विक दुनिया में किसी हद तक दाखिल होता है; तथापि वह इस हालत में भी दूसरी अर्थात् खुदग़रज़ी की दुनिया से पूर्णतः बाहर नहीं चला जाता। इसलिए इस हालत में भी वह अपने कई प्रकार के पतनकारी अनुरागों वा घृणाओं आदि का साथी बना रहता है, और अपने आत्मा के विषय में भी अज्ञानी और अबोधी और उसके सच्चे रूप और उसके बनने और बिगड़ने के नियमों और सत्य मोक्ष की विधि आदि के विचार से पूर्णतः अन्धकार वा अज्ञान की अवस्था में रहता है।

(४) इस से ऊपर वह चौथी दुनिया है, कि जिस में मनुष्य जगत् के विकास में देवात्मा का आविर्भाव हुआ है, और जो पूर्णतः हित और सत्य अनुराग की दुनिया है, कि जिस में आत्मिक अबोधता के स्थान में आत्मिक बोध दायनी देव ज्योति और सब प्रकार की मिथ्या और सब क़िस्म के नीच अनुरागों और नीच घृणाओं को नष्ट करने वाले देव तेज का प्रकाश हुआ

है । देवात्मा में इन देव शक्तियों के प्रगट होने से पहले मनुष्य जगत् आत्मा और आत्मिक जीवन विषयक नाना बोधों और इसलिए सत्य धर्म्म विषयक ज्ञान के विचार से पूर्णतः अन्धेरे में था और इस पृथिवी में मज़हब वा धर्म्म के नाम से जिस क़दर शिक्षा जारी थी, वह सब मिथ्या और कल्पना मूलक थी, और मनुष्य जगत् को आत्मिक पतन के सच्चे कारणों और उन से सच्ची मोक्ष का कोई ज्ञान न था, और न उस में इस प्रकार की ज्ञान दायनी कोई ज्योति वर्तमान थी, और न उसे इसी दुनिया में उसकी पतनकारी गतियों से मोक्ष देने और उसके आत्मा के उच्च विकास के लिए जिस देव तेज की ज़रूरत थी, उसका प्रकाश हुआ था, कि जिस का देवात्मा के आविर्भाव में प्रकाश हुआ है । यह चौथी दुनिया देव बोधों की दुनिया है, कि जिस में देवात्मा वास करते हैं, और जो कुल अधिकारी मनुष्यों के लिए विज्ञान मूलक सत्य धर्म्म के शिक्षक और उनके गुरु और उनके सच्चे मोक्ष दाता और सच्चे उपास्य देवता हैं । और जिन की शरण में आना प्रत्येक अधिकारी आत्मा का परम सौभाग्य है, और जिन की शरण में अधिकारी मनुष्यों को लाने के लिए किसी उच्च संग्राम करने के योग्य होना किसी भी मनुष्य का सब से बड़ा अधिकार है ।

लाहौर में एक विशेष सभा।

(सेवक, कार्तिक सं० १९७७ वि०)

भगवान् देवात्मा ८ अगस्त सं० १९२० ई० को सुबह को जब सोलन से लाहौर में वापस आए, तब उस समय बहुत से कर्म्मचारी सत्संग के लिए अपने २ चेत्रों से लाहौर में आए हुए थे, कि जिन में से कई दूसरे दिन हि वापस रवाना होने वाले थे। भगवान् यद्यपि बहुत कमज़ोर थे, तथापि उन के भीतर अपने उन कर्म्मचारियों के हृदयों तक अपने देव प्रभावों को पहुंचाकर उन्हें उभारने और उनका आत्मिक कल्याण करने का भाव इस क़दर प्रबल था, कि वह अपनी ऐसी अवस्था में भी उनके हित के लिए अगले दिन हि एक सभा करने के लिए व्याकुल हो गए।

इस सभा में पूजनीय भगवान् ने बताया, कि जब किसी अधिकारी आत्मा के भीतर, उनकी देव ज्योति प्रवेश करने का अवसर पाती है, तब उसका कुछ अन्धकार दूर होता है, और उस में उसे अपने आत्मा के सम्बन्ध में एक वा दूसरा सत्य दिखाई देता है, और आत्मा वा धर्म्म के विषय में कुछ सत्य ज्ञान प्राप्त होता है, उसे अपना कोई मिथ्या विश्वास वा मिथ्याचार हानिकारक रूप में नज़र आता है, उसे अपना कोई

नीच अनुराग वा अपनी नीच घृणा बुरे रूप में उपलब्ध होती है। यदि उस में देवात्मा के देव तेज के लाभ करने की भी योग्यता हो, तो उसे जो कुछ आत्मा के लिए हानिकारक दिखाई देता है, उसके लिए घृणा और दुख भी पैदा होता और वह उस अवस्था में सन्तुष्ट और शान्त नहीं रह सकता, बल्कि उस से मोक्ष पाने का आकांक्षी बन जाता है। और यदि उसके आत्मा में पर सेवा विषयक कोई उच्च भाव वा अनुराग जाग सकता हो, तो उस में देव तेज के द्वारा उसकी जाग्रति वा उन्नति भी शुरू हो जाती है।

इसके बाद इस सभा में भगवान् देवात्मा ने सच्चे धर्म्म साधनों की पहचान और उनकी नितान्त आवश्यकता के विषय में उन्हों ने फ़रमाया कि जब तक निम्न लिखित चार लक्षणों में से कोई लक्षण पैदा न हो, तब तक किसी देव समाजी जन का सच्चा धर्म्म साधन नहीं हो सकता :—

(१) तुम्हारा कुछ आत्म अन्धकार दूर हुआ और तुम्हें अपने आत्मा के सम्बन्ध में कोई सत्य दिखाई दिया?

(२) तुम्हें अपने किसी प्रकार के मिथ्याचार का बोध हुआ और उसके लिए कोई दुख वा कष्ट अनुभव हुआ, और उस से मोक्ष पाने

के लिए कोई आकांक्षा जाग्रत हुई ?

(३) तुम ने अपने किसी नीच अनुराग वा अपनी किसी नीच घृणा को बुरे और घृणित रूप में उपलब्ध किया, और उस से मोक्ष पाने के लिए तुम्हारे हृदय में कोई आकांक्षा जाग्रत हुई ?

(४) तुम्हारे हृदय में पर सेवा विषयक कोई शुद्ध आकर्षण भाव जाग्रत हुआ, वा तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार का पर सेवा विषयक कोई आकांक्षा पहले से ज़्यादा गहरी हो गई ?

अब जब तक तुम्हारे निज के वा सम्मिलित साधन में इस प्रकार के कोई लक्षण उत्पन्न न हों, तब तक वह सच्चा साधन नहीं कहा जा सकता। देव समाज में ऐसे सच्चे साधकों की नितान्त आवश्यकता है, कि जो क्या अपनी मोक्ष और क्या अपने किसी परहित विषयक अनुराग की उन्नति के लिए प्रत्येक त्याग और अपना सब कुछ अर्पण कर सकें।

पूजनीय भगवान् की यह सभा उनके कई कर्म्मचारियों वा अन्य सेवकों के भीतर अपने जीवन वा समाज की सेवा के सम्बन्ध में नया उत्साह संचार करने वाली प्रमाणित हुई।

भगवान् देवात्मा की अमूल्य देव वाणी।

[सेवक, भाद्रपद सं० १९८७ वि०]

(जुलाई सं० १९०३ ई० को भगवान् देवात्मा के एक क़ीमती उपदेश का सार।)

देव समाज के कसरत से सेवक और कर्म्मचारी अपने जीवन में यद्यपि कई प्रकार की खूबियां रखते हैं, और उन में से कितने समाज के लिए एक वा दूसरे अंग में कुछ सेवाकारी भी होते हैं, परन्तु

(१) उन में आत्मा और उसके हित और अहित के विषय में अब तक भी या तो कोई सच्चा बोध जागा नहीं, वा केवल मात्र जागा है। और इसीलिए वह क्या अपने चेत्र के सेवक सेवकाओं आदि और क्या अपने पारिवारिक सम्बन्धियों और क्या अपने साथी कर्म्मचारियों और सेवकों और क्या देवात्मा के सम्बन्ध में या तो कोई आत्मिक सम्बन्ध अनुभव नहीं करते, वा इतना कम अनुभव करते हैं, कि जो बहुत क़दर के योग्य नहीं।

(२) उन में उन आत्माओं के सम्बन्ध में भी कि जिन के भीतर उनके द्वारा कुछ हितकर परिवर्तन आया है, वा जिन की रक्षा और वेहतरी के लिए वह दायी हैं, उच्च और गहरा लगाव नहीं है। उनके चेत्र का कोई सेवक अपने किसी बढ़े हुए पतनकारी अनुराग

के कारण नीचे को जा रहा है, और उसके अधिकार से अपनी एक वा दूसरी सत्य प्रतिज्ञा को तोड़ने के निकट पहुंच गया है, वा कई सूरतों में अपनी किसी ऐसी प्रतिज्ञा को तोड़ चुका है; किन्तु वह उसके और उसके घर के सम्बन्धियों आदि के भले से बेखबर और बेपरवाह हैं। इसी तरह उन्हें कम से कम अपने क्षेत्र वा नगर के सेवकों के लिए जिस क़दर सोच विचार में लगे रहने की आवश्यकता है, वह सोच विचार वा फ़िकर उन में पाया नहीं जाता। वह उन सेवकों वा वह लोग अपने जिन घर वालों के साथ बन्धे हुए हैं, उनकी किसी बीमारी वा तकलीफ़ वा किसी मुसीबत वा उनकी किसी उलझन वा दिक्कत के बारे में आप कुछ जानना नहीं चाहते, और न उनके सम्बन्ध में अपने भीतर कोई सात्विक हमदर्दी अनुभव करते हैं, और न इस के लिए इन मामलात में कुछ सेवाकारी वा यथेष्ट सेवाकारी बनते हैं।

(३) उनके भीतर आत्माओं की भलाई के सम्बन्ध में उस **शुद्ध सात्विक भाव वा अनुराग** की सख्त कमी है, कि जिस के विना कोई जन आत्मिक परिवर्तन विभाग में योग्य कर्म्मचारी वा सेवाकारी नहीं बन सकता। और ऐसे सात्विक अनुराग की उच्च प्रेरणा के अनुसार औरों के हित के लिए और भेंट के भिन्न

उसे अपने तन और मन को भी प्रति दिन जिस क़दर भेंट धरने की आवश्यकता है, उन्हें वह भेंट नहीं धरता।

(४) आवश्यक मात्रा में आत्म बोधी न होने के कारण ऐसे जनों में से कई लोग पारिवारिक सम्बन्धियों के रखने पर उनके साथ पतनकारी अनुराग में अधिक बन्धे हुए पाए जाते हैं। और उनका दिल वा दिमाग़ उनके एक वा दूसरे शारीरिक आराम वा सुख आदि के लिए जिस क़दर काम करता है, उस क़दर उनके आत्माओं के हित के लिए काम नहीं करता। और वह कई सूरतों में उनके आत्मिक हित की ओर से पूर्णतः उदासीन वा बेपरवाह पाएं जाते हैं।

(५) अपनी ऐसी आत्मिक अन्धता वा अबोधता के कारण अपने आत्मा की तुलना में अपने शरीर को अधिक सत्य और सार समझते हैं। और उसे आत्मा का औज़ार जानने और उसे अपनी और औरों की आत्मिक भलाई में अधिक से अधिक सेवाकारी बनाने के इच्छुक होने की बजाय उसे जहां तक हो, सम्हाल २ कर रखते और कम से कम सेवाकारी बनाने की कोशिश करते हैं, और उनकी इस उलटी दृष्टि और उलटी गति का नतीजा आत्मिक जगत् के अटल नियम के अनुसार यह होता है, कि उन के आत्मा बजाय देवात्मा

के देव प्रभावों के पाने की योग्यता और अपने आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध में सूक्ष्म और सत्य दृष्टि में उन्नति लाभ करने के, ठीक इस के उलट हालत में ढलकर कठोर होते चले जाते हैं। वह इस सत्य के देखने के भी अयोग्य हो जाते हैं, कि जब तक किसी जन में पर सेवा विषयक कोई ऐसा शुद्ध सात्विक भाव वा अनुराग पैदा न हो, जो उसके आत्मा का सदा परिचालक रह सके, और जिस के लिए वह अपना कुल शरीर और उसका हर प्रकार का सुख, और अपना कुल दिमाग़ और अपना सब कुछ अर्पण कर सके, और इससे भी बढ़कर उसे अपने आत्मिक मोक्ष और अपने आत्मिक विकास के लिए देवात्मा के साथ जिस अमूल्य सात्विक प्रेम से बन्धने की आवश्यकता है, उसके पैदा करने के लिए आकांक्षी और फ़िकरमन्द हो सके, और फिर उनके देव प्रभावों को पाकर अपने नीच बन्धनों वा नीच अनुरागों से इस क़दर ऊपर हो सके, कि वह उसे अपनी ओर घसीट कर उसे गुमराह और भ्रष्ट न कर सकें, तब तक वह जैसे अपने नीच अनुरागों और अपनी नीच घृणाओं के दासत्व और उनके द्वारा अपने आवश्यक आत्मिक पतन से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, वैसे ही अपने किसी उच्च सेवा विषयक काम को भी

लगातार जारी नहीं रख सकता।

(६) सब मनुष्यात्माओं से ऊपर दर्जा रखने वाले जो देवात्मा हैं, उनके देव रूप की हक़ीक़त का भी या तो कोई सच्चा बोध नहीं रखते, वा नाम मात्र बोध रखते हैं। उन में ऐसे हि जन ज़्यादा हैं, कि जो अपने भीतर कई अति आवश्यक उच्च भावों के न रखने के कारण उनके साथ या तो अपना कोई सम्बन्ध अनुभव नहीं करते, वा केवल नाम मात्र अनुभव करते हैं। वह अपने नीच भावों के द्वारा अपने पारिवारिक जनों के साथ जुड़े हुए होने के कारण उनके साथ जैसा असली सम्बन्ध अनुभव करते हैं, और उन नीच भावों की प्रेरणा और उनकी तृप्ति के लिए वह उनके सम्बन्ध में जिस तरह से फ़िकरमंद होते और कई प्रकार के अमल करते हैं, वैसी कोई बात उन्हें देवात्मा के संबंध में नज़र नहीं आती। वह अपनी उलटी दृष्टि के कारण अपनी पत्नी, अपने पति, अपनी लड़की, अपने लड़के, अपनी बहिन वा अपने भाई को देवात्मा की तुलना में अपना बहुत बढ़िया सम्बन्धी देखते और अनुभव करते हैं, और उन्हें देवात्मा से बड़ा और अपने लिए बहुत आवश्यक सम्बन्धी जानते हैं। और इस उलटी दृष्टि के द्वारा रात दिन झूठ की पैरवी करके आत्मा को अन्धा और मैला और देवात्मा के सम्बन्ध में किसी उच्च

भाव के पैदा होने के अयोग्य बनाते रहते हैं।

(७) वह यह देखकर और जानकर भी कि भगवान् देवात्मा क्या उनके और क्या औरों के अन्धकार ग्रस्त और विनाश की ओर गति करने वाले आत्माओं के उद्धार और उनकी रक्षा और भलाई के लिए किस क़दर व्याकुल रहते हैं, और किस क़दर गहरा संग्राम करते हैं, और यदि ऐसे नीच आत्माओं की पहली ज़िन्दगी में कोई बेहतरी आई है, और उनका एक वा दूसरी प्रकार के महा हानिकारक मिथ्या विश्वासों वा पापों आदि से कुछ भी उद्धार हुआ है, वा उन्हें धर्म्म का कुछ भी सत्य ज्ञान मिला है, तो केवल और केवल देवात्मा के द्वारा, और यह कि उनके किसी पारिवारिक वा किसी और सम्बन्धी ने न केवल यह, कि उन्हें ऐसा महा दुर्लभ दान नहीं दिया किन्तु उस ने उनके आत्मा के नीच और पतित बनाने में अवश्य भाग लिया है, फिर भी वह एक ओर आत्म बोधी न होने और दूसरी ओर उलटी दृष्टि रखने के कारण अपने ऐसे महा दुर्लभ दान के दाता देवात्मा की तुलना में अपने उन सम्बन्धियों को बड़ा और अपना बहुत बड़ा नज़दीकी ख़याल करते हैं, और देवात्मा के किसी शारीरिक रोग वा उनकी किसी पीड़ा वा उनकी किसी प्रति दिन की आवश्यकता वा उनके हृदय में उनके और उनके सम्बन्धियों और

उनके भिन्न और आत्माओं के कल्याण के लिए जो कुछ व्याकुलता रहती है, और जिस २ प्रकार की उच्च चिन्ता रहती और चलती है, और वह अपने अद्वितीय जीवन व्रत की सिद्धि के लिए जिस २ प्रकार के फ़िकरों में रहते हैं, उन्हें वह अपने भीतर न केवल कुछ अनुभव नहीं करते, किन्तु अपने भीतर ऐसा अनुभव कराने वाली उच्च शक्तियों के उत्पन्न होने की भी कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करते। हां, इससे भी बढ़कर भगवान् देवात्मा अपने शरीर की इस रोगी और दुखदाई अवस्था में प्रतिदिन प्रातःकाल ऐसे कसरत से आत्माओं के भीतर उच्च जाग्रति पैदा करने के निमित्त उन्हें स्मरण करके उन तक अपने जिन महा दुर्लभ देव प्रभावों के पहुचाने की चेष्टा करते हैं, उनकी भी वह कोई महिमा अनुभव नहीं करते, और उस समय उठकर और उन के साथ आत्मिक योग करके उन से देव प्रभाव लाभ करने के स्थान में वह अपने बिस्तर पर मौज से सोया रहना पसन्द करते हैं; और अपनी ऐसी महा शोचनीय क्रिया से उनका इस प्रकार से अपमान वा निरादर करके खुश रहते हैं, और अपने हृदय की कठोरता को बढ़ाते रहते हैं।

(८) भगवान् देवात्मा के सम्बन्ध में एक ओर कई प्रकार के अति आवश्यक सात्विक वा धर्म्म भावों से

ख़ाली होने के कारण वह उन के सम्बन्ध में अपने निज के साधनों के द्वारा उन से अपने आत्मा के लिए रक्षाकारी और मोक्ष दायक और विकासकारी देव प्रभाव भी लाभ नहीं कर सकते, और अपने आप को अपने चौतरफ़ा पतनकारी प्रभावों से भली भांत सुरक्षित भी नहीं रख सकते, और दूसरी ओर जिन में अहं अनुराग के अधिक बढ़ होने के कारण अपने परम हितकर्ता सम्बन्धी के सम्बन्ध में भी एक वा दूसरे समय में महा पतनकारी और आत्म जीवन विनाशक घृणा भाव जाग्रत हो जाता है, और वह उन के सम्बन्ध में भी एक वा दूसरी प्रकार की दुश्चिन्ता करने से रुक नहीं सकते, उन के भीतर यदि कभी देवात्मा के लिए कुछ भी सच्ची श्रद्धा वा उन के लिए कुछ भी आकर्षण का भाव जागा हो, तो भी वह इस पतनकारी घृणा भाव के द्वारा नष्ट हो जाता है, और उस के नष्ट हो जाने से वह उन की आत्मिक सच्ची पूजा करने और उन से देव प्रभावों के लाभ करने के पूर्णतः अयोग्य हो जाते हैं। ओह! किसी भी आत्मा के लिए यह किस क़दर भयानक और ख़तरनाक नतीजा !! इस लिए यदि ऐसे जनों को एक साल के लिए भी अपने तौर पर काम करने के लिए छोड़ दिया जावे, तो वह एक ओर देवात्मा की सच्ची पूजा के द्वारा उन से जीवन दायक देव प्रभावों के पाने की

अयोग्यता के कारण और दूसरी ओर इर्द गिर्द के पतन कारी प्रभावों में रहने और पर सेवा विषयक पूर्णतः शुद्ध सात्विक अनुराग के न होने के कारण धीरे २ नीचे की ओर जाना आरम्भ करते हैं। और कुछ अर्सा में हि वहुत' रद्दी और उत्साह हीन वन जाते हैं। अब जो लोग खुद इस प्रकार के हृदय रखते हों, वह देव समाज के आत्मिक परिवर्तन विभाग के लिए कोई जान दार कर्म्मचारी नहीं समझे जा सकते।

(९) आत्मा के कुल नीच अनुरागों में से उस का अहं अनुराग सब से बढ़ कर हानिकारक और पतनकारी अनुराग है। पूर्ण अहं अनुरागी के लिए अपने प्रत्येक सम्बन्ध में पूर्ण स्वार्थी होना और रहना आवश्यक है। वह दुनिया में विद्वान हो वा मूर्ख, धनवान हो वा निर्धन, उच्च पद रखने वाला भद्र हो वा रज़ील, शरीर के विचार से वलवान हो वा दुर्ब रंग के विचार से गोरा हो वा काला हो, किन्तु अपने आत्मा वा दिल के विचार से वह निहायत घटिया दर्जे का मनुष्य होता है; इसलिए जिस २ जन में यह आत्म विनाशक रोग जिस दर्जे अधिक होता है, वह उसी दर्जे केवल यही नहीं, कि देवात्मा के साथ अपना आत्मिक सम्बन्ध स्थापन करने के अधिक अयोग्य और उनके सम्बन्ध में अधिक उदासीन होता है; किन्तु कई सूरतों में वह

ऐसी महा नीच प्रकृति के कारण उनकी झूठी निन्दा करके भी बहुत खुशी लाभ करता है। और ऐसे महा पाप के द्वारा और भी बढ़ चढ़कर अपने आत्मा का आप घाती बनता है। ऐसे जनों के हृदय निहायत कठोर बनते रहते हैं, और वह अपने भीतर देवात्मा के देवरूप के लिए सच्ची श्रद्धा और आकर्षण के उत्पन्न करने के बिलकुल अयोग्य बन जाते हैं। ऐसों के भीतर और आत्माओं के हित के लिए भी या तो कोई शुद्ध सात्विक भाव पैदा नहीं होता वा पैदा होकर धीरे २ मर जाता है, और वह यदि अपनी बड़ाई और इज्जत आदि के लालच की प्रेरणा से इस प्रकार का कुछ काम करते हों, तो वह ऐसे अदना भावों से परिचालित होकर अपने भीतर किसी उच्च भाव को उत्पन्न और उन्नत नहीं कर सकते, और वह अपने नीच भावों वा नीच घृणाओं के बन्धनों से ऊपर नहीं हो सकते। इसीलिए वह विश्वास के योग्य और कोई मुस्तकिल प्रचारक भी नहीं बन सकते। और वर्षों तक इस प्रकार का काम करके भी वह धीरे २ इस कदर पतित हो जाते हैं, कि देव समाज के मेम्बरों के लिए जिन आठ पापों से विरत रहने की शरत रखी गई है, उन पापों से बचे हुए रहकर भी वह आत्मिक परिवर्तन विभाग में काम करने के पूर्णतः अयोग्य बन जाते हैं। देव समाज में

ऐसे लोगों के दृष्टान्त वर्तमान हैं, कि जो वर्षों तक आत्मिक परिवर्तन विभाग में काम करने के बाद अब इस प्रकार का कोई काम नहीं करते और नहीं करना चाहते।

(१०) एक ओर आत्म हित और अहित से अबोधी और दूसरी ओर अपने परम हितकर्ता और जीवन दाता भगवान् देवात्मा से आत्मिक सम्बन्ध न रखने वाले और उनके सम्बन्ध में निज के साधनों के करने की योग्यता से ख़ाली जन देवात्मा की रची हुई उन पुस्तकों को भी लगातार पढ़ने और विचारने के इच्छुक नहीं होते, कि जो उन के अद्वितीय आविर्भाव और देव जीवन के विकास और उसके लिए उनके सब प्रकार के सच्चे त्यागों वा उनकी जीवन कथाओं के विषय में हैं। ऐसी पुस्तकों का मज़मून उन्हें कशिश नहीं करता और नहीं कर सकता। और वह क्या अपने जीवन दाता और परम हितकर्ता और क्या अपने सार आत्मा के सम्बन्ध में अन्धकार में रहना और कोई सत्य न देखना पसन्द करते हैं। और इसीलिए जो खुद अन्धकार और अज्ञान के प्रेमिक हों, वह दूसरे अन्धकार ग्रस्त आत्माओं के लिए इस विषय में क्या सेवाकारी बन सकते हैं? कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।

सत्य विश्वास और शुभ भावों से किसी भले काम में सेवाकारी होने की ज़रूरत ।

(सेवक , कार्तिक सं० १६८२ वि०)

एक मुक़ाम के तीन सामाजिक जन अपने यहां की देव समाज की एक बहुत हितकर तालीमी संस्था के लिए दान एकत्र करने के सिलसिले में परम पूजनीय भगवान् के दर्शनों के लिए ११ जुलाई सं० १६२५ ई० को पर्व्वत आश्रम सोलन में पहुंचे और दो दिन तक भगवान् के दर्शनों और उनके हितकर उपदेशों और यहां की उच्च संगत से लाभ उठाते रहे । १३ जुलाई की सुबह को जब पूजनीय भगवान् सैर के लिए बाहर तशरीफ़ लेजाने लगे, तब हित स्वरूप भगवान् यह मालूम करके कि वह सेवक उसी रोज़ बाहर दौरे पर जाने वाले हैं, उन्हें सेहन में खड़े २ ही अपना एक अति प्रभावशाली उपदेश देने के लिए मजबूर हो गए । पूजनीय भगवान् ने उनके ध्यान को इस तरफ़ विशेष तौर से फेरा कि जिस स्कूल का बोझा उन्होंने अपने ज़िम्मे लिया है, उसे कामयाबी के साथ चलाना उन का फ़र्ज़ है, उस के लिए जहां उन्हें अपनी तरफ़ से खुले दिल से धन का दान दे कर सेवाकारी होने की ज़रूरत है, वहां अपना वक्त और अपने तन आदि की ताक़तें खर्च करके औरों से भी धन की सहायता हासिल करने की ज़रूरत है । लेकिन

किसी ऐसे काम में सब से बढ़कर उनके अन्दर जिस चीज़ के पैदा होने की ज़रूरत है, वह सत्य विश्वास है, और वह यह है कि अगर किसी भी भले काम को हाथ में लेकर शुभ इच्छा और पूरे उत्साह और मेहनत के साथ कोशिश की जाए, तो उस में अवश्य कामयाबी होती है। और सच्चे दिल से किसी भी भले काम के लिए कोशिश करने से मनुष्य के आत्मा का भी भला होता है।

(और ताक़तों के भिन्न शरीर को भी परोपकार के कामों में सेवाकारी बनाने की आवश्यकता।)

इसी सिलसिले में पूजनीय भगवान् ने फ़रमाया:- याद रक्खो कि तुम्हारा यह शरीर, जिसे तुम सम्भाल २ कर रखते हो, एक दिन राख की ढेरी बन जायगा। तुम जितना उसे परोपकार के किसी काम में लगा लोगे, उतना हि उसके द्वारा तुम अपने आत्मा का भला करलोगे, और उतना हि यह तुम्हारा जिस्म सच्चे अर्थों में तुम्हारे लिए सफल होगा। तुम उसे नीच रागों की तृप्ति में लगा कर नष्ट मत करो, बल्कि जब तक तुम्हारे लिए मौक़ा है, उसे भलाई के काम में लगाकर भली भान्त सफल करो।

(किसी के धन और जायदाद की बेहतरीन सफलता किस तरह हो सकती है ?)

उन्होंने फ़रमाया कि तुम अपने धन को अपनी

सन्तान के चरणों में भेंट कर जाने के लिए जमा मत करो, बल्कि उसे भी देवसमाज के आला भलाई के कामों में खर्च करो। बेशक हमारे देश में यह रिवाज ज़रूर पाया जाता है, कि लोग अपनी सारी उमर की कमाई अपनी औलाद को दे जाते हैं, और इसमें तृप्ति बोध करते हैं, लेकिन सत्य धर्म्म इस की इजाज़त नहीं देता। सत्यधर्म्म की शिक्षा के अनुसार जब तक तुम्हारी कोई सन्तान अपना गुज़ारा आप करने के योग्य न हो, तब तक बेशक उसकी पालना करना तुम्हारा फ़र्ज़ है, लेकिन जब वह खुद कमाकर अपना गुज़ारा आप करने के योग्य हो जाय, तब उसके बाद उसके सम्बन्ध में तुम्हारा वह फ़र्ज़ पूरा हो चुका। फिर सत्य धर्म्म की शिक्षा यह है, कि तुम अपने रुपए और जायदाद को परोपकार के कामों में लगादो। उसके बाद भी यदि तुम अपनी सन्तान की पूजा में हि लगे रहो, तो यह तुम्हारा मोह बन्धन है। अर्थात् तुम उसका हित नहीं चाहते बल्कि उसकी गुलामी के कारण ऐसा करते हो। सन्तान की गुलामी और अन्य नीच सुखों की गुलामी आत्मा के जीवन का नाश करती है, और सत्य धर्म्म की शिक्षा के अनुसार जिसे अपने आत्मा का बोध हो गया हो, उस के लिए ऐसी गुलामी से आज़ादी या मुक्ति हासिल करने की नितान्त आवश्यकता है।

जब एक २ कव्वा भी अपने बच्चे के जवान होने के बाद उसे खुद अपना पेट पालने के लिए छोड़ देता है, तब इन्सान की यह कितनी घटिया और रद्दी या नीच हालत है, कि वह सारी उमर अपनी सन्तान के पीछे हि मारा २ फिरता रहे, और अपने आप को उन का गुलाम बना ले!! तुम यह निश्चय रक्खो कि अपनी सन्तान को खुद कमाने के लायक़ बना कर उसे अपने लिए खुद कशमकश करने के लिए छोड़ देने से वह खतम नहीं हो जाएगी, बल्कि वह केवल यही नहीं कि जिएगी किन्तु अच्छी तरह जिएगी। इसी सिलसिले में भगवान् ने श्रीमान् पंडित हरनारायण अग्निहोत्री जी की तरफ़ इशारा करके कि जो वहां पास हि खड़े थे फ़रमाया, कि यह हमारे बेटे तुम्हारे सामने खड़े हैं, कि जो इस दुनिया में हमारे सब से बड़े बेटे हैं। जब से यह खुद कमाने के लायक़ हुए, तब से हम ने इन की पालना बन्द कर दी, तो भी यह जीते हैं और अच्छी तरह जीते हैं। अब यह बूढ़े हो चले हैं, तब भी खूब मेहनत से काम करते हैं और अपनी पत्नी और बच्चों समेत जीते हैं। तुम भी यदि हमारी मिसाल की पैरवी करके अपना धन और अपनी जायदाद परोपकार विषयक कामों में लगा दोगे और अपनी जवान और कमाऊ सन्तान के चरणों में भेंट नहीं धरोगे, तो वह भी किसी दुर्घटना को छोड़ कर

जहां तक निर्वाह का ताल्लुक है, ज़रूर अपना निर्वाह करेगी और ज़रूर जिएगी।

जो लोग रिवाज और अपने मोह के वस में होकर अपना धन और अपनी जायदाद अपनी सन्तान को दे जाना चाहते हैं, ऐसे कई मनुष्यों की कितनी हि सन्तान ऐसी खुद ग़रज़ और रद्दी होजाती है कि वह अपने दिल २ में यह आकांक्षा करती रहती है कि हमारा वाप शीघ्र मरजावे और हम सारी जायदाद के मालिक होकर खूव दिल खोलकर मौज वहार करें !! ओह ! कैसी अधमता !! इस तौर पर मुफ्त में रुपया और जायदाद हासिल करके कितने हि नौजवान कई क़िसम की बुराईयों में फंसकर अपना सत्या नाश करते हैं, और जो ऐसा नहीं भी करते, वह भी मुफ़त में दौलत पाकर कई सूरतों में वहुत सुस्त, निकम्मे और खुदगर्ज़ वजूद वन जाते हैं।

(दो मिसालें)

भगवान् ने इसी सिलसिले में फ़रमाया, कि यदि किसी जन का एक वेश्या के साथ ताल्लुक़ हो और वह तुम से आकर यह सवाल पूछे कि मैं अपनी सारी जायदाद उस वेश्या को हि दे जाना चाहता हूं, तो तुम लोग देव समाजी होकर उसे क्या सलाह दोगे, निश्चय यही कि उसे ऐसा हरगिज़ न करना चाहिए,

क्योंकि वेश्या के पास उस जायदाद के जाने से किसी सच्चे परोपकार या पुण्य का काम न होगा। इसी तरह यदि कोई जन अपना धन किसी सुपात्र को दान करने के स्थान में उसे ऐसे हट्टे कट्टे ब्राह्मणों को खिलाता फिरता हो, कि जो काम करने के लायक़ हों और उन्हें मुफ़्त खोरा बनाता हो, तो जैसे वह अपने उस धन का अनुचित और बहुत बुरा इस्तेमाल करता है; ठीक वैसे हि यदि तुम अपना धन अपनी ऐसी सन्तान को देते हो, कि जो ख़ुद कमाने के योग्य है, और इस लिए वह सुपात्र नहीं, जो तुम्हारे इस धन को परोपकार विषयक काम में नहीं लगाना चाहती, बल्कि उसे अपने नीच रागों की तृप्ति का ज़रिया बनाना चाहती है, तो तुम भी सत्य धर्म्म के हुकम के अनुसार इसका अनुचित इस्तेमाल करते हो।

(देव समाज से सम्बन्ध रखने वालों को आला मिसालें क़ायम करने की ज़रूरत)

याद रक्खो कि एक दिन ऐसा आ जाएगा, कि जब यह धन तुम्हारा नहीं रहेगा, और किसी और के हाथों में चला जाएगा, तब अति आवश्यक है, कि इस से पहले ही जब तक तुम्हारा इस पर अधिकार है, तुम देव समाज के मेम्बर होकर उसे देव समाज के सब से आला उपकार के कामों में लगाकर सफल करो और

अपने ऐसे सच्चे दान के ज़रिए अपना आत्मिक हित लाभ करने के भिन्न देव समाज में कोई आला मिसाल क़ायम करो। देव समाज में जो सब प्रकार की मिथ्या के नष्ट करने और आत्मिक सत्य ज्ञान के देने का काम हो रहा है, अधिकारी मनुष्यों को नाना पापों और बुराइयों से निकाला जा रहा है, उनके अन्दर उच्च भाव संचार किए जा रहे हैं, ऐसा काम और दुनिया में कहां हो रहा है ? सख्त ज़रूरत है, कि देव समाज से सम्बन्ध रखने वाले जन ऐसे आला कार्य में अपने धन और अपनी जायदाद को अधिक से अधिक अर्पण करके उन्हें बेहतर से बेहतर तौर पर सफल करने की ज़रूरत को अच्छी तरह अनुभव करें। "पुण्यम् परोपकाराय" अर्थात् परोपकार से हि हित की प्राप्ति होती है, इसकी हक़ीक़त को उपलब्ध करके क्या तुम लोगों को और क्या देवसमाज से सम्बन्ध रखने वाले और स्त्री पुरुषों को अपने धन को देव समाज के बेहतरीन परोपकार के काम में लगाकर सच्चा पुण्य लाभ करना चाहिए।

(किसी भले काम के लिए दूसरों से मदद मांगना अच्छा काम है।)

फिर तुम भले काम के लिए जो दूसरों से दान मांगने जा रहे हो, उस में तुम्हें किसी क़िस्म की झिजक या

शरम महसूस नहीं करनी चाहिए। बल्कि पूरे उत्साह से संग्राम करना चाहिए। खुद खाने के लायक होकर अपने लिए भीख मांगना बेशक बहुत बुरा है, और सख्त गिरावट की निशानी है। जो जन खुद कमा सकता है, उसे कोई हक हासिल नहीं, कि वह सोसाइटी पर अपना बोझा डाले; लेकिन किसी भले काम के लिए जैसे खुद ज़्यादा दान देना इन्सान का उच्च अधिकार है, वैसे हि उसके लिए औरों से दान इकट्ठा करने में अपनी शक्तियों को अर्पण करना भी उसका उच्च अधिकार है। क्योंकि वह अपनी कोशिश से दूसरों के धन को भले काम में लगाकर सफल करता है, और अपनी शक्तियों से उस भलाई के काम के फैलने में मददगार बनकर उन्हें भी सफल करता है।

प्रचार कार्य्य के सम्बन्ध में कुछ मोटे २ तत्व।

[सेवक, आश्विन सं० १९८३ वि०]

मई सं० १९२६ ई० के आख़ीर वा जून के पहले सप्ताह में भगवान् के भीतर इस प्रकार के ख़यालात की लहरें उठनी शुरू हुईं कि तुम तो यहां रह कर भी अभी तक अपनी शारीरिक सख्त पीड़ा में मुब्तला हो, परन्तु जिस देव समाज के पौदे को तुम ने अपने सब प्रकार के सच्चे त्याग और सब प्रकार के सच्चे समर्पण के खून से

सींच२कर इतना बड़ा किया है, उस में कीड़ा लगा हुआ है, अर्थात् उस की प्रबन्ध विषयक अवस्था अच्छी नहीं है। उस के धन विभाग के काम का कोई ज़िम्मेवार निगरान नहीं है, और कुछ काल से जिस निसबत से समाज का ख़र्च बराबर बढ़ता चला जा रहा है, उस निसबत से इस की आमदनी नहीं बढ़ रही है। प्रचार विभाग की बेहतरी के लिए तुम पहले से हि कई वर्षों से बेचैन हो, इस लिए ऐसी सख्त बीमारी की हालत में भी तुम जो कुछ यहां से कर सकते हो, उस के लिए पूरी कोशिश करो, तुम्हारी शुभ कामनाओं और कोशिशों में हालात के अनुसार नेचर की विकासकारी शक्तियों से ज़रूर सच्ची सहायता मिलेगी।

भीतर की इस व्याकुलता के बहुत बढ़ जाने पर उन्हों ने पहले पहल वहीं से धन विभाग के सम्बन्ध में ज़रूरी तहक़ीक़ात करनी शुरू की। पहले एक काल तक वह पत्र व्यवहार द्वारा तहक़ीक़ात करते रहे, और उन्हों ने इस बारे में बहुत से ज़रूरी हालात मालूम किए। फिर उन्हों ने देव समाज के मंत्री को सोलन में बुलाया और उन के द्वारा कितने हि मामलात के सम्बन्ध में काग़ज़ात तलब किए, और उन के वहां पहुंचने पर उन्हों ने इस तहक़ीक़ात के सिलसिले को बराबर जारी रक्खा। इस अर्से में उन के भीतर बार २ यह प्रेरणा होती थी,

कि वह खुद जहां तक शीघ्र सम्भव हो, लाहौर चले जावें, और वहां पहुंच कर इन मामलात में अमली बेहतरी लाने का काम शुरू करें। मगर फिर यह देख कर कि उन का शरीर इन दिनों की सख़्त गरमी के सहने के पूर्णतः अयोग्य है, वह अपने दिल पर जबर करके रुके रहे, और पत्र व्यवहार के द्वारा हि विविध प्रकार के हालात मंगवा कर उन पर विचार करते रहे।

अगस्त का महीना ज्यों त्यों गुज़ार कर आख़िरकार पहली सितम्बर को भगवान् सोलन से रवाना हुए और दूसरी सितम्बर को लाहौर पहुंच गए। सफ़र की सख़्त थकान और स्टेशन पर एक लम्बे फ़ासले तक पैदल चलने के कारण वह देवालय में पहुंच कर बहुत कमज़ोर और निढाल हो गए, और उस दिन और रात वह बहुत निढाल हालत में रहे। अगले दिन ३ सितम्बर को कुछ बेहतरी मालूम करने पर वह एक बजे दोपहर के बाद सोटी पकड़ कर और धीरे२चल कर धन विभाग आफ़िस में पहुंचे और प्रायः दो घंटे तक वहां के रजिस्टरों और काम आदि की पड़ताल करते रहे। इस के साथ हि भगवान् ने प्रेस और अख़बारात की माली हालत के विषय में तहक़ीक़ात करने और उस में बेहतरी लाने की तजवीज़ सोचने की ग़रज़ से तीन कर्म्मचारियों की एक कमेटी नियत की।

इससे पहले उन्होंने सोलन में हि प्रचार विभाग के कई कर्म्मचारियों को ४ सितम्बर तक लाहौर पहुंच जाने की हिदायत भिजवाई थी, और उस के अनुसार वह लाहौर पहुंच गए थे। इसके बाद उन्होंने कई और कर्म्मचारियों को भी लाहौर में बुलाया और ५ सितम्बर से उन्होंने उनकी सभाओं का सिलसिला आरम्भ किया। प्रचार विभाग की हालत और उसमें बेहतरी लाने की तजवीज़ों के विषय में उन्होंने ५-६-७-८ और १० सितम्बर को पांच सभाएं कीं और वह इन सभाओं में अपने दुर्बल और वृद्ध और रोगी शरीर पर जवर करके प्राय: एक २ घण्टा वा उससे ज़्यादा देर तक संग्राम करते रहे।

इन सभाओं में जीवन दाता भगवान् ने नाना तत्वों और सत्यों के सम्बन्ध में जो रोशनी प्रदान की और अपना देव तेज अधिकारी जनों में संचार करने के लिए जो विशेष संग्राम किया, उसके विस्तार पूर्वक ज़िकर को छोड़ कर उन के बयान का संक्षिप्त सार यह है:—

उन्हों ने समाज के प्रचार विभाग की वर्तमान असन्तोष जनक अवस्था के जो मुख्य कारण बतलाए, वह यह हैं :—

(१) इस विभाग के बहुत से कर्म्मचारियों में या तो आत्मिक परोपकार विषयक सात्विक भाव बिलकुल

नहीं है, वा नाम मात्र है ।

(२) ऐसे जन अपने आत्मिक हित अर्थात सत्य मोक्ष और उच्च जीवन की प्राप्ति के लिए कोई अनुराग नहीं रखते ।

(३) उन्हें देवात्मा के साथ जिन कई उच्च भावों के द्वारा सच्चा आत्मिक योग करके उनके देव प्रभावों के लाभ करने और अपने २ आत्माओं में बेहतरी लाने की आवश्यकता है, इन साधनों को पूरा करने की वह योग्यता नहीं रखते; जैसा कि स्थूल देह त्यागी श्रीमान् देवत्व सिंह जी रखते थे । अर्थात ऐसे लोग देवात्मा के साथ वह आत्मिक सम्बन्ध हि नहीं रखते कि जिससे उन्हें उनके देवप्रभाव मिल सकें; जैसा कि श्रीमान् देवत्वासिंह जी प्रतिदिन कई २ घंटे साधन करके लाभ किया करते थे ।

(४) उनमें से कितने हि जन धन सम्पत्ति और सन्तान अनुराग और कितने हि जन कई प्रकार के और नीच अनुरागों के दास हैं और उनकी गुलामी के कारण या तो उनके दिलों में सात्विक वा उच्च भाव उत्पन्न हि नहीं हो सकते, वा किसी अंश में उत्पन्न होने पर उन्नत नहीं होते। और वह देवात्मा की देव ज्योति और देव तेज के असरों को न खुद यथेष्ट मात्रा में ले सकते हैं, और न उन्हें औरों तक पहुंचा सकते हैं । और इस

लिए उनके द्वारा जो थोड़ा सा काम होता है, वह सन्तोष जनक नहीं होता और फिर जो होता भी है, वह बहुत घटिया दर्जे का होता है।

(५) उन में समाज के किसी विभाग वा किसी स्थान का चार्ज लेने और उसे विविध हानियों से बचाने और उसे उन्नत करने के लिए जिन दो उच्च भावों की आवश्यकता है (अर्थात् उसको हानि से रक्षा के लिए ज़िम्मेवारी का भाव, और उसकी उन्नति के लिए अनुराग भाव) उनकी बहुत कमी है। इसलिए वह किसी संस्था वा समाज के किसी विभाग के काम को हाथ में लेकर एक तरफ़ उस के सम्बन्ध में ज़रूरी ज़िम्मेवारी के साथ काम करके उसे हानि से बचाने और दूसरी तरफ़ उस में उन्नति लाने के अयोग्य हैं।

(६) उन में से जो २ जन धन अनुराग और सन्तान अनुराग आदि में फंसे हुए हैं, वह दूसरों को उन नीच अनुरागों से नहीं निकाल सकते, और अधिकारी जनों में परोपकार के कामों के लिए धन आदि के दान के सम्बन्ध में कोई उच्च भाव पैदा नहीं कर सकते।

(७) उन में से कई जन रुपया और जायदाद का पैदा करना अपना मुख्य लक्ष्य समझते हैं और प्रचार सम्बन्धी काम को रूंगे भूंगे की चीज़ समझते हैं।

(८) उन में से कई जन पैसे को मुख्य रखकर काम करते हैं।

इस हालत को दूर करने के लिए भगवान् देवात्मा ने इन सत्यों को बार २ उपस्थित जनों के दिलों में नक़्श करने का यत्न किया, कि

(१) किसी प्रकार का सुख मनुष्य का लक्ष्य नहीं है। चाहे यह सुख धन सम्पत्ति विषयक अनुराग को लेकर हो, चाहे सन्तान् अनुराग को लेकर, चाहे स्वादकार वस्तुओं के खाने पीने को लेकर, चाहे काम भाव की तृप्ति को लेकर और चाहे किसी और प्रकार के अनुराग को लेकर हो; किसी भी सुख का अनुरागी बनने से प्रत्येक मनुष्य का आत्मा पतित होता है। इस पतन से उसके आत्मा में अन्धकार की उत्पत्ति और वृद्धि होती है, और उसका यह अन्धकार उसे अपने आत्मा और अपने आत्मिक जीवन विषयक नाना सत्यों के देखने के अयोग्य बनाता है। इस पतन से उस में उलटी दृष्टि पैदा होती है, और वह अपनी इस उलटी दृष्टि के कारण नाना सम्बन्धों में सत्य को असत्य और असत्य को सत्य, शुभ को अशुभ और अशुभ को शुभ के रूप में देखता है। उसके भीतर विविध प्रकार की नीच घृणाएं पैदा होती हैं, जो कि आत्मिक जीवन के लिए ज़हर क़ातिल का काम करती हैं, और उन सब से उसके भीतर विविध प्रकार की मिथ्या, और विविध प्रकार के दुराचारों की ओर जाने के धक्के लगते हैं, और वह कई तरह की

मिथ्या और कई तरह की और नीच गतियों को ग्रहण करता है। इन्हीं कारणों से मनुष्य जगत् में इस क़दर विविध प्रकार का झूठ और दुराचार आदि फैला हुआ है, कि जिस का बयान नहीं हो सकता।

(२) किसी मनुष्य के हृदय में यदि विशुद्ध परोपकार का भाव पैदा हो और वह यथेष्ट गहराई में वर्तमान हो, और वह इस भाव से परिचालित हो कर बिना किसी से कुछ रुपया पैसा, तारीफ़, इज्ज़त, मान और पद आदि का लालसी होने के केवल भलाई करने के निमित्त अपना सब कुछ अर्पण कर सके, और किसी से अपनी ओर से अपने लिए कुछ न चाहे, और अपने परिवार के लोगों के लिए भी किसी से कुछ न मांगे और नेचर के विकासकारी नियम पर अटल विश्वास रखकर और उस नियम के अनुसार जिस देवात्मा का प्रकाश हुआ है, उन के देवरूप के साथ सच्चा योग करके अपना काम किए जाय; तब नेचर की गुप्त विधि के अनुसार न केवल उस की, या यदि उस का कोई परिवार हो, तो उस परिवार की पालना आदि के आवश्यक सामान अपने आप पैदा हो जाएंगे, बल्कि जिस शुभ कार्य में वह लगा हुआ होगा, उस की उन्नति के लिए भी समय के साथ २ कई प्रकार के और आवश्यक सामान और अनुकूल हालात भी पैदा होते जाएंगे, कि जिस

की पूर्णतः और सच्ची मिसालें देव समाज के इतिहास में मौजूद हैं।

इन तत्वों को साफ़ तौर से समझाने के लिए भगवान् देवात्मा ने अपनी तक़रीर के सिलसिले में कई प्रकार के दृष्टान्त पेश किए और उसके बाद उन्हों ने यह घोषणा की कि वह चाहते हैं, कि आत्मिक परिवर्तन का काम दुकानदारी की वस्तु न समझा जावे, किन्तु यह काम विशुद्ध परोपकार भाव से हो, कि जिस में और कोई अदना ग़रज़ न हो। इसलिए देव समाज के प्रचार विभाग में जो लोग काम करेंगे, उन्हें आगे को समाज की ओर से उनकी अपनी वा उनके परिवार की ज़रूरतों के लिए एक पैसा तक नहीं दिया जाएगा, और उन्हें अपने २ खाने पीने, कपड़े, सफ़र और डाक ख़र्च और हर प्रकार के और ख़र्च के लिए नेचर की उस गुप्त परन्तु सच्ची विधि पर विश्वास करके काम करना होगा, कि जिस का ऊपर बयान किया गया है। और इसके सिवाय उन्हें और कई प्रकार के आवश्यक त्याग भी ग्रहण करने पड़ेंगे।

भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया कि यद्यपि प्रचार विभाग में कुछ ऐसे जन भी हैं, कि जो समाज से कोई निर्वाह वृति नहीं लेते, परन्तु वह सफ़र ख़र्च आदि की क़िस्म से कई बातों का बोझा समाज पर डालते हैं,

आगे को उनका यह बोझा भी समाज पर न रहेगा। अन्त में उन्हों ने अपील की, कि तुम में से जो लोग इस उसूल की बिना पर प्रचार विभाग में काम करना चाहते हों, वह अपने आप को पेश करें और जो ऐसा नहीं कर सकते, वह बेशक इस काम को छोड़दें।

उनकी इस अपील पर कई जनों ने उपरोक्त उसूल की बिना पर हि इस विभाग में काम करने के लिए अपने २ नाम लिखवाए।

हार्दिक शुभ कामनाएं।

(लेवक, कार्तिक सं० १९८३ वि०)

(जिन का उन्हों ने लाहौर में कर्म्मचारियों की कुछ ख़ास सभाओं में अपना उपदेश शुरू करने से पहले दिल की गहरी व्याकुलता से प्रकाश किया था।)

६ सितम्बर सं० १९२६ ई०।

तुम सब अपना २ चित्त स्थिर करो। शुभ की आकांक्षा करो। सत्य मूलक शुभ की आकांक्षा करो। सत्य और शुभ को छोड़कर जो २ चिन्ता है, जो २ क्रिया है, वह मनुष्यात्मा के लिए हानिकारक है। हानिकारक है तुम्हारे लिए और हानिकारक है औरों के लिए। इसलिए इस समय बार २ इस प्रकार की कामना

करो, कि हम कल से जिस उद्देश्य को लेकर यहां एकत्र होते हैं, वह शुभ उद्देश्य जहां तक सम्भव हो सफल हो। जिस समाज के तुम अंग हो, जिस समाज के लिए तुम अब तक एक वा दूसरी प्रकार का काम करते रहे हो, उस समाज की उन्नति के रास्ते में जो २ रुकावटें हैं, उनके दूर होने के निमित्त यदि तुम भी आकांक्षा रखते हो, तो अपनी २ उस आकांक्षा के अनुसार उनके दूर होने के निमित्त मेरी इस शुभ कामना के साथ योग करो। किसी तरह उस में उच्च परिवर्तन का मार्ग खुले। और जहां तक सम्भव हो, उसकी राह में जो २ रुकावटें हैं, वह दूर हों। तुम्हारे भले का रास्ता खुले। समाज के भले का रास्ता खुले। तुम्हारे और समाज के हित का मार्ग खुले। अशुभ नष्ट हो। शुभ की जय हो। और जहां तक नेचर की विधि के अनुसार सम्भव हो, हमारा यह सम्मिलन शुभ जनक हो।

(७ सितम्बर सं० १९२६ ई०।)

ओ नेचर! तेरे अपने लाखों वर्षों के विकास क्रम में जो अद्वितीय देव शक्तियां मुझे प्राप्त हुई हैं, और उनके विकास के द्वारा मेरे आत्मा में जो अद्वितीय देव ज्योति विकासित हुई है, उस अद्वितीय देव ज्योति में तूने मुझ पर यह महा सत्य प्रगट किया है, कि

किसी प्रकार का भी सुख मनुष्यात्मा का लक्ष्य नहीं है। इसलिए जो २ जन जितने सुख परायण हैं, और वह जन विविध सुखों के अनुरागी हैं, वह अपने आत्मिक जीवन के विचार से उतने हि पतित दशा में हैं। वह आत्मिक जीवन के विचार से मरी हुई हालत में हैं। हाय ! इस सारी दुनिया में मज़हब और धर्म के नाम से भी जो शिक्षा दी गई है, उस में एक वा दूसरे प्रकार के सुख को हि लक्ष्य बनाया गया है। यहां तक कि सुख के लालसी मनुष्यों को पूर्णतः कल्पित सुखों का भी अन्ध विश्वासी बनाया गया है; और वह क्या अपने २ ऐसे अन्ध विश्वासों के कारण और क्या तरह २ के शारीरिक और अन्य सुखों के लालसी और उन से जो नीच घृणाएं पैदा होती हैं, उन के दास बन जाने के कारण अपनी जिस २ प्रकार की आत्मिक हानि कर रहे हैं, उसका दृश्य बहुत हृदय विदारक है। वह सुख को चाहते हैं, और केवल सुख को चाहते हैं, और उसी को मुख्य रखते हैं; इसलिए दोनों में मुठभेड़ होने पर वह सुख के लिए शुभ को लात मारते और उसे त्याग करते हैं, वह सुख और शुभ में जो मूल अन्तर है, उसके देखने के भी अयोग्य हैं, क्योंकि यह मूल अन्तर केवल देवात्मा की देव ज्योति के द्वारा हि भली भांति दिखाई दे सकता है।

इसलिए ऐ नेचर ! इस देश में सत्य मूलक शुभ का राज लाने के लिए मैंने आज तक जितना संग्राम किया है, उस में मेरे संग्राम के अनुसार इस देश के मनुष्यों से जो सहाय मिल सकती थी, वह सहाय मुझे न मिली; क्योंकि उनका मेरे मुख्य लक्ष्य के साथ मेल नहीं हुआ। नहीं हो सका, इसलिए कि वह सुख परायण थे। जहां तक मेरी देव शक्तियों के कार्य्य से उन में शुभ परिवर्तन हो गया, उस से वह अपने आप को बचा नहीं सकते थे, इसलिए हो गया और वह एक वा दूसरी बुराई से बच गए, एक वा दूसरे मिथ्या विश्वास से निकल आए, कोई सारी आयु के लिए, कोई कुछ काल के लिए। परन्तु मुझे जिस प्रकार के और जितने उच्च परिवर्तन प्राप्त जनों की अपने परम लक्ष्य में सेवाकारी होने के लिए आवश्यकता थी, और आवश्यकता है, वह मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुए। ऐसी दशा में क्या मैंने बहुत व्याकुल होकर अनेक बार तुझ से यह प्रश्न नहीं किया, कि क्या इस देश से मुझे ऐसे जन मिलेंगे, कि जो किसी प्रकार के शुभ के लिए आवश्यक सीमा तक अनुरागी बन सकेंगे और शुभ के लिए अपने सुख को त्याग करेंगे ? क्या शुभ की जय के लिए कुछ जनों में भी अपने २ विविध सुखों के त्याग करने के लिए सच्ची आकांक्षा जागेगी ?

क्या अनेक दिनों और अनेक रातों में मैंने भरे और दुखी दिल के साथ तुझ से यही प्रश्न नहीं किया ? क्या किसी शुभ लक्ष्य के लिए सच्चे त्याग और सच्चे समर्पण के बिना किसी भी पतित देश का उद्धार सम्भव है ? कदापि नहीं; कदापि नहीं ।

नेचर ! यह सच है, कि तेरी हि गुप्त विधि की सहायता से मेरा शुभ लक्ष्य एक हद तक ज़रूर पूरा हुआ है; परन्तु अभी तक मेरे परम लक्ष्य में सेवाकारी बनने के निमित्त जितने सच्चे त्यागी और समर्पणकारी जनों की आवश्यकता है, वह कहां मिले हैं !!! तब ऐसा हो कि जो जन यहां वर्तमान हैं और यहां से बाहर जहां २ कहीं और जो २ अधिकारी जन मौजूद हैं, उन में जहां तक सम्भव हो, शुभ परिवर्तन उत्पन्न हो । वह शुभ के आकांक्षी बनें, और शुभ के लिए सच्चे त्यागी बनें । वह क्या अपने आत्मा के शुभ के लिए और क्या अपने द्वारा औरों में उसी प्रकार का भाव पैदा करने के लिए सुख की गुलामी में रहना न चाहें, और उन में से जिन २ का धन की गुलामी से, स्त्री की गुलामी से, नाम वा इज्ज़त की गुलामी से, तन की गुलामी से, आराम की गुलामी से और अन्य गुलामियों से निकलना सम्भव हो, वह उन गुलामियों से निकल सकें और जो जन सत्य और शुभ का राज लाने के

निमित्त अपने शरीर की, दिमाग़ की, धन सम्पत्ति की शक्तियों को अर्पण कर सकते हों, वह जन मुझे प्राप्त हों। तभी और तभी शुभ का राज भली भांत विकसित हो सकता है, अन्यथा नहीं। ऐसा हो कि शुभ और सत्य का राज आवे और अशुभ और असत्य का राज नष्ट हो।

एक उपदेश का सार।

(सेवक, आषाढ़ सं० १९८८ वि०)

५ मई सन् १-९२८ ई० को परम पूजनीय भगवान् देवात्मा ने जब कि वह लाहौर से सोलन को रवाना होने वाले थे, अपनी रवानगी से चन्द घंटे पहले देव समाज के कई कर्म्मचारियों को अपने बाग़ीचे में बुलाया और उन्हों ने बहुत बड़ी कृपा करके अति संक्षिप्त शब्दों में आत्मिक जगत् सम्बन्धी कुछ सत्यों को नेचर के साक्षात् दृष्टान्तों को दिखाकर बहुत उज्वल रूप से उनके सन्मुख प्रगट किया। उन्होंने पहले अपने बाग़ीचे के एक आम के वृक्ष को दिखाया, जिस में भिन्न २ हालतों के बहुत से छोटे २ फल लगे हुए थे। और फिर कितने हि फलों की ओर अपनी उंगलियां उठा २ कर बताया, कि देखो! इनमें से यह २ फल अपनी उन्नति के लिए खुराक को न पाकर किस तरह बढ़ने से

रह गए, और धीरे २ पतित हालत में पहुंचकर मौत के निकट पहुंचे हुए हैं, वा कोई २ बिलकुल मर गए हैं। इस समय उन्होंने उनमें से एक फल को छूदि छुआ, तो वह उसी समय उस आम की शाख से टूट कर नीचे गिर पड़ा। यह वह छोटा सा फल था जो मर चुका था। फिर उन्होंने उस आम में से कुछ ऐसे फल दिखाए, कि जो यद्यपि पूरी तरह से मर नहीं चुके थे, परन्तु पतन के सिलसिले में पड़े हुए थे, और बराबर खराब होते जा रहे थे। इसके बाद उन्होंने कुछ ऐसे छोटे २ फल दिखलाए, कि जो केवल यही नहीं कि पतन की ओर नहीं जा रहे थे, किन्तु जा धीरे २ बड़े होते जा रहे थे। इन अच्छी हालत वाले आमों में से कोई बहुत हि छोटे थे, और कोई अपेक्षाकृत कुछ बड़े थे, और कोई उन से भी अधिक बड़े थे। और यह सब हि बहुत अच्छी हालत में थे।

एक हि आम के वृक्ष के उन सब विविध प्रकार के फलों को दिखाकर भगवान् देवात्मा ने फ़रमाया, कि तुम लोग देखो, कि यह आम का वृक्ष खुद बहुत अच्छी हालत में है, परन्तु इस में जो फल लगे हुए हैं, उनकी आपस की हालत में कितना बड़ा अन्तर है। एक हि वृक्ष की एक टहनी से लगे हुए कई आम सूखते और मरते जा रहे हैं, और कई प्रति दिन बेहतर बनते जा

रहे हैं। फिर उन में से भी कोई २ बहुत तेज़ी के साथ बेहतर बन रहे हैं। बताओ, कि इन कुल हालतों के अन्तर का क्या कारण है ? वर्तमान जनों में से किसी २ ने अपनी समझ के अनुसार एक वा दूसरी बात बताई। जिस पर भगवान् ने फ़रमाया, कि इस ज़िन्दा वृक्ष की शाख़ में लगे हुए जो आम धारे २ सूख गए, और आख़िरकार सूख कर मर गए वा अब मर रहे हैं; वह इसलिए सूख गए वा मर रहे हैं, कि उन की जीवनी शक्तियां अपने इस जीवन दाता वृक्ष से अपने लिए जीवन दायक रस खैंचने के योग्य नहीं रहीं और जो बेहतर बन रहे हैं, उनकी जीवनी शक्तियां ऐसी हैं, कि जो अपने जीवनदाता वृक्ष से अपनी २ योग्यता के अनुसार रस खैंच रही हैं। और इनमें भी जिस २ की जीवनी शक्तियां अपेक्षाकृत अधिक रस खैंचने के योग्य हैं; वह औरों की अपेक्षा अधिक बड़े हो गए हैं। इसी प्रकार देवसमाज में देवात्मा के देव प्रभावों का जो जीवन दायक कार्य्य हो रहा है, उसमें कितने हि जन ऐसे हैं, कि जो उन देव प्रभावों के लाभ करने की योग्यता न रखकर अपने २ आत्मिक जीवन के विचार से बराबर सूख रहे हैं, और धीरे २ मर रहे हैं। और कितने हि मर चुके हैं। और कितने हि मर चुकने के बाद इस मरे हुए फल की न्याईं कि जो छूने के साथ हि टूट कर

गिर पड़ा है, देव समाज रूपी वृक्ष से पूर्णतः कटकर नीचे गिर गए हैं, और उनका अब देव समाज से कोई सम्बन्ध नहीं रहा, कि जो और भी बहुत शोचनीय है। और कितने हि ऐसे हैं, जो प्रायः पहली हालत में हि पड़े हुए हैं, और कुछ ऐसे हैं, कि जो इनकी अपेक्षा कुछ बेहतर हैं। यह सब अन्तर उनके अपने २ आत्माओं की योग्यता का है। जिन के आत्मा इस हालत में पहुंच चुके हैं, कि वह देवसमाज में शामिल होकर भी देवात्मा के देव प्रभावों के लाभ करने के योग्य नहीं रहे, वह अब आत्मिक मृत्यु की गति से मोक्ष पाने के बिलकुल अयोग्य मालूम होते हैं, और उनमें जीवन उत्पादक किसी उच्च भाव के पैदा होने की सम्भावना भी दिखाई नहीं देती। और जिन के आत्मा कुछ न कुछ देवात्मा से अपने लिए आत्मिक ज़िन्दगी का रस खैंचने के योग्य हैं, वह अपनी २ योग्यता के अनुसार पहले की अपेक्षा कुछ न कुछ बेहतर मालूम होते हैं। तुम लोगों को चाहिए, कि तुम नेचर के प्रबन्ध के अनुसार इन विविध प्रकार के फलों के सच्चे दृष्टान्तों को देखकर आत्मिक जीवन और मृत्यु के नियमों की असल हक़ीक़त को जानो, और स॰ झो! खुद समझो और अन्य अधिकारी जनों में उस का ठीक २ प्रचार करो।

एक उपदेश का सार।

(सेवक, श्रावण सं० १९८८ वि०)

पर्व्वताश्रम सोलन में १५ अगस्त १९२८ ई० को (जब कि सेवकों की सम्मिलित सभा हो रही थी) परम पूजनीय भगवान् देवात्मा अचानक सभा में तशरीफ़ लाए। और उस समय उन्होंने जो कुछ फ़रमाया उसका सार अंश नीचे दिया जाता है :—

शक्ति दो प्रकार की होती है। एक गति की हालत में, दूसरी साकन हालत में; यद्यपि वह भी यूं कम्पन्न अवस्था में होती है, परन्तु फिर भी साधारणतः बोल चाल में वह शक्ति गति की हालत में नहीं कहलाती। मनुष्य, पशु, पौदे में कौनसी शक्ति मुख्य शक्ति है? निर्म्माणकारी शक्ति। निर्म्माणकारी शक्ति किसे कहते हैं? बनाने वाली शक्ति को। इस शक्ति का काम प्रत्येक वस्तु को पहले से बेहतर अवस्था में कर देने का है। मनुष्य के भीतर इस बनाने वाली शक्ति के विरुद्ध ऐसी शक्तियों की भरमार है, कि जिन से परिचालित होकर वह इस नेचर के विविध अस्तित्वों को बिगाड़ने का काम करते रह कर, अपनी निर्म्माणकारी शक्ति का भी नाश करता रहता है।

मनुष्य के भीतर यह निर्म्माणकारी शक्ति शुद्ध उपकार के भावों से औरों को बेहतर बनाने का काम करने

से हि बढ़ती है। यदि यह वेहतरी का काम न किया जावे, तो वह घटती है। और धीरे २ पूर्णतः नष्ट हो जाती है। जैसे गेहूं के दाने को यदि हम भून दें, वा मुर्गी के अंडे को उबालदें, तो उनके भीतर की जीवनी शक्तियां मर जाएंगी; वैसे हि बिगाड़ने वाले काम करने से मनुष्य की निर्म्माणकारी शक्ति भी मर जाती है।

अब तुम लोग यह देखो, कि तुम दिन भर में किस क़दर ऐसी गतियां करते हो, कि जो बनाने वाली हैं। इस के विरुद्ध जो बिगाड़ने वाली गतियां हैं, वह तो होती हि रहती हैं। याद रक्खो ! कि यदि तुम्हारे तन, मन और धन की शक्तियां नेचर के विविध जगतों के अस्तित्वों के बनाने में ख़र्च न होंगी, तो जीवन के विचार से धीरे २ तुम्हारा दीवाला निकल जाएगा। जैसे कोई जन रुपए ख़र्च करने का तो काम करता रहे, परन्तु आमदनी का काम कुछ भी न करे, तो वह कुछ काल में दीवालिया बन जाता है; वैसे हि जो जन बनाने का काम तो कुछ न करे, और बिगाड़ने का बराबर करता रहे, वा बनाने की तुलना में बिगड़ाने का काम अधिक करता रहे, तो वह कुछ काल में कंगाल और दिवालिया बन जायगा।

तपेदिक्क़ का जो बीमार तीसरी मंज़ल में पहुंच जाता है, जैसे उसका इलाज असम्भव हो जाता है, वैसे

हि जो आत्मा अपनी निम्मीणकारी शक्ति को इस क़दर विकारयुक्त बना लेता है, कि फिर उसके द्वारा निम्मीण का काम होना पूर्णतः बन्द हो जाता है, उसके आत्मा का बचना भी असम्भव हो जाता है।

मनुष्य की यह निम्मीणकारी शक्ति किसी अस्तित्व को भी अनुचित दुख पहुंचाने वा उसकी अनुचित हानि करने से घटती है, और किसी अस्तित्व को भी पहले से बेहतर बनाने से बढ़ती है। यदि तुम्हारे आत्मा की ऐसी अवस्था हो चुकी है, कि तुम निम्मीणकारी शक्ति को बढ़ाने वाला कोई उच्च भाव भी अपने भीतर पैदा करने की सामर्थ्य खो चुके हो, तो तुम जीवन दाता सत्य देव की शरण में आकर भी बच न सकोगे। काश कि जो अभी बच सकने की अवस्था में हैं, वह बच सकें, और ऐसी हालत में जाने से पहले २ बच सकें, कि जिस में पहुंच कर उनका बचना असम्भव हो जावेगा।

तुम्हारा भला इसमें है, कि तुम प्रतिदिन विशुद्ध भावों से औरों के लिए सेवाकारी बन कर अपने भीतर की निम्मीणकारी शक्ति को बढ़ाओ, और मच्छरों, खट-मलों और पिस्सुओं की न्याई स्वार्थपरायण और हानि-कारक रह कर नष्ट न हो। तुम्हारे लिए यदि सम्भव हो, तो तुम बेहतर बनो, और औरों को बेहतर बनाओ। नेचर में तुम्हारे जीवन के बनने और बिगड़ने का यही

अटल नियम है कि तुम औरों को बेहतर बनाने से आप भी बेहतर बनोगे, और औरों को बिगाड़ने से तुम आप भी बिगड़ोगे। काश कि ! तुम इस नियम को देख सको, और उसे देखकर बिगाड़ने वाले नियम को पूरा करने से रुक सको, और बनाने वाले नियम को पूरा करने के अधिक से अधिक योग्य बन सको।

अपनी अंत्येष्टि क्रिया के सम्बन्ध में एक अति हितकर लेख।

(लेखक वैशाख सं० १९८७ वि०)

(यह लेख भगवान् देवात्मा के स्थूल देह त्याग के विषय में शोक सम्बन्धी की अन्तिम सभा में ८ एप्रिल १९२९ ई० को पढ़ा गया था, कि जिसे वह कृपा करके हमारे परम हित के निमित्त इस अवसर पर पाठ के लिए पहले से ही लिखकर छोड़ गए थे।)

पहला भाग।

१—मनुष्य जगत् में देवात्मा के रूप में प्रगट करके नेचर ने मेरे आत्मा में हित और सत्य विषयक अद्वितीय अनुरागों और अहित और मिथ्या विषयक अद्वितीय घृणाओं और उनकी उन्नति के साथ २ जिस अद्वितीय देव ज्योति और अद्वितीय देव तेज की उत्पत्ति होती है, उस देव ज्योति और देव तेज को धीरे २ विकसित करके मेरे लिए मनुष्य आत्माओं को उनकी अपनी २ योग्यता के अनुसार क्या जीवित और क्या अजीवित

जगतों के सम्बन्ध में उनकी अशुभ और मिथ्या मूलक सब प्रकार की गतियों से मोक्ष देने और उन में उच्च भावों और अनुरागों की सब प्रकार की उच्च वा सात्विक शक्तियों के विकास करने के लिए

(१) उनके अशुभ और मिथ्या उत्पादक सब प्रकार के नीच अनुरागों और उनकी सब प्रकार की नीच घृणा शक्तियों और उनके महा भयानक कर्म्मों पर आक्रमण और उनके साथ युद्ध करना और प्रति दिन युद्ध करना आवश्यक रक्खा था,

(२) इस अद्वितीय युद्ध में शुभ और सत्य की जय के लिए

(क) अपनी सब शारीरिक शक्तियों,

(ख) अपनी सब मान्सिक शक्तियों,

(ग) अपनी सब प्रकार की उच्च शक्तियों,

(घ) अपनी धन सम्पत्ति विषयक सब शक्तियों को समर्पण करना और

(च) अपने शारीरिक सुखों,

(छ) अपनी शारीरिक स्वास्थ्य,

(ज) अपनी आत्मिक शान्ति,

(झ) अपने पारिवारिक, वंशीय, सामाजिक और अन्य हानिकारक वा प्रतिकूल सम्बन्धियों का त्याग करना आवश्यक रक्खा था।

(३) इस अद्वितीय युद्ध में क्या विरोधी जनों के उत्पीड़नों और क्या अपने जनों की अबोधता, विश्वास घातकता स्वेच्छाचारिता और कृतघ्नता आदि से नाना समयों में सांघातिक आघातों से मेरे लिए रोग ग्रस्त होना, दारुण कष्ट पाना, तड़पना, बिलबिलाना और विलाप करना और नाना समयों में शारीरिक मृत्यु की दशा के समीप तक पहुंच जाना भी आवश्यक रक्खा था।

(४) इस अद्वितीय युद्ध में आत्मा की गठन, आत्मिक जीवन, आत्मिक रोगों, आत्मिक पतन और आत्मिक विकास विषयक नियमों के सम्बन्ध में विविध प्रकार के सत्यों की खोज करने और उन और उनसे सम्बन्धित अन्य नाना विषयों का अध्ययन और उन पर सोच विचार करने और लेख लिखने और उनके विषय में सैकड़ों और हज़ारों व्याख्यान और उपदेश देने और विरोधी जनों के मिथ्या अपवादों के खंडन के निमित्त लेख लिखने और उन में से कितने हि जनों की ओर से मुझ पर नाना समयों में और एक वार वर्षों तक जो झूठे मुकद्दमे चलाए गए थे, उनके ऐसे महा दुखदाई आक्रमणों से अपनी और अपने जीवन व्रत वा परम लक्ष्य की रक्षा करने के लिए विवश होकर अतिशय परिश्रम करना और ऐसे अतिशय परिश्रम के कारण नाना समयों में अपनी स्नायु प्रणाली को चूर २ कर लेना और रोग

ग्रस्त होकर महा कष्ट भोगना और इस प्रकार के सब कारणों से बहुत वर्षों तक लगातार रोगी रहना भी आवश्यक रक्खा था।

२—नेचर ने मेरे इस अद्वितीय आविर्भाव के द्वारा मनुष्य जगत् को एक मात्र सत्य उपास्य देव और इस लिए धर्म्म विषयक सत्य ज्ञान दाता वा सत्य शिक्षक और अधिकारी आत्माओं का उनकी योग्यता के अनुसार सत्य और पूर्णाङ्ग मोक्ष दाता और उच्च जीवन विषयक सत्य विकासकर्ता प्रदान करना अभीष्ट रक्खा था।

३—नेचर ने मेरे अद्वितीय आविर्भाव की अद्वितीय देव ज्योति और मेरे अद्वितीय देवतेज के द्वारा अब तक भी मनुष्य आत्माओं में जिस २ प्रकार का उच्च परिवर्तन उत्पन्न किया है, वह मेरे भिन्न किसी भी कहलाने वाले परन्तु वास्तव में झूठे देव वा देवी के द्वारा नहीं किया था; क्योंकि ऐसा करना उसके अपने हि अटल नियमों के विरुद्ध था। देव समाज मेरे इस निराले उच्च परिवर्तन विषयक कार्य्य का साक्षात और ज्वलंत प्रमाण है।

४—जिस मनुष्य जगत् और उससे सम्बन्धित नीचे के जगतों में नेचर के नियमानुसार जहां तक उच्च परिवर्तन मूलक एकता के लाने के लिए मेरा आविर्भाव हुआ है, उसमें से जब अनुकूल समय में धीरे २ ऐसे जन देव

समाज में आवेंगे, जो अब की अपेक्षा नीच अनुरागों और नीच घृणाओं के दासत्व से अधिक मुक्त और मेरे देवरूप के देखने वा उपलब्ध करने, उसके प्रति श्रद्धा-वान बन्ने और उसके सौंदर्य्य के प्रति आकृष्ट होने वा अनुरागी बन्ने के अधिक योग्य होंगे, और अपनी २ ऐसी योग्यता के अनुसार मेरे परम लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपना सब कुछ अर्पण और सब त्याग करने में हि अपना और अपने भिन्न और लाखों अधिकारी जनों का पूर्ण कल्याण अनुभव करेंगे, और अबकी अपेक्षा इस प्रकार का अधिक समर्पण और त्याग करेंगे, तब उनके द्वारा मेरा जीवन व्रत अवश्य अधिक रूप से सफल होगा।

दूसरा भाग।

(अन्तिम वर्णन और अपील)

नेचर ने देवात्मा को इस पृथिवी में आविर्भूत करके उसके लिए मनुष्य जगत् और क्या उससे सम्बन्धित नीचे के जगतों के परम कल्याण के लिए जिस अद्वितीय जीवन व्रत का ग्रहण करना और उसकी सिद्धि के लिए उपरोक्त सब प्रकार का पूर्ण समर्पण और त्याग करना आवश्यक रक्खा था, वह सब कुछ देवात्मा ने भली भांति पूरा किया है। और उसने अपने जीवन व्रत सम्बन्धी अद्वितीय युद्ध में ४७ साल तक लड़ते २ और इस

युद्ध क्षेत्र में सत्य और शुभ विषयक पूर्ण देव अनुरागों के द्वारा लगातार जय लाभ करते २ अपने स्थूल शरीर के बहुत जीर्ण और अति दुर्बल होजाने और इस लोक में और अधिक सेवाकारी वन्ने के योग्य न रहने पर नेचर के हि नियमानुसार उसे त्याग किया है, और यहां के स्थूल शरीर को त्याग करके अपने अद्वितीय देवरूप के अनुसार नया सूक्ष्म शरीर ग्रहण करके जिस महान उच्च लोक में प्रवेश और वास करने का अधिकार लाभ किया है, वह यद्यपि हमारी कल्पना शक्ति की पहुंच से भी पूर्णतः अतीत है, तथापि यह सत्य है, कि देव समाज के अधिकारी नर नारी जन नेचर की जिस आत्मिक सच्ची विधि के द्वारा जैसे यहां पर उनके देव प्रभाव लाभ करते रहे हैं, वैसे हि उसी सच्ची आत्मिक विधि के द्वारा वहां से भी वह उनके देव प्रभावों को लाभ करने के योग्य रहेंगे, और इन देव प्रभावों के द्वारा परिचालित होकर उनके और उनके अद्वितीय जीवन व्रत सम्बन्धी विविध कार्य्यों में अपनी २ योग्यता के अनुसार सेवा-कारी बन सकेंगे।

अव यद्यपि वह अपने स्थूल शरीर के साथ हमारे बीच में इस पृथिवी में वर्त्तमान नहीं, तथापि हमारे आ-त्माओं में उनके विचित्र देव प्रभावों के द्वारा जो २ कुछ हितकर वा उच्च परिवर्तन लाभ करके और मिथ्या धर्म

मतों और मिथ्या धर्म्म मतों की सोसाइटी से उद्धार पाकर उनकी शरण में आने और उन की निराली और सच्ची धर्म्म समाज में रहने का सर्व्वोच्च हितकर अधिकार पाया है, उस अधिकार के अनुसार वह अपने सूक्ष्म शरीर के साथ भी हमारे लिए उसी प्रकार से एक मात्र सत्य उपास्य देव और सत्य धर्म्म के एक मात्र शिक्षक वा गुरु और सच्चे और पूर्णाङ्ग मोक्ष दाता और विकास कर्ता हैं, जिस प्रकार यहां पर वह अपनी स्थूल देह के साथ रहने के दिनों में थे; और इसीलिए हमारा यह परम कर्तव्य है, कि हम उनके सम्बन्ध में उनके पीछे अपने आप को पहले से भी बढ़ कर सच्चा और विश्वास का पात्र प्रमाणित करें। और इस प्रकार से उनके अद्वितीय आविर्भाव की भी महिमा महान करें।

अब हमारे जिन परम पूजनीय भगवान् ने हमारी ख़ातिर यह सब अद्वितीय समर्पण और त्याग किए हैं, और जो ऐसा करते २ अपनी स्थूल देह के विचार से अब हम से जुदा हो चुके हैं, क्या उनकी पवित्र प्रसन्नता लाभ करने, क्या उनके अद्वितीय जीवन व्रत सम्बन्धी अद्वितीय कार्य्य में विशेष रूप से सेवाकारी बनने, क्या अपने आप को उनका सच्चा सेवाकारी सेवक प्रमाणित करने और क्या उनके अद्वितीय कार्य्य की सेवा के सम्बन्ध में अपनी ज़िम्मेवारी को जो अब

उनके इस लोक में न रहने से विशेष रूप से बढ़ जाती है, उसे भली भांति अनुभव और पूराकरने और क्या अपने आत्मा के अधिक से अधिक कल्याण और अपनी नाना तुच्छ शक्तियों की सब से अधिक सफलता के निमित्त हमारे लिए यह नितान्त आवश्यक है, कि हम आज न केवल इस देश किन्तु सारी पृथिवी के लिए इस अति विशेष दिन में उपरोक्त एक वा दूसरे उच्च भाव वा भावों से परिचालित होकर अपने तन, मन और धन को विशेष रूप से अर्पण करें । हां, अपनी शारीरिक और मानसिक नाना शक्तियों को अर्पण करने के भिन्न आज के दिन हमारे लिए यह विशेष रूप से उचित और आवश्यक है, कि हम अपने जीवन दाता भगवान् देवात्मा के कार्य्य की रक्षा और उन्नति के लिए लाखों रुपए के फ़राड आप दान करें, वा उनके एकत्र करने के निमित्त सच्ची प्रतिज्ञाएं करें, और इस शुभ उद्देश्य को पूरा करने के लिए जो सौभाग्यवान जन अपनी २ ज़मीनें वा अन्य जायदाद अर्पण कर सकते हों, वह अब और इस समय अपनी २ ज़मीनें और अपनी २ जायदादें अर्पण करें, और जो अपना धन अर्पण कर सकते हों, वह अपना धन अर्पण करें, और जो औरों से मिलकर अधिक से अधिक दान एकत्र कर सकते हों, वह इस प्रकार दान एकत्र करने की सच्ची

और दृढ़ प्रतिज्ञाएं करें; और इस प्रकार इस निराले दिन को न केवल अपने और अपनी समाज [illegible] विशेष रूप से हितकर, किन्तु इस पृथिवी के सारे मनुष्य जगत् के इतिहास में विशेष रूप से स्मरणीय दिन बनावें।